भारत में सशस्त्र क्रान्ति-चेष्टा का रोमांचकारी इतिहास

प्रथम खंड

(सन् ५७ ग़दर के बाद से लेकर सन् १९३९ की क्रान्ति-चेष्टाओं का सचित्र विवरण)

लेखक
श्री मन्मथनाथ गुप्त

द्वितीय परिशोधित संस्करण]

[मूल्य ४॥)

विक्रेता—
छात्रहितकारी पुस्तकमाला,
दारागंज, प्रयाग

प्रकाशक व मुद्रक
सरयू प्रसाद पांडेय 'विशारद'
नागरी प्रेस, दारागञ्ज,
प्रयाग।

भारत में सशस्त्र क्रांति-चेष्टा का रोमांचकारी इतिहास

श्री मन्मथ नाथ गुप्त

प्रथम संस्करण की भूमिका

भारतीय क्रांति प्रचेष्टा के सनसनी भरे इतिहास की भूमिका मैं किन शब्दों में लिखूँ कुछ समझ में नहीं आता। मुझे तो बार बार इन शहीदों के—वीरों के—सर पर कफन बाँधकर निकले हुए अलमस्तों की कहानी लिखते लिखते यह इच्छा हुई है कि मैं लेखनी पटक दूं, और निकल पड़ूँ……। इन शहीदों के इतिहास को मैंने वर्षों तक मनन किया है, लिखते-लिखते बार बार मैं सोचता रहा। लेखनी चलाना यह मेरा काम नहीं है, मैं शायद अपने Vocation को miss कर रहा हूँ, मेरे समय का उपयोग तो कुछ और ही होना चाहिये। जमाने का यही तकाजा है, शहीदों का यही संदेश है। मैं मानता हूँ लेखनी यदि वह एक क्रांतिकारी की लेखनी है और यदि वह उसी इस्पात से ढाली गई जिस से भगत सिंह, आजाद, सोहन लाल. करतार सिंह की पिस्तौलें ढाली गई थीं, तो वह साम्राज्यवाद के लिये एक बहुत ही खतरनाक चीज हो सकती है। फिर भी लिखते-लिखते बार-बार लेखनी पर मेरी वितृष्णा हो गई है, मेरे हृदय के भाव उससे व्यक्त कहाँ होते हैं, एक बेताबी ने मुझ पर अधिकार जमा लिया है, और मेरी कहानी रुक रुक गई है। शायद इस प्रकार की बेताबी में जो चीज लिखी गई है वह इतिहास की मर्यादा नहीं प्राप्त करेगी, किंतु मुझे पूर्ण विश्वास है कि हमारी भविष्य पीढ़ियों को निर्माण करने में यह कहानी उसी प्रकार सहायक होगी जिस प्रकार लोरियां बच्चों को आदमी बनाने में होती हैं। मैं चाहता हूँ देश के नौजवान इस कहानी के साये में पलें इसी में उनका कल्याण है, इसी में मेरी लेखनी धारण की सार्थकता तथा पुरस्कार है।

मेरी पुस्तक में क्रांतिकारी सब मुकदमों का इतिहास नहीं आया होगा, विपुल तथ्यों का ढेर लगाकर पाठकों को घबड़वा देने से मेरी

कहानी बदमजा हो जाती, फिर भी मैंने सब झुकाव तथा मनोवृत्तियों के साथ न्याय किया है ऐसा मेरा विश्वास है। असल में इतिहास का अर्थ भी यही है कि झुकावों (Trends) के साथ न्याय किया जाय, न कि यह कि यह सब तथ्यों को लाकर इकट्ठा कर दिया जाय। इसके अतिरिक्त सिलसिला ही इतिहास का प्राण है, निर्जीव तथ्यों का संग्रह इतिहास नहीं कहा जा सकता। अन्त में मैं यह मानता हूँ कि यह पुस्तक एक उद्देश्य लेकर ही लिखी गई है, वह उद्देश्य है क्रांतिकारी आंदोलन के सम्बन्ध में एक वैज्ञानिक समझदारी पैदा करना, ताकि भविष्य का क्रांतिकारी आंदोलन ठीक रास्ते पर चलाया जा सके।

जवाहर स्क्वायर,
इलाहाबाद।
२-३-३६

मन्मथनाथ गुप्त

द्वितीय संस्करण की भूमिका

जिस पुस्तक का प्रकाशन के साल ही दूसरा और शायद तीसरा संस्करण हो जाता, कुछ घटना-चक्र ऐसा पड़ा कि आज सात साल बाद उसके दूसरे संस्करण की नौबत आई है। बात यह है कि प्रकाशित होने के तीन महीने के अन्दर ही यह पुस्तक तथा मेरी एक अन्य पुस्तक 'भारतीय क्रान्तिकारी आन्दोलन और राष्ट्रीय विकाश' प्रथम कांग्रेस मन्त्रिमंडल (१६३७-३६) द्वारा जब्त कर ली गई थीं। खुशी की बात है कि अबकी बार की कांग्रेस सरकार ने इनकी जब्ती हटा ली है।

१६४२ की क्रान्ति ने कांग्रेस जनों में जो परिवर्तन किया है, वही इसका कारण है। कुछ भी हो हम इसके लिये संयुक्त प्रांत यथा विहार की कांग्रेस सरकारों को धन्यवाद देते हैं। विहार की कांग्रेस सरकार ने संयुक्त प्रांत की कांग्रेस सरकार की देखादेखी इस पुस्तक को ज़ब्त किया था, और जब यहाँ की सरकार ने उस ज़ब्ती को मंसूख कर दिया तो विहार की सरकार ने भी उसे मंसूख कर दिया।

जब्त होने पर भी गत सातसालों में इस पुस्तक का बहुत प्रचार हुआ। एक एक प्रति को सैकड़ों ने पढ़ा, और हजारों लोग तो नाम सुन कर ही रह गये। इस पुस्तक का उद्देश्य आतङ्कवाद का पुनरुज्जीवन नहीं है जैसा कि अंतिम अध्याय को पढ़ने से ज्ञात होगा। कोई भी आंदोलन आता है तो अपने ऐतिहासिक उद्देश्य को सिद्ध कर चला जाता है। उस ऐतिहासिक उद्देश्य का उद्घाटन करने का अर्थ यह नहीं है कि उसका पुनरुज्जीवन हो। यदि उसका समय निकल गया है तो उसका पुनरुज्जीवन अवाञ्छनीय तथा असम्भव है।

इस सात सालों में 'भारत में सशस्त्र क्रान्ति चेष्टा के इतिहास' में नये अध्याय जुड़ चुके हैं, किन्तु यह सोचा गया कि इस पुस्तक को

ज्यों का त्यों रक्खा जाय, और उसका एक दूसरा भाग निकाल कर सशस्त्र क्रान्ति के इतिहास को आज तक ला दिया जाय। इसलिये इसका एक दूसरा भाग भी निकाला जा रहा है जिसमें में १९४२ तथा आजाद हिंद फौज का इतिहास आ जायगा। इस प्रकार दोनों भागों में यह पुस्तक पूरे क्रान्तिकारी आन्दोलन का विशद इतिहास हो जायगा। बाजार में ऐसी कोई पुस्तक नहीं है, जिसका दायरा इतना विस्तृत हो।

आशा है क्रान्तिकारी पाठक इस पुस्तक को अपनायेंगे। प्रथम संस्करण में नुकसान उठाने पर भी मेरे मित्र प्रकाशक श्री सरयूप्रसाद पांडेय इसका द्वितीय संस्करण निकाल रहे हैं, इसलिए विशेष धन्यवाद के पात्र हैं।

जय हिन्द।

२-६-४६
इलाहाबाद

मन्मथनाथ गुप्त

विषय सूची

भारत में सशस्त्र क्रांति चेष्टा का रोमांचकारी इतिहास

प० चन्द्रशेखर आज़ाद

भारत में सशस्त्र क्रान्ति-चेष्टा का रोमांचकारी इतिहास

क्रान्तिकारी आन्दोलन का सूत्रपात

भारत कैसे पराधीन हुआ

भारतवर्ष एक दिन में अङ्गरेज़ों के अधीन नहीं हुआ था, करीब एक सौ साल के षड्यंत्र, कूटनीति तथा विश्वासघात के बाद हिन्दुस्तान में बृटिश झण्डा स्वतंत्रता पूर्वक फहरा सका था। १७५७ ई० में पलासी के मैदान में भारतवर्ष की स्वाधीनता हर ली गई, जो ऐसा समझते हैं, वे ग़लती करते हैं। पलासी तो केवल उस विराट षड्यंत्र का, जिसके फलस्वरूप भारतवासी ग़ुलामी की जंजीर में जकड़े गये, एक वार मात्र था। यह बात भी ग़लत है कि अङ्गरेज़ों ने तलवार के जोर से ही हिन्दुस्तान को जीता। सत्य तो यह है कि हिन्तुस्तान मक्कारी और षड्यंत्र से जीता गया, और आवश्यकता पड़ने पर कभी कभी तलवार भी काम में लाई गई थी। हिन्दुस्तान मक्कारी और षड्यन्त्र से जीता गया है, तलवार का भी इस्तेमाल किया गया था। आज भी दुनिया में ब्रिटिश साम्राज्यवाद बड़ी तीव्रगति से अपने ख़ूनी पंजों को धँसाने

की चेष्टा में संलग्न है। फैसिस्ट जापान, जर्मनी और इटली की उनकी साम्राज्य-लिप्सा के निमित्त हम कोसते हैं, क्योंकि उनके काले कारनामे रोज़ दुनिया में द्वितीय महायुद्ध के रूप में प्रकट हुये; किन्तु बृटेन के के कारनामों तथा हथकण्डों से हम परिचित नहीं हो पाते, इसलिए हम उसके सम्बन्ध में चुप रहते हैं। द्वितीय महायुद्ध के बाद भी क्या रक्तलोलुप बृटिश-सिंह चुप बैठा है? नहीं, वह बैठा नहीं है, वह बराबर अपने पैशाचिक षड्यन्त्रों को जारी रक्खे हुए है। सर्वत्र बड़ी चुप्पी के साथ वह अपनी जघन्य साम्राज्य-पिपासा को तृप्त करने में लगा है। यह बात नहीं कि बृटेन गोली चलाने में विश्वास नहीं करता। सच तो यह है कि वह ऐसे समय में अपने शिकार पर एक भेड़िये की तरह टूट पड़ने में विश्वास करता है, जब कि दुनिया के जन-मत की दृष्टि कहीं और लगी हुई हो; क्योंकि वह शोरगुल करना पसन्द नहीं करता है। वह जापान, जर्मनी तथा इटली की तरह डाँट-फटकार तथा तर्जन-गर्जन में विश्वास नहीं करता, बल्कि काम निकालने से काम रखता है। बृटिश परराष्ट्र नीति का बराबर यही मूल-मन्त्र रहा है। स्टालिन तथा समाजवादी रूस के साथ उसके झगड़ों का यही कारण है।

ग़दर—एक साम्राज्य-विरोधी प्रयास

भारतवर्ष में बृटिश झण्डे का सिक्का जमते-जमते जम ही गया, किन्तु उधर उसको उखाड़ने से लिए भी कुछ शक्तियाँ जी जान से काम करने लगी थीं। १८५७ ई० में जो ग़दर हुआ, उसको बहुत-से लोग भारतीय स्वाधीनता का युद्ध मानने से इनकार करते हैं। इस बात में तो कोई सन्देह नहीं कि जिन दलों के प्रयत्नों के फलस्वरूप ग़दर की लपट फैल गयी थी, उन सबका एक उद्देश्य यह होने पर भी कि हिन्दुस्तान से फिरङ्गियों के पैर उखड़ जायँ, उन सबके अन्तिम ध्येय में कोई समता नहीं थी। कोई कुछ चाहता था, कोई कुछ। ग़दर का सफल होना प्रगतिशीलता के हक़ में अच्छा होता या बुरा, इसमें भी

सन्देह प्रकट किया जाता है; क्योंकि ग़दर सफल होने का अर्थ होता कि पाश्चात्य देशों में पूँजीवादी क्रांतियाँ होने पर जिस सामन्तवाद का पैर उखड़ रहा था, उसकी भारत में पुनःस्थापना होती। किन्तु इसके साथ ही यह भी जोर के साथ नहीं कहा जा सकता कि देशी सामन्तवाद देशी पूँजीवाद के सामने बहुत दिन टिकता क्योंकि देशी पूँजीवाद को भी पनपना ही था। फिर यह बात भी तो है कि ग़दर के पीछे जो प्रतिक्रियावादी तथा देश को सामन्तवादी युग में लौटा ले जाने वाली भावनाएँ थीं, वे कुछ भी हों (Subjective) कारण-रूप थीं, उनका (Objective) कार्य-रूप परिणाम, बहुत सम्भव है, और होता ही। इतिहास में इसके सैकड़ों उदाहरण हैं कि किसी आन्दोलन के संचालकों के मन की कारणरूप भावना और होते हुए भी, एक आन्दोलन के कार्य रूप परिणाम कुछ और ही हुए हैं। हम इसलिए, ग़दर को एक साम्राज्यवाद-विरोधी कार्य ही कहेंगे। सच बात तो यह है कि ग़दर के नेताओं का आपस में कुछ और अधिक सहयोग होता, तो बहुत सम्भव है, भारत से बृटिश साम्राज्यवाद का खेमा उखड़ जाता। इस दृष्टि से हम ग़दर को निश्चित रूप से एक क्रान्तिकारी प्रयास मानते हैं।

सामन्तवाद और पूँजीवाद की दोस्ती

ग़दर को जिस बर्बरता के साथ दबाया गया, उसके सामने चीन में होने वाले जापानियों के तथा रूस पर किये गये जर्मनों के अत्याचार फीके पड़ जाते हैं। साम्राज्यवाद पूँजीवाद का सबसे विकसित रूप है, इस बात का सबसे जीता-जागता प्रमाण इस तथ्य से मिलेगा कि बृटिश साम्राज्यवाद ने अपने पैरों को दृढ़ता के साथ जमाने के लिए अनेकों अमानुषिक उपायों द्वारा यहाँ के घरेलू धन्धों तथा छोटे धन्धों का नाश कर, पूँजीवाद के लिए पथ प्रशस्त कर दिया है। पहले पहल बृटिश साम्राज्यवाद ने यह सोचा कि यहाँ केवल साम्राज्यवाद का ही बोल-बाला रहेगा, किन्तु विरोधी परिस्थितियों के कारण बृटेन ने

कुछ और ही सीखा है, फलस्वरूप सामन्तवाद और पूँजीवाद के सबसे विकसित रूप साम्राज्यवाद में दोस्ती हो गई। यह एक अजीब बात है। थोड़ी अप्रासङ्गिक होते हुए भी एक बात पर मैं इस जगह दृष्टि आकर्षित करना चाहता हूँ, वह यह है कि यह जो मंत्रि-मंडल की योजना भारतवासियों पर लादी जाने वाली है, इसका भी मान्शा यही है कि यहाँ के सामन्तवाद को दृढ़ बनाकर साम्राज्यवाद को चिरस्थायी बनाया जाय।

पूंजीवाद के साथ राष्ट्रीयता का जन्म

ग़दर अमानुषिक अत्याचारों द्वारा दबा जरूर दिया गया, किन्तु इस का अर्थ यह नहीं कि भारतवासी दब गये। सच्ची बात तो यह है इन अत्याचारों से भारतवासी भारतवासी हो गये। पहले वे अपने क्षुद्र स्वार्थों, सम्प्रदायों, बहुत हुआ प्रान्तों की दृष्टि से सोचते थे; किन्तु अब वे कुछ-कुछ अखिल भारतीय दृष्टि से सोचने लगे हैं। जब बृटेन ने इन अत्याचारों के युग में उन लोगों को जो, अपने को शेर समझते थे तथा उन लोगों को जिनको लोग आम तौर से बकरी समझते थे, एक ही तलवार के घाट में पानी पिलाया, अपमान किया, लांछित किया, तो उन सबके कान खड़े हो गये। आपस की दुश्मनी भुलाकर भारत के सभी वर्ग, अंग्रेजों को सार्वजनिक दुश्मन समझने लगे। यहीं से उस चीज़ का सूत्रपात होता है, जिसको हम भारतीयता या देशभक्ति कह सकते है। यह बात यहाँ पर स्मरण रखने योग्य है कि इस अखिल-भारतीय देशभक्ति की नींव बहुत कुछ बृटिश-द्वेष पर थी, तथा इसकी मनोवैज्ञानिक नींव में उन अत्याचारों की याद भी थी, जो ग़दर में किये गये थे। आतङ्कवाद उद्भव को समझने के लिए इस बात को समझना बहुत आवश्यक है।

बीज काम करने लगा

क्रान्तिकारी आन्दोलन ठीक-ठीक किस समय प्रारम्भ होता है, यह कहना ठीक है; क्योंकि बीज हमेशा मिट्टी के नीचे काम करता है।

जब वह अंकुर के रूप में प्रकट होता है. तभी हम जान पाते हैं कि वह अब तक नीचे-ही-नीचे कार्य करता रहा है। ग़दर के बाद कितने ही गिरोह ऐसे आये और गये, जो बृटिश सत्ता को मिटाने के लिए गुप्तरूप से प्रयत्न करते रहे, किन्तु उनकी योजनाएँ कल्पना में ही रह गईं। वे कार्यरूप में परिणत न हो सकीं। कम-से-कम इतिहास को इनका कोई निश्चित पता है। कूका-विद्रोह की बात हम छोड़ देते हैं, उस विद्रोह का दृष्टि-कोण अखिल-भारतीय था या नहीं, इसमें संदेह है।

कांगरेस का जन्म

सन् १८८५ में कांगरेस का जन्म हुआ। किन्तु उस समय की कांग्रेस के पीछे न तो हम किसी क्रांतिकारी शक्ति को देखते हैं, न उसके कार्यक्रम में कोई क्रान्तिकारी बात थी। उस ज़माने के क्रांतिकारी विचारों के व्यक्तियों ने, अर्थात् उन व्यक्तियों ने जिनका अपना उद्देश्य बृटेन की सत्ता को यहाँ से उखाड़ने का था, कांग्रेस पर कोई ध्यान नहीं दिया। कांग्रेस तो उन दिनों अर्ज़ीदिहन्दों का एक मजमा था, उससे साम्राज्यवाद-विरोध या इस प्रकार के किसी नारे की उम्मीद रखना बेकार था। हम देखते हैं, न तो चाफेकर बन्धु न सावरकर बन्धु न वारीन्द्र कुमार घोष कोई भी कांग्रेस में न थे। बात यह है, कांगरेस का जनता से उस समय कोई सम्बन्ध नहीं था, इसीलिए उसकी कोई पूछ भी नहीं थी।

हिन्दू-संरक्षिणी सभा

१८६४ के क़रीब श्री० दामोदर चाफेकर तथा उसके भाई बालकृष्ण ने एक सभा बनाई, जिसका नाम "हिन्दूधर्म-संरक्षिणी सभा" रक्खा था। चाफेकर बंधुओं के अंदर कौन-सी भावना काम कर रही थी, यह इसी से पता लगता है कि शिवाजी और गणपति-उत्सव के अवसर पर उन्होंने निम्नलिखित श्लोक गाये थे।

शिवाजी श्लोक

केवल बैठे-बैठे शिवाजी की गाथा की आवृत्ति करने से किसी को आज़ादी नहीं मिल सकती है। हमें तो शिवाजी और बाजीराव की तरह कमर कसकर भयानक कृत्यों में जुट जाना पड़ेगा। दोस्तों, अब आपको आज़ादी के निमित्त ढाल-तलवार उठा लेनी पड़ेगी! हमें शत्रुओं के अब सैकड़ों मुण्डों को काट डालना पड़ेगा! सुनो, हम राष्ट्रीय युद्ध के मैदान में अपने जीवन का बलिदान कर देंगे और आज उन लोगों के रक्तपान से, जो हमारे धर्म को नष्ट कर या आघात पहुँचा रहे हैं, पृथ्वी को रङ्ग देंगे। हम मारकर ही मरेंगे और तुम लोग घर बैठे औरतों की तरह हमारा क़िस्सा सुनोगे!

गणपति श्लोक

हाय! गुलामी में रहकर भी तुमको लाज नहीं आती? इस से अच्छा यह है कि तुम आत्महत्या कर डालो। उफ़! दुष्ट, हत्यारे कसाइयों की तरह गोवध करते हैं, गोमाता को इस दर्शनीय दशा से छुड़ा लो। मर जाओ, किंतु पहले अंगरेज़ों को मारो तो सही? चुप मत बैठे रहो, बेकार पृथ्वी पर बोझा मत बढ़ाओ। हमारे देश का नाम तो हिन्दुस्तान है, फिर यहाँ अंगरेज़ राज्य क्यों करते हैं।

पूना में ताऊन

१८९७ में पूना में ताऊन भयङ्कर रूप से फैल रहा था। उसको दूर करने के लिये घर-घर तलाशी होने लगी, और जिन मकानों में बीमारी पाई गई, उनको ज़बरदस्ती ख़ाली कराया गया। मिस्टर रैण्ड-नामक एक अंगरेज़ इस कार्य के लिये विशेष रूप से तैनात होकर आए। ये महाशय ज़रा कड़े मिज़ाज के थे; जिस बात को सहूलियत के साथ आसानी से किया जा सकता था, उसी बात को उन्होंने बदमिज़ाजी और सख़्ती से किया। सच बात तो यह है कि मिस्टर रैण्ड ऐसे परोपकार के कार्य के लिये सर्वथा अयोग्य थे। नतीजा यह हुआ कि पूना तथा उसके

आसपास मिस्टर रैण्ड की बड़ी बदनामी हुई, और सभी लोग उन्हें सार्वजनिक शत्रु के रूप में देखने लगे। अखबार भी मिस्टर रैण्ड का तिरस्कार करने लगे। ४ मई १८९७ को लोकमान्य बालगङ्गाधर तिलक ने अपने समाचार-पत्र 'केसरी' में इस आशय का लेख लिखा कि बीमारी तो केवल एक बहाना है, वास्तव में सरकार लोगों की आत्मा को कुचलना चाहती है। उन दिनों यह पत्र काफ़ी जनप्रिय हो चुका था। इसी लेख में यह भी लिखा था कि मिस्टर रैण्ड अत्याचारी है, और जो कुछ वे कर रहे हैं, वह सरकार की आज्ञा ही से कर रहे हैं; इसलिये सरकार के पास सहायता के लिये प्रार्थना-पत्र देना व्यर्थ है।

१२ जून १८९७ ई० को शिवाजी का अभिषेकोत्सव मनाया गया था, और १५ जून को उसी का विवरण देते हुए 'केसरी' ने कुछ पद्य छापे, जिनका शीर्षक 'शिवाजी की उक्तियाँ' था। पुलिस का कहना था कि शिवाजी की उक्ति के बहाने इसमें अङ्गरेज़ जाति के विरुद्ध विद्वेष का प्रचार किया गया था। इस उत्सव के अवसर पर बोलते हुए, पुलीस की रिपोर्ट के अनुसार, एक वक्ता ने कहा—"आज इस पवित्र उत्सव के मौके पर प्रत्येक हिन्दू तथा मरहठे का—चाहे वह किसी भी दल या सम्प्रदाय का हो—दिल बाँसों उछल रहा है। हम सब ही अपनी खोई हुई स्वाधीनता को पा लेने की चेष्टा कर रहे हैं, और हम सबको आपस में मिलकर ही इस भारी बोझ को उठाना है। किसी भी ऐसे आदमी के पथ में रोड़ा अटकाना अनुचित होगा, जो अपनी बुद्धि के अनुसार इस भार को उठाने का कार्य कर रहा है। हमारे आपस के झगड़ों से हमारी उन्नति बहुत कुछ रुक जाती है। यदि कोई हमारे देश पर, ऊपर से अत्याचार करता है, तो उसे ख़त्म कर दो। किन्तु दूसरों के कार्य में बाधा मत डालो। × × × ऐसे कभी मौके या उत्सव, जब कि हम सभी अनुभव करते हैं कि हम एक सूत्र में बँधे हैं, खूब मनाए जाने चाहिए।" पुलीस-रिपोर्ट के अनुसार एक और वक्ता ने उसी अवसर पर कहा—"फ्रांस की राज्य-क्रान्ति में भाग लेने वालों ने इस बात से इनकार किया

है कि वे कोई हत्या कर रहे हैं, उनका कहना है कि वे रास्ते के काँटों को हटा रहे हैं।" लोकमान्य तिलक स्वयं इस उत्सव पर सभा के सभापति थे। पुलिस रिपोर्ट के अनुसार उन्होंने कहा—"क्या शिवा जी ने अफ़ज़लखाँ को मार कर कोई पाप किया? इस प्रश्न का उत्तर महाभारत में मिल सकता है। भगवान श्रीकृष्ण ने तो गीता में अपने गुरु तथा सम्बन्धियों तक को मारने की आज्ञा दी है। यदि कोई मनुष्य परार्थबुद्धि से कोई हत्या भी कर डाले, तो उस पर उसका दोष नहीं लग सकता। श्रीशिवाजी ने अपने पेट भरने के लिए तो अफजल को मारा नहीं था, उन्होंने दूसरों की भलाई और अच्छे उद्देश्य से अफ़ज़लखाँ की हत्या की थी। यदि चोर हमारे घर में घुस आवें, और हममें उनको पकड़ने की शक्ति न हो, तो हम बाहर से किवाड़ बन्द कर लें और उन्हें जिन्दा जला डालें। इसे ही नीति कहते हैं। ईश्वर ने विदेशियों को हिन्दुस्तान के राज्य का पट्टा लिखकर नहीं दिया है। श्रीशिवाजी ने जो कुछ भी किया, वह यह था कि उन्होंने अपनी जन्मभूमि पर विदेशियों की राज्य-शक्ति हटाने के लिए लड़ाई लड़ी थी। उन्होंने इस प्रकार किसी पराई चीज़ पर दखल करने की चेष्टा नहीं की। एक कूपमण्डूक की भाँति अपनी दृष्टि को संकुचित मत बनाओ। 'भारतीय दण्ड-विधान' से यह सबक़ मत लो कि क्या करना चाहिये और क्या नहीं। इसके विपरीत श्रीमद्-भगवद्गीता के भव्य वायुमण्डल में चले आओ और महापुरुषों के आचरणों पर विचार करो।"

मिस्टर रैण्ड की हत्या

२२ जून को सारे साम्राज्य में महारानी विक्टोरिया का ६० वाँ राज्याभिषेक दिवस मनाया जा रहा था। पूना शहर में भी उत्सव हो रहा था। रात को रोशनी हो रही थी, आतशबाजियाँ छूट रही थीं। दो गोरे अफ़सर ख़ुशी में मस्त झूमते हुए गणेशकुण्ड से लौट रहे थे। ग़दर हुये ४० साल गुज़र चुके थे, इस बीच में बृटिश साम्राज्य-

भारत में सशस्त्र क्रांति-चेष्टा का रोमांचकारी इतिहास

लोकमान्य तिलक

भारत में सशस्त्र क्रांति-चेष्टा का रोमांचकारी इतिहास

महात्मा गाँधी

वाद के विरुद्ध कोई भी चूँ करने वाला नहीं था। बड़े आनन्द से सरकार और उसके पिट्ठुओं के दिन कट रहे थे। मालूम होता था कि यही बहार सदा रहेगा, भारतवासी ऐसे ही गुलाम रहेंगे। किन्तु सहसा यह क्या रङ्ग में भङ्ग हो गया? धाँय! धाँय!! धाँय!!! किसी ने गोली चला दी। मिस्टर रैण्ड और लेफ्टिनेण्ट एयर्स्ट एक चीख़ के साथ गिर पड़े। मारने वाला जो भी हो, निशाने का पक्का था दोनों की तत्काल मृत्यु हो गई थी। मारने वाला भाग निकला था। सारे साम्राज्य में खलबली मच गई। साम्राज्यवाद के भाड़े के टट्टू चिल्लाते दौड़ पड़े—"पकड़ो! पकड़ो! पकड़ो उस बदमाश को।" सचमुच ही वह साम्राज्यवाद की आँखों में एक बदमाश था। साम्राज्य का धन्धा कैसे सुन्दर रूप से चल रहा था, जो आज्ञा अफ़सर देता था, वही चलती थी। न कोई उस पर वहम करता था, न कोई उसका विरोध ही, किन्तु वह कौन खूनी है? उसका क्या उद्देश्य है? वह क्या चाहता है? साम्राज्यवाद की सारी चेतना इस समय आँखों में केन्द्रीभूत हो रही थी —"वह कौन है?"

वह युवक कठिनता से पकड़ में आया था। यह सवाल उठा था उसका नाम क्या है? उसका नाम था दामोदर चाफेकर। बृटिश साम्राज्यवाद ने बड़ी देर तक इस युवक की ओर घूरा, फिर अँगड़ाई ली, शासकों की सुख-निद्रा में बाधा पड़ चुकी थी। वह चैतन्य हो गए। फिर वह क्रोध के मारे थर-थर काँपते चिल्लाए—"पीस डालो उस बदमाश को।" बृटिश साम्राज्यवाद की वह चक्की, जो ग़दर के दिनों के बाद से क़रीब-क़रीब बेकार पड़ी थी, हँसी, और उससे एक पैशाचिक घर्र-घर्र आवाज़ निकलने लगी। इस चक्की का नाम था बृटिश-न्यायालय। ऊपर से यह कितनी भोली-भाली मालूम होती थी, किन्तु...।

उधर जनता ने भी दामोदर की ओर देखा, "कौन है यह बहादुर, जिसने ग़दर के बाद बृटिश साम्राज्यवाद की छाती पर पहली गोली चलाई है?"

दामोदर चाफेकर ने अदालत में कबूल किया कि उसने रैण्ड साहब की हत्या जान बूझकर की है। केवल यही नहीं, उसने यह भी स्वीकार किया कि इस घटना के पहले बम्बई में महारानी विक्टोरिया की मूर्ति के मुँह पर तारकोल पोतने वाला वही था। इसमें उसका उद्देश्य यह था कि "आर्य-भ्राताओं के दिल में उत्साह की लहर पैदा हो और हम लोग विद्रोह की टीका माथा पर लगावें।" चाफेकर बन्धुओं को फाँसी की सज़ा हुई।

'केसरी' की १५ जून की संख्या के लिये लोकमान्य बालगङ्गाधर तिलक को सज़ा हुई। माननीय जस्टिस मिस्टर रौलट ने लिखा है कि यह सज़ा लोकमान्य को इस कारण हुई थी कि उन्होंने अपने लेख में तार्किक रूप से राजनीतिक हत्या का समर्थन किया था।

१८६६ में चाफेकर-दल के दो व्यक्तियों ने पूना में एक चीफ़ कॉन्स्टेब्लि को मारने की असफल चेष्टा की। बाद को उन्हीं लोगों ने दो भाइयों की, जिनको दामोदर चाफेकर को पकड़वाने की वजह से इनाम मिल चुका था, हत्या इसलिये कर डाली कि उनकी ही मुख़बरी की वजह से दामोदर चाफेकर पकड़े गए थे।

श्याम जी कृष्ण वर्मा

श्यामजी कृष्ण वर्मा काठियावाड़ रियासत के एक धनी परिवार के युवक थे। जिस ज़माने में, पूना में मिस्टर रैण्ड पर गोली चलाई गई थी, तब वे बम्बई में थे। पीछे उनके कथन से मालूम हुआ कि उसी हत्याकाण्ड की जाँच-पड़ताल में जब पुलिस उनको भी फँसाने का कुछ ढंग करने लगी, तो वे बम्बई से लण्डन चले गए। लण्डन में जाकर श्याम जी बहुत दिनों तक चुपचाप बैठे रहे, किसी राजनीतिक हलचल में भाग नहीं लिया; किंतु १६०५ ई० में उन्होंने इण्डिया-होमरूल-सोसाइटी नाम की एक सभा स्थापित की और खुद उस सभा के सभापति हुये। उस सभा ने एक मासिक मुख पत्रिका निकाली, जिसका नाम 'इण्डियन-सोशियोलौजिष्ट, (Indian Sociologist) पड़ा। इस

सभा का उद्देश्य भारतवर्ष के लिये स्वराज्य-प्राप्त करना तथा हर प्रकार से उसके लिये इंगलैंड में जनमत् को जाग्रत् करना था। इंगलैंड के जनमत को जाग्रत करके जो स्वराज्य लेने की चेष्टा करता है, उसको हम और कुछ भी कहें, क्रांतिकारी कदापि नहीं कह सकते; किंतु यह तो संस्था का खुला उद्देश्य था, उनका असली उद्देश्य कुछ और ही था। वे चाहते थे कि भारतवर्ष के अच्छे-अच्छे छात्र इंगलैंड में पढ़ने के लिए आते हैं, उनमें वहाँ के स्वतंत्र वातावरण में स्वाधीनता की भावनाएं भरी जायँ, यही उनका असली उद्देश्य था। तदनुसार दिसम्बर १६०५ में श्याम जी ने यह एलान किया कि वे हजार-हज़ार रुपए की ६ छात्रवृत्तियाँ दे रहे हैं; जिससे कि लेखक, पत्रकार तथा दूसरे योग्य भारतवासी युरोप, अमेरिका तथा अन्य देशों में आ सकें और स्वदेश में लौटकर स्वाधीनता तथा राष्ट्रीय एकता का ज्ञान फैला सकें। इसके साथ पेरिस-निवासी श्री० एस० आर० राना का एक पत्र भी प्रकाशित किया गया, जिसमें उन्होंने दो-दो हज़ार रुपए की तीन वृत्तियाँ विदेश भ्रमण करने के लिये राणा प्रतापसिंह, शिवाजी तथा किसी प्रख्यात मुसलमान राजा के नाम पर रखने का वादा किया था।

विनायक दामोदर सावरकर

श्याम जी कृष्ण वर्मा के चारो ओर थोड़े ही दिनों में एक बहुत बड़ा शिष्य-समाज इकट्ठा हो गया। इन एकत्रित होने वाले लोगों में विनायक दामोदर सावरकर भी थे। ये वही सावरकर हैं, जो आजकल हिन्दू-महासभा के प्राण हैं। जिस समय ये इंगलैंड गए थे, उस समय उनकी उम्र २२ साल की थी। उन्होंने पूना के फरग्यूसन-कालेज में शिक्षा पाई थी, और बम्बई विश्वविद्यालय से बी० ए० की डिग्री ली थी। वे बम्बई-प्रांत के नासिक ज़िले के रहने वाले थे। यह बात नहीं है कि सावरकर को विलायत के वातावरण में ही स्वाधीनता की बात सूझी हो। सन् १६०५ ई० में, भारत में रहते समय, वे एक व्यक्ति के प्रभाव में आ चुके थे, जिनका नाम श्री० अगम्य गुरु परमहंस था। परमहंस

जी व्याख्यान देते हुए भारत भर का दौरा कर चुके थे। इन भाषणों में वे सरकार के विरुद्ध प्रचार करते हुए लोगों से कहते थे कि सरकार से मत डरो। उस समय पूना में नौ आदमियों की एक कमिटी भी बनाई गई थी, जिसके अधिकांश सदस्य फरग्यूसन-कालेज में पढ़े व्यक्ति थे, जहाँ विनायक ने शिक्षा पाई थी! महात्मा श्री अगम्य गुरु ने इस सभा में कहा था कि सब सदस्यों से एक-एक आना लिया जाय। काफी धन जमा हो जाय, तब वे बताएँगे कि किस प्रकार उस धन का उपयोग किया जाय। विनायक सावरकर जब १९०६ के जून-महीने में भारत से चले गए, मालूम होता है कि उसी समय उस दल का अन्त हो गया, यद्यपि इसके कुछ सदस्य बाद में जाकर विनायक के बड़े भाई गणेश दामोदर सावरकर द्वारा स्थापित 'तरुण भारत-सभा' में शामिल हो गए जिस समय विनायक इङ्गलैण्ड गए, उस समय वे तथा उनके भाई गणेश 'मित्रमेला'-नामक एक संस्था के नेता थे और गणेश नासिक में इस संस्था के व्यायाम इत्यादि के शिक्षक थे।

श्याम जी कृष्ण वर्मा ने इस प्रकार कई ऐसे व्यक्तियों को एकत्रित किया, जो विद्वान्, बुद्धिमान् होने के साथ ही देशभक्ति में मँजे हुए थे। सावरकर-ऐसे व्यक्ति किसी भी क्षेत्र में जाकर चमक सकते थे। यह 'भारतीय भवन' विदेश में देशभक्तों का एक अच्छा केन्द्र हो गया। थोड़े ही दिनों में पुलिस की उस पर दृष्टि पड़ गई। सन् १९०७ ई० की जुलाई में किसी मनचले सदस्य ने पार्लियामेण्ट में यह प्रश्न पूछ लिया कि क्या सरकार कृष्ण वर्मा के विरुद्ध कुछ करने का इरादा कर रही है? इस प्रश्न के फलस्वरूप परिस्थिति ऐसी हो गई कि श्याम जी ने इङ्गलैण्ड से अपना डेरा उठा लिया और पैरिस चले गए। पैरिस में उनको लण्डन से कहीं अधिक स्वतन्त्रता-पूर्वक काम करने का मौका मिला, किन्तु उनका अखबार Indian Sociologist पहले की भाँति लण्डन से ही निकलने लगा। बृटेन की सरकार इस बात को भला कहाँ सह सकती थी? सन् १९०९ ई० की जुलाई में इसके मुद्रक के ऊपर

भारत में सशस्त्र क्रांति-चेष्टा का रोमांचकारी इतिहास

लाला लाजपत राय

भारत में सशस्त्र क्रांति-चेष्टा का रोमांचकारी इतिहास

दामोदर विनायक सावरकर

मुकदमा चला और उसे सजा दी गई। छपाई का भार दूसरे व्यक्ति ने अपने ऊपर ले लिया, किन्तु उसे भी सितम्बर १६०६ ई० में एक वर्ष की कड़ी सजा हुई। इसके बाद मजबूरी में क्या होता ? फिर अखबार पैरिस से निकलने लगा, और श्याम जी एस० आर० राना के द्वारा अपना सम्बन्ध 'भारतीय भवन' से बनाए रहे।

श्याम जी के अखबार में कैसी कैसी राजद्रोहात्मक बातें निकलती थीं, यह दिखलाने के लिये राउलेट साहब ने अपनी रिपोर्ट में उसके दिसम्बर १६०७ वाले अङ्क से यह भाव उद्धृत किया है—"ऐसा मालूम होता है कि भारतवर्ष के किसी भी आन्दोलन के लिये गुप्त होना अनिवार्य है। इसके अतिरिक्त ब्रिटिश सरकार को होश में लाने का एकमात्र उपाय रूसी तरीकों का प्रयोग ज़ोर-शोर से और लगातार करना ही है। यह प्रयोग भी तब तक किया जाय, जब तक कि अङ्गरेज़ यहाँ अत्याचार करना न छोड़ दें और देश से न भाग जायँ। कोई भी नहीं बता सकता कि किन परिस्थितियों में हम अपनी नीति में क्या परिवर्तन करेंगे। यह तो शायद बहुत कुछ स्थानीय परिस्थितियों पर निर्भर है। साधारण सिद्धान्त के तौर पर फिर भी हम कह सकते हैं कि रूसी तरीकों का प्रयोग पहले भारतीय अफ़सरों पर लागू होगा न कि गोरे अफसरों पर।"

उन पाठकों को, जो बात के भीतर पैठने के आदी हैं, सुलझाने के लिये यहाँ पर यह कह देना आवश्यक है कि बड़े से लेकर छोटे सभी भारतीय क्रान्तिकारी उन दिनों रूसी तरीकों से आतङ्कवाद का मतलब लेते थे। स्मरण रखने की बात है कि १६०५ की रूसी क्रान्ति उस समय हो चुकी थी तथा उस समय, जब कि यह लेख लिखा गया था, लेनिन आदि बड़े ज़ार शोर से रूस में जन आन्दोलन चला रहे थे। किन्तु दूर से बैठे-बैठे भारतीय क्रान्तिकारी तो केवल 'ग्रैण्ड ड्यूकों' पर जो बम चलते थे, उनके ही धड़ाके सुन पाते थे। वे यह कब जानते थे कि इनसे कुछ लोग बिलकुल स्वतन्त्र रूप में इन लोगों से अलग जन-

क्रान्ति की तैयारी कर रहे थे। बाद को रूस की क्रान्ति इनके ही नेतृत्व में हुई, उन धड़ाके वालों के नेतृत्व में नहीं। और क्रान्ति के बाद भी ये ही विश्व के रङ्गमञ्च पर आए। आतङ्कवाद को अब कोई भी रूसी क्रान्ति का या रूसी क्रान्तिकारियों का तरीक़ नहीं मान सकता, किन्तु उन दिनोंकी बात कुछ और थी। उद्धृत अंश से यह स्पष्ट है कि श्याम जी कृष्ण वर्मा-सरीखे व्यक्ति भी उस ज़माने में इस ग़लतफ़हमी में पड़े हुए थे।

लण्डन में ग़दर दिवस

१६०८ ई० का ग़दर-दिवस लण्डन के 'भारतीय भवन' में बड़े ठाट के साथ मनाया गया। विदेश में रहने वाले सभी भारतीय छात्रों को निमन्त्रण दिया गया था। करीब १०० भारतीय छात्र उस अवसर पर उपस्थित थे। इसके थोड़े ही दिन बाद भारतवर्ष में "ऐ शहीदो!" शीर्षक एक परचा आया। इस परचे में ग़दर के युग के मारे हुए भारतीयों की तारीफ़ थी, और उसमें ग़दर को भारतीय स्वाधीनता युद्ध बताया गया था। वह परचा फ्रेंच टाइपों में छपा था, इस से रौलट-कमेटी का अनुमान है कि इस में श्याम जी कृष्ण वर्मा की "शरारत" थी। मद्रास के एक कालेज में इन परचों की कुछ प्रतियों की बाबत पता लगा था कि वे 'डेली न्यूज़'-नामक समाचार-पत्र के अन्दर भेजे गए थे, जिससे स्पष्ट है कि वे लण्डन से बाँटे गए थे। 'भारतीय भवन' में आने जाने वाले सब को यह परचा तथा 'बोर चेतावनी'— नामक एक परचा मुफ़्त दिया जाता था, और उनसे यह कहा जाता था कि वे इस परचे को देश में अपने मित्रों के पास भेज दें। पुलिस के कथनानुसार प्रत्येक रविवार को 'भारतीय भवन' में जो सभा होती थी, उसमें छात्रों को गुप्त हत्या के लिये उत्तेजित किया जाता था। कहा जाता है १६०८ ई० में 'भारतीय भवन' में लण्डन विश्वविद्यालय के एक छात्र ने बम बनाने के तरीके, उसमें क्या-क्या मसाले लगते हैं तथा उसका इस्तेमाल कैसे होता है, इस विषय पर एक वक्तृता दी

थी, और अपने श्रोताओं से उसने कहा था, "जब आपमें से कोई अपनी जान पर खेल कर बम चलाने को तैयार होगा, तो मैं उसे पूरा विवरण दूँगा।"

लण्डन में भी धाँय धाँय !

१९०९ की पहली जुलाई को मदनलाल धींगरा-नामक एक नवयुवक ने लण्डन के साम्राज्यविद्यालय की एक सभा में सर कर्जन वाइली नामक एक अङ्गरेज को गोली मार दी। सर कर्जन किसी से बात कर रहे थे कि धींगरा ने पिस्तौल निकाल कर उन पर चलाई। कर्जन साहब डर के मारे चीख़ उठे, किन्तु इसके पहले कि कोई कर्जन साहब को बचाने दौड़ता, धींगरा शेर की तरह उन पर झपटा, और एक के बाद दूसरी गोली से उनको समाप्त कर दिया। दिखाने के लिए तो सर कर्जन भारत-मंत्री के शरीर-रक्षक के रूप में नियुक्त थे, किन्तु वास्तव में वे भारतीय छात्रों पर ख़ुफ़िया का काम करते थे। उन्होंने सावरकर तथा श्याम जी के 'भारती-भवन' के मुक़ाबले में भारतीय विद्यार्थियों की एक सभा भी खोल रक्खी थी।

धींगरा कौन थे !

धींगरा अमृतसर जिले के एक खत्री-कुल में उत्पन्न हुए थे। इनका परिवार धनी था। पंजाब-विश्वविद्यालय से बी० ए० पास करके वे आगे पढ़ने के लिए इङ्गलैण्ड गये थे। वे अच्छे छात्र थे, किन्तु कहते हैं कि विलायत के वातावरण में वे अनन्दोपभोग में लिप्त हो गये। विलायत में जाते ही वे 'भारतीय भवन' में आने-जाने लगे। इसका नतीजा यह हुआ कि उनके पीछे ख़ुफिया पुलीस लग गई। ख़ुफिया पुलीस की रिपोर्ट से मालूम होता है कि वे घण्टों अकेले बैठकर पुष्पों का निरीक्षण किया करते थे। ऐसी हालत में वहाँ के उस समय के ख़ुफ़ियों ने रिपोर्ट दी थी वह या तो कवि है या क्रान्तिकारी।

हम इस अध्याय में बङ्गाल के क्रान्तिकारी आन्दोलन पर कोई प्रकाश नहीं डालेंगे, किन्तु इतना यहाँ कह देना ज़रूरी है कि उसी ज़माने में खुदीराम, कन्हाईलाल आदि की टोली बंगाल में खून का फाग रच रही थी। इन समाचारों से मदनलाल के दिल में भी जोश आया। वे भी कुछ करने के लिए व्याकुल हो उठे। उन्होंने आजकल की हिन्दू महासभा के प्राण श्री विनायक सावरकर से यह बात कही। कहा जाता है, सावरकर ने ध्यान से इस नवयुवक की ओर देखा, फिर कहा कि अच्छी बात है। मदन का हाथ ज़मीन पर रख दिया गया, फिर सावरकर ने एक छुरी उठाई, और उसे बेखटके उसके हाथ में भोंक दी। यह परीक्षा थी। मदनलाल के सुन्दर हाथ के कटे हुए हिस्से से लाल-लाल लहू की धारा निकलने लगी थी। गुरु तथा शिष्य दोनों की आँखों में आँसू थे, दोनों ने एक दूसरे को आलिङ्गन कर लिया।

इसके बाद मदनलाल सावरकर से कम मिलने लगे। केवल यही नहीं, वे जाकर सर कर्जन की सभा में शामिल हो गये और 'भारतीय भवन' आना एकदम छोड़ दिया। दूसरे लड़के भीतरी रहस्य को भला क्या जानते थे ? वे लगे मदनलाल को कायर तथा प्रतिक्रियावादी कहने। मदनलाल के कानों में भी ये बातें पहुँची। सुनकर वे खूब हँसे, किन्तु चुप रहे। वे जानते थे कि थोड़े ही समय में इन लोगों की राय बदल जायगी।

अपने सहपाठियों के ख्यालों के प्रति कुछ भी ख्याल न कर वे अपनी अग्नि परीक्षा के लिए तैयारी करने लगे। वे नवयुवक थे। ऐश्वर्य तथा सौंदर्य के किवाड़े उनके लिए खुले थे स्वास्थ्य अच्छा था। ऐसी हालत में मरने की ठान लेना, यह कितना बड़ा त्याग था।

आखिर एक दिन मदनलाल ने वह काम कर ही दिखाया। इङ्गलैण्ड के अन्दर एक अंग्रेज की हत्या, क्या बात है ! चारों तरफ हलचल मच गई। दुनिया के सारे देशों में यह समाचार मोटे-मोटे अक्षरों में छपा। मदनलाल के पिता को भी यह समाचार मिला, किन्तु बजाय

इसके कि वे ऐसे पुत्र के पिता होने के लिए अपने को बधाई देते, वे बहुत बिगड़ गये, और पंजाब से तार भेजा कि वे ऐसे व्यक्ति को, जो राजद्रोही तथा हत्यारा है, अपना पुत्र मानने से इनकार करते हैं। चारों ओर मदनलाल की निन्दा के प्रस्ताव पास हुए, इससे यह समझना भूल होगी कि ये प्रस्ताव किसी प्रकार भारतवासियों के आम जनमत को ज़ाहिर करते हैं।

लण्डन में सभा

लण्डन में भी भारतीयों की एक सभा इसी सिलसिले में हुई। श्री० विपिनचन्द्र पाल इस सभा के सभापति थे। सरकार के ग़ुलाम राजभक्तों के लिये तो बड़ी आसानी थी। एक के बाद एक वे बोलते जाते थे, किन्तु जो धींगरा के तरफ़ वाले थे, उनके लिये बड़ी परेशानी का सामना था। वे कैसे अपने हृदय के भावों को यहाँ पर स्वतन्त्र रूप में व्यक्त कर सकते थे ? वे ग़ुलामों की एक-एक वक्तृता सुनते थे, और हाथ मसल-मसलकर रह जाते थे। सावरकर भी उस सभा में मौजूद थे। उनके माथे पर बल था, होठ फड़क रहे थे, आँखों में अपने वीर साथी की निन्दा सुनते-सुनते क़रीब आँसू आ गये थे। फिर भी वे चुप बैठे थे। क्या करते, कोई रास्ता ही नहीं था। लोग विरोधियों की एक-एक वक्तृता सुनते थे और सावरकर की ओर देखते थे, किन्तु सावरकर तो ऐसे बैठे थे मानों उन्हें काठ मार गया हो। न वे किसी से आँख मिलाते थे, न इधर-उधर झाँकते थे। उनके चेहरे पर एक परेशानी थी, ग्लानि थी, साथ ही साथ, सबसे बड़ी बात बेबसी थी।

सब वक्तृताएँ एकतरफा हो रही थीं। इतने में सभा के अध्यक्ष विपिनपाल उठे। उन्होंने सभा के लोगों को एक बार ध्यान से देखा, फिर पूछा जैसे वे अपने आप ही को पूछ रहे हों—"तो क्या मान लिया जाय, मदनलाल धींगरा की निन्दा का प्रस्ताव सर्वसम्मति से पास होता है ?

"नहीं", कड़ककर शेर की भाँति सावरकर ने कहा। अब उनके

धैर्य का बाँध टूट चुका था, उन्होंने कहा—"नहीं मुझे कुछ कहना है।" विपिन पाल बैठ गये।

सावरकर बोल रहे थे, गुलामपक्ष वालों की तरह वह स्वतंत्रतापूर्वक बोल नहीं सकते थे, इसीलिए उन्होंने बैरिस्टरी की एक पेंच निकाली। उन्होंने कहा कि मदनलाल धींगरा का मामला अभी विचाराधीन है, इसलिए उसकी किसी प्रकार निन्दा या स्तुति नहीं होनी चाहिये, क्योंकि उससे मुकदमे पर असर पड़ेगा। सावरकर इसी ढर्रे पर बोल रहे थे कि सभा में उपस्थित एक अँग्रेज पायजामे से बाहर हो गया। उसने आव देखा न ताव सावरकर को एक घूँसा जमाकर कहा—"ज़रा अँग्रेजी घूँसे का मज़ा ले लो, देखो यह कैसा ठीक बैठता है।"

वह अँग्रेज अच्छी तरह यह बात कह भी नहीं पाया था कि एक हिन्दुस्तानी नौजवान ने उठाकर एक डण्डा उस गुस्ताख़ अँग्रेज की खोपड़ी पर मारा, और कहा—"जरा इसका भी तो मज़ा ले लो, यह हिन्दुस्तान का डण्डा है।"

बस, गड़बड़ मच गई। लोग दौड़ पड़े। किसी ने एक पटाखा सभास्थल में छोड़ दिया। नतीजा यह हुआ कि सभा भंग हो गई। सभापति सभा छोड़कर चले गये। मदनलाल के खिलाफ़ लण्डन में कोई निन्दा का प्रस्ताव नहीं पास हो सका।

अदालत में मदनलाल का गर्जन

मदनलाल रँगे हाथों पकड़े गए थे, लण्डन शहर के अन्दर एक प्रतिष्ठित तथा पदवीधारी अङ्गरेज को उन्होंने जान बूझ कर मारा था। फाँसी उन्हें होगी, यह तो कोई भी बच्चा जान सकता था। वे भी जानते थे, फिर भी उन्होंने अदालत में जो कुछ भी कहा, दिल खोल-कर कहा। उनके बयान में न कहीं जरा भय था, न कोई पश्चात्ताप। उन्होंने कहा था—"जो सैकड़ों अमानुषिक फाँसी तथा कालेपानी की सजा हमारे देशभक्तों को हो रही है, मैने उसी का एक साधारण-सा बदला उस अङ्गरेज के रक्त से लेने की चेष्टा की है। मैंने इस

सम्बन्ध में अपने विवेक के अतिरिक्त किसी से सलाह नहीं ली, मैंने किसी के साथ षड्यन्त्र नहीं किया। मैंने तो केवल अपना कर्तव्य पूरा करने की चेष्टा की है। एक जाति जिसको विदेशी सङ्गीनों से दबाए रक्खा जा रहा है, समझ लेना चाहिए कि वह बराबर लड़ाई ही कर रही है। एक निःशस्त्र जाति के लिये खुला युद्ध तो सम्भव है ही नहीं। मैं एक हिन्दू होने की हैसियत से समझता हूँ कि यदि हमारी मातृभूमि के विरुद्ध कोई जुल्म करता है, तो वह ईश्वर का अपमान करता है। हमारी मातृभूमि का जो हित है, वह श्रीराम का हित है। उसकी सेवा श्रीकृष्ण की ही सेवा है। मेरी तरह एक हतभाग्य सन्तान के लिये जो वित्त तथा बुद्धि दोनों से हीन है, इसके सिवा और क्या है कि मैं अपनी माता की यज्ञवेदी पर अपना रक्त अर्पण करूं। भारतवासी इस समय केवल इतना ही कर सकते है कि वे मरना सीखें और इसके सीखने का एकमात्र उपाय यह है कि वे स्वयं मरें। इसीलिए मैं मरूँगा और मुझे इस शहादत पर गर्व है। ईश्वर से मेरी केवल यही प्रार्थना है कि मैं फिर उसी माता के गर्भ में पैदा होऊँ, और फिर उसी पवित्र उद्देश्य के लिए अपने प्राणों का अर्पण कर सकूं। यह तब तक के लिए चाहता हूँ, जब तक कि वह विजयी तथा स्वाधीन न हो जाय, ताकि मानव-जाति का कल्याण हो और ईश्वर की महिमा का विस्तार हो सके। वन्दे मातरम्।''

१६ अगस्त १६०६ को मदनलाल धींगरा को फाँसी दे दी गई। उनकी लाश जेल के अन्दर ही दफना दी गई।

गणेश दामोदर सावरकर को सज़ा

विनायक सावरकर के बड़े भाई गणेश सावरकर भारत में ही रह कर क्रान्तिकारी दल का सङ्गठन कर रहे थे। १६०८ के प्रारम्भ में गणेश सावरकर ने "लघु अभिनव भारत-मेला" नाम से कुछ देशभक्तिपूर्ण, भड़काने वाली कविताएँ प्रकाशित की थीं। इन कविताओं के कारण गणेश सावरकर को १२१ दफा के अनुसार, अर्थात् सरकार

के विरुद्ध युद्ध छेड़ने के अपराध में, आजीवन कालेपानी की सजा हुई थी। कविताओं के लिये कालापानी ? हाँ, यही बृटिश-न्याय है ! इसी न्याय की नींव पर बृटिश साम्राज्य खड़ा है। मार्क्स का यह कहना कि राष्ट्र कोई निष्पक्ष संस्था नहीं बल्कि राज्य करने वाले वर्ग की कार्य-कारिणी मात्र है, कितना सही उतरता है।

बम्बई-हाईकोर्ट में इस मुकदमे का फैसला देते हुए एक मराठी-भाषी जज ने कहा (याद रहे कि ये कविताएँ मराठी में थीं)—"लेखक का प्रधान उद्देश्य हिन्दुओं के कुछ देवताओं तथा वीरों का, जैसे शिवाजी आदि का नाम लेकर वर्तमान सरकार के विरुद्ध युद्ध-घोषणा करना है। ये नाम तो सिर्फ बहाने हैं। लेखक का कहना तो केवल इतना ही है कि अस्त्र उठाकर इस सरकार का विध्वंस करो, क्योंकि यह विदेशी तथा अत्याचारी है। लेखक का क्या उद्देश्य है, इस बात को जानने के लिये इतना ही काफी है कि लेखक के गीता आदि के वचनों की व्याख्या पर विचार किया जाय।" गणेश सावरकर को ६ जून १९०९ के दिन सज़ा सुना दी गई और तार द्वारा यह सूचना विनायक सावकर को भेज दी गई थी। कहा जाता है कि इसके बाद विनायक सावरकर भी लण्डन में 'भारतीय भवन' की बैठक में बहुत तेज़ी से बोले, और यह कहते रहे कि इसका बदला लिया जायगा। पहली जुलाई को ठीक इसी के बाद सावरकर के ही उभाड़ने पर मदनलाल ने सर कर्ज़न वाइली का ख़ून किया था। इससे रौलट साहब ने यह सन्देह प्रकट किया है कि सम्भव इन दोनों घटनाओं में कोई सम्बन्ध हो।

मिस्टर जैकसन की हत्या

१९०९ की फरवरी के महीने में विनायक सावरकर को पेरिस से २० ब्राउनिङ्ग पिस्तौलें मय कारतूस मिली थी। चतुर्भुज अमीन नाम का 'भारतीय भवन' में एक रसोइया था। वह जब हिन्दुस्तान लौट रहा था, तो उसके सन्दूक में एक झूठा पेंदा लगाकर ये सब चीजें हिन्दुस्तान भेज दी गईं। गणेश सावरकर इसी जमाने में राजद्रोहात्मक

कविताओं के लिए गिरफ्तार हुए थे। गिरफ्तार होने से पहले ही वे एक मित्र से बता गये थे कि इस प्रकार जहाज़ में पिस्तौलें आ रहीं हैं। गणेश की गिरफ्तारी के बाद उस मित्र ने सब सामान ले लिया था।

निम्न अदालत में गणेश सावरकर का मुकदमा करने वाले एक अंग्रेज थे, उनका नाम मिस्टर जैकसन था। जब गणेश सावरकर को सेशन सिपुर्द किया गया, तो दल ने यह तय किया कि मिस्टर जैकसन की हत्या की जाय। तदनुसार औरङ्गाबाद के एक सदस्य ने २१ दिसम्बर १९०९ को मिस्टर जैकसन को गोली मार दी। कहा जाता है कि यह हत्या उन्हीं ब्राउनिंग पिस्तौलों में से एक से हुई। इस प्रकार महाराष्ट्र में यह दूसरे अंग्रेज की हत्या थी। पहली हत्या को हुए लगभग १२ साल के बीत चुके थे। इतने उच्च दिमागों के सालों के प्रयत्न के बाद एक आतङ्कवादी कार्य हो पाता था। केवल इस दृष्टि से देखा जाय, तो भी हम कहेंगे कि आतङ्कवाद बड़ी उच्च शक्तियों का अपव्यय करने के लिए विवश है। इसके साथ ही हम यह मानने में असमर्थ हैं कि इन घटनाओं का हमारी राष्ट्रीय चेतना पर कोई असर नहीं हुआ। यह कह देना आवश्यक है कि इन अलमस्तों का हमारी राष्ट्रीय सुप्त-चेतना (Subconscious mind) पर गहरा असर पड़ा, और राष्ट्रीय मनोजगत् में इसकी बहुमुखी प्रतिक्रिया हुई!

नासिक तथा ग्वालियर-षड्यन्त्र

सावरकर-बन्धु के नेतृत्व में महाराष्ट्र में जो क्रान्तिकारी आन्दोलन हुआ था,उसका और थोड़ा-सा विवरण देना उचित लगता है। मिस्टर जैकसन की हत्या के अपराध में सात आदमियों पर मुकदमा चलाया गया, जिसमें से तीन को फाँसी दे दी गई। नासिक में एक षड्यंत्र चला, जिसमें ३८ आदमियों पर मुकदमा चला। उसमें से २७ आदमी दोषी ठहराये गये, और उनको सजाएँ हुईं। पहले जिस 'मित्र-मेला' का परिचय दिया है, वहाँ अंत में जाकर 'अभिनव भारत-समिति' में परिणत हो गया। नासिक-षड्यन्त्र में जो लोग पकड़े गये थे, वे महा-

राष्ट्र के हर कोने से लाए थे। इससे ज्ञात होता है कि यह षड्यन्त्र सुदूर विस्तृत था। ग्वालियर में भी दो षड्यन्त्र चले, एक में २२ व्यक्ति तथा दूसरी में १६ व्यक्ति फाँसे गये। इन सब षड्यन्त्रकारियों के सम्बन्ध में एक खास बात यह है कि करीब-करीब ये सभी ब्राह्मण थे और उनमें भी अधिकांश चितपावन ब्राह्मण !

वायसराय पर बम

आम तौर पर लोगों की धारणा है कि भारत के इतिहास में वायसराय पर केवल दो ही बार बम पड़े—एक लॉर्ड हार्डिञ्ज पर १९१२ में और दूसरा लॉर्ड इरविन पर १९२९ में; किंतु नहीं, इनसे पहले भी वायसराय के जीवन पर हमला हो चुका था। १६०९ में लॉर्ड और लेडी मिन्टो जब अहमदाबाद में आई थीं, तो उनकी गाड़ी पर भीड़ में से किसी ने एक बम फेंका था। वह बम फूटा नहीं। खैर, जब उनकी तलाशी की गई कि क्या गिरा, और एक आदमी ने उन्हें उठाया, तो उसका हाथ उड़ गया। इतिहासज्ञ पाठकों को पता होगा, यही लार्ड मिन्टो, जो क्रांतिकारियों के बम से बचे, थोड़े दिनों बाद अण्डमन का निरीक्षण करते हुए एक पठान कैदी की छुरी से मारे गए थे।

सतारा-षड्यन्त्र

सन् १६१० में संतारे में एक षड्यंत्र का पता लगा। तीन ब्राह्मण युवकों पर मुकदमा चलाया गया। इन पर आरोप था कि उन्होंने बादशाह के विरुद्ध षड्यंत्र किया है। ये लोग सावरकर-बन्धु की 'अभिनव भारत-समिति' की एक शाखा की गुप्त सभा के सदस्य थे। इन तीनों को सज़ा हो गई।

उपसंहार

इस प्रकार हम देखते हैं कि क्रान्तिकारी आन्दोलन के प्रारम्भिक युग में दो षडयन्त्रदल थे—

(१) चाफेकर-बन्धु का दल

(२) सावरकर-बन्धु का दल

दोनों में धार्मिक भावनाओं को बहुत महत्व दिया गया था। सच बात तो यह है कि धर्म के नाम पर लोगों को मुख्य तौर से जोश दिलाया जाता था। चाफेकर-बन्धु ने तो शुरू में एक 'हिंदू-धर्म-बाधा निवारिणी सभा' खोल रक्खी थी।

बंगाल में क्रान्ति-यज्ञ का प्रारम्भ

लोग क्रान्तिकारी आन्दोलन को विशेष कर बङ्गाल का ही आन्दोलन समझते हैं, किन्तु जैसा कि देखा गया है, महाराष्ट्र में ही क्रान्तिकारी षड्यन्त्रों का नहीं तो आतङ्कवादी हत्याओं का सूत्रपात हुआ था। बाद को जहाँ तक क्रान्तिकारी आन्दोलन का सम्बन्ध है महाराष्ट्र बिल्कुल अलग ही हो गया। बंगाल में एक बार कार्य शुरू होते ही उसका ताँता बराबर जारी रहा, और इस प्रकरण में सेंकड़ों नवयुवक जेल गए, फाँसी चढ़े, गोलियाँ खाईं। इसका क्या कारण है? बात है कि जब तक दृश्यगत परिस्थितियाँ (Objective Condition) अनुकूल नहीं होती, तब कोई आन्दोलन, चाहे उसको कितने ही अच्छे नेता मिल जायँ, पनप नहीं सकता। बंगाल की परिस्थितियाँ ऐसी थी कि जिसमें आतङ्कवादी क्रान्तिकारी आन्दोलन पनप सकता था। उसका संक्षिप्त वर्णन नीचे दिया गया है।

इस सदी के प्रारम्भ में ही वायसराय लार्ड कर्जन ने 'विश्वविद्यालय-कानून' नाम से एक कानून जारी किया। इस कानून का साफ मतलब यह था कि अंगरेजी पढ़े-लिखे लोगों की संख्या पर रोक लगाई जाय, लोगों में कम-से-कम इसका मतलब यही लगाया गया था।

फलस्वरूप अंगरेजी पढ़े-लिखे लोगों में बड़ी हलचल पैदा हुई, विशेष-कर बंगाल के पढ़े-लिखे लोगों में। बंगाल में ही सर्वप्रथम अँगरेजी-साम्राज्य-वाद ने अपना खूनी पञ्जा फैलाया था, इसलिये वहाँ के उन लोगों ने, जिन्होंने अँगरेजी पढ़-लिखकर बृटिश-झण्डे की मनहूस साया को स्वीकार कर लिया था, तथा जो लोग साम्राज्यवाद के मदद-गार हो गए थे अब तक उन्होंने बड़ी चैन की बाँसुरी बजाई थी। इन साम्राज्यवाद के भाड़े के 'भद्रलोक' गुलामों ने जब देखा कि इस प्रकार इस 'बिल' से उनके जन्म सिद्ध गुलामी के अधिकार पर कुठाराघात हो रहा है, तो वे बहुत ही खिन्न हो गए। अपने वर्ग के स्वार्थ पर जरा चोट पड़ते ही इनकी सब राजभक्ति काफूर हो गई, और अखबारों में तथा सभाओं में जन्मसिद्ध अधिकार के लिये तीव्र आंदोलन होने लगा। मजे की बात यह है कि जब अँगरेजी-राज्य के प्रारम्भ काल में राजा राममोहन राय ने अँगरेजी-शिक्षा को तरजीह देने का आंदोलन किया था, उस समय इन्हीं बाबू लोगों में से बहुतेरों ने उनका विरोध किया था। किंतु इस बीच में गङ्गा में बहुत पानी बह चुका था, लोग अँगरेजी-शिक्षा के कारण क्लर्की आदि में बहुत मजा कर चुके थे, इसलिये अब दूसरी बात हो गई थी।

बङ्ग-भङ्ग

बङ्गाल के मध्य श्रेणी वाले तो यों हीं खार खाए हुए बैठे थे कि लार्ड कर्जन ने एक नया शोशा छेड़ दिया, और वह पहले वाले से कहीं खतरनाक था। बङ्गाल, बिहार, उड़ीसा उन दिनों एक प्रान्त था। इस प्रान्त की जनसंख्या ७ करोड़ ८० लाख थी, और एक छोटे लाट के अधीन था। जानने वालों को पता होगा कि बङ्किमचन्द्र ने जो 'बन्दे मातरम्' गाना लिखा था, उसमें पहले, अब जहाँ "त्रिंशकोटि-कण्ठकलकलनिनादकराले" है, वहाँ "सप्तकोटिकण्ठकलकलनिनादकराले द्विसप्तकोटिकरैधृ॑तकरवाले" था। यह सप्तकोटि उस जमाने के बङ्गाल का वर्णन था। लार्ड कर्जन की यह आदत थी कि वह जिस नतीजे

पर पहुँच जाते थे, उसे कार्यरूप में परिणत करके तभी दम लेते थे। न तो वह यह देखते थे कि इसका क्या असर होगा, न जनमत का कोई लिहाज करते थे। लार्ड कर्जन तो इस नतीजे पर पहुँच ही चुके थे कि बङ्गाल का अङ्ग-भङ्ग कर दिया जाय, फिर भी एक दिखावे के लिये वह बङ्गाल गए और अपनी नीति का परिचय दे दिया।

जुलाई १९०५ में यह घोषित कर दिया गया कि बंगाल दो टुकड़ों में बाँट दिया जायगा। देश में इसके विरुद्ध तीव्र आंदोलन हो रहा था, बंगाली तो इसके खिलाफ आगबगूला हो रहे थे। सारे बंगाल में एक बिजली-सी दौड़ गई। उसी बंगाल ने जिसने गुलामी का तौक सबसे पहले पहना था, अब बृटिश-साम्राज्यवाद के विरुद्ध विद्रोह का झण्डा बुलन्द कर दिया। बंगाली यह कभी नहीं चाहते थे कि उनके 'सोने का बंगाल' दो टुकड़ों में बाँट दिया जाय, अतएव उसके विरुद्ध एक विराट् आंदोलन खड़ा हो गया। विशेषकर मध्यवित्त श्रेणी को ही इस बाँट से नुकसान पहुँचता था, किन्तु जब 'बङ्ग-भङ्ग' का नारा दिया गया, तो उसके साथ सब वर्गों की सहानुभूति हो गई।

'बङ्ग-भङ्ग' तो हो गया, किन्तु बंगाली नेताओं ने आशा नहीं छोड़ी। वे बराबर आंदोलन करते रहे। सभाएँ होती रहीं, जलूस निकलते रहे। इस जमाने में सैकड़ों गाने लिखे गए, जो एक हद तक जनता के हृदय से निकले और जनता के गाने थे। जो लोग समझते हैं कि गाँधीजी ने ही हमारे देश में जन-आंदोलन का श्रीगणेश किया, वे गलती करते हैं, 'बङ्ग-भङ्ग' का आदोलन भी एक जन-आंदोलन था। भारतवर्ष के वर्तमान युग के इतिहास को पढ़ते समय इस बात को स्मरण रखना बहुत आवश्यक है।

बङ्गाली प्रान्तीयतावादी क्यों हुए ?

इस आन्दोलन में धर्म का बहुत सहारा लिया गया। किन्तु इस बात पर विवेचना करने के पहले हम यहाँ एक महत्वपूर्ण बात पर विचार करेंगे। बङ्ग-भङ्ग की यह विपत्ति केवल बङ्गाल ही के ऊपर

पड़ी थी, इसलिए दूसरे प्रान्तों के लोग इस विपत्ति की गहराई तक नहीं जा सकते थे, न उससे कोई सक्रिय रूप से सहानुभूति रख सकते थे। उस जमाने में कलकत्ते में बहुत सी मिलें खुल रही थीं, इस प्रकार देशी पूँजीवाद धीरे-धीरे अपने लड़खड़ाते पैरों को जमा रहा था और उसका इस देश में एक दुश्मन था, विदेशी पूँजीवाद। दूसरे दुश्मन जो थे जैसे कुटी-शिल्प, छोटे देशी उद्योग-धन्धे, उनको तो साम्राज्यवाद के गुर्गों ने अत्यन्त जघन्यता और बर्बरता से नष्ट कर डाला था। यहाँ तक कि लोगों की उँगलियाँ काट डाली गईं, मकान फूँक दिये गये। देशी पूँजीपतियों ने अच्छा मौका देखा, उन्होंने 'स्वदेशी' का नारा दिया, बस, यह नारा इतना जबरदस्त हो गया कि सारे आंदोलन का नाम ही स्वदेशी-आन्दोलन हो गया। इससे नई खुलने वाली देशी कलों को काफ़ी सहारा मिल गया, और वे खड़ी हो गयीं। बंगाल के लोगों में देशभक्ति के साथ-ही-साथ प्रान्त-भक्ति भी जोरों से जग उठी।

इसमें तो कोई सन्देह नहीं कि बंगाल के लोगों में और प्रांतों के लोगों से अधिक प्रान्तीयता है, किन्तु इसके बड़े गहरे ऐतिहासिक कारण हैं। किसी जाति में यदि किसी विशेष भाव का उत्कर्ष है, तो यह कहना कि यह उसके लिए स्वाभाविक है, एक ग़लत तरीका है। वैज्ञानिक तरीका तो यह है उसके कारणों का पता लगाया जाय। बात यह है कि शुरू शुरू में बंगाल के लोग ही अंगरेज साम्राज्यवाद के चंगुल में फँसे। वहीं के लोगों ने पहले अंगरेजी सीखी, और अंगरेजों के गुमाश्ते, मुन्शी, दुभाषिए बनकर भारतवर्ष में उतने ही आगे बढ़ते गये, जितना कि मनहूस बृटिश झण्डा आगे बढ़ता गया। स्वभावतः इन अँगरेजों के गुलामों को, चूँकि वे बृटिश-तोपों के साये में थे, तथा कुछ हद तक उनका और अँग्रेजों का स्वार्थ एक था, ग़लतफ़हमी हो गयी कि ये और प्रान्तों के लोगों से ऊँचे हैं। इस किस्म की ग़लत फ़हमी आज उन ग़ुलाम सिक्खों को भी है जो हांककांग, सिंगापुर आदि स्थानों में बृटेन की छत्रछाया के नीचे रहते हैं। मेरे नज़दीक

तो ये सिक्ख और वे बङ्गाली (बाद को उसमें सभी प्रान्त के लोग शामिल होते गये) केवल गुलाम ही नहीं ग़ुलाम बनकर दूसरों को ग़ुलाम बनने वाले हैं।

जो कुछ भी हो, इन मध्यवित्त श्रेणी के गुलाम बंगालियों को ख्याल हो गया था कि वे ऊँचे हैं, धीरे-धीरे यह भाव बङ्गाल के साहित्य में भी सूक्ष्मरूप से प्रवेश कर गया, और इस प्रकार कुछ हद तक जाति की चारित्रिक विशेषता में परिणत हो गया। इसके बाद 'बङ्ग-भङ्ग' आया, इस बात में बङ्गाल के अलावा किसी प्रान्त को कोई खास दिलचस्पी नहीं थी। बङ्गालियों ने एक प्रकार से अकेले इस आन्दोलन को चलाया। इसका भी नतीजा प्रान्तीयता को दृढ़ करना हुआ। बाद को भी ऐसे ही कई कारण आ गये, जिससे कि यह भाव दृढ़ हुआ। हम कदाचित् विषय से कुछ बाहर चले गये, इसलिए इसे यहीं समाप्त करते हैं।

पूर्वीय देशों में जागृति

प्रायः एक सदी से या उसके कुछ अधिक समय से पूर्वीय देशों को हर मामले में युरोपीय देशों के सामने दबना पड़ रहा था। पूर्व के बहुत-से लोगों में आत्मविश्वास नहीं-सा रह गया था। यही धारणा सबके दिल में जम रही थी कि युरोपियन लोग अजेय हैं। ऐसे समय में जापान ने जारशाही रूस को पछाड़ दिया। रूस युरोप के शक्तिशाली राष्ट्रों में समझा जाता था, इसलिये रूस के हारने से समस्त पूर्व के लोगों में एक अजीब उत्साह दृष्टिगोचर होने लगा। ठीक इसी समय बङ्ग भङ्ग हुआ, बस इसी बात पर उस जमाने के बंगाली और भी उत्तेजित हो गए। इन लोगों ने कहा—"वाह! क्या बंगाली कोई चीज नहीं? उधर जापान ने तो रूस को पछाड़ दिया और इधर बंगाल का यह अपमान? क्या बंगाली मर्द नहीं हैं? क्या उनमें धर्म तथा देश की ममता नहीं है? वे शक्ति की देवी, काली-माता को याद करें! वे अपनी शक्ति को बढ़ावें, मराठा वीर

शिवाजी के कारनामों को वे स्मरण करें। वे विदेशी सरकार का सबसे बड़ा पाया विदेशी वस्तुओं का 'बायकाट' कर उचित तरीके से विरोध करें।"

भारतवर्ष में पहली पिकेटिङ्ग

यह आंदोलन मुख्यतः एक हिंदू-आंदोलन ही रहा; क्योंकि हिंदू 'भद्रलोक'-श्रेणी के लोग ही अँगरेजी-शिक्षित थे। यह भी स्मरण रखने की बात है कि भारतवर्ष में पिकेटिंग सबसे पहले इसी समय में हुई; विशेषकर छात्रों ने इसमें खूब भाग लिया। पिकेटिंग से कई जगहों पर गड़बड़ी हुई, किंतु बंगाली दबे नहीं।

धर्म और राष्ट्रीय उत्थान

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, धार्मिक भावों से अधिक लाभ उठाया गया। पूर्वीय देशों के उत्थान का शुरू-शुरू का इतिहास सब इसी प्रकार धार्मिक रंग में रंगा हुआ है। चाफेकर को हम देख ही चुके हैं कि उन्होंने 'हिंदू-धर्मबाधा-निवारिणी समिति' बनाई थी, सावरकर-बन्धु भी धार्मिक थे, हम दिखलाएंगे कि बङ्गाली क्रांतिकारियों ने भी धर्म के सहारे लोगों को उभाड़ा था। इस वाक्य से शायद यह गलतफहमी हो कि वे धर्म को नहीं मानते थे, केवल उभाड़ने का काम उससे लेते थे। इसलिये यह कह देना जरूरी है कि वे स्वयं धर्म के कट्टर मानने वाले थे।

इसी जमाने में व्यायाम तथा मानसिक उन्नति के लिये अनुशीलन-समितियाँ खुलीं। इनका प्रचार गाँव-गाँव तक फैला हुआ था। अकेले ढाका-समिति की ही ६०० शाखाएँ थीं। बहुत दिनों तक ये समितियाँ खुल्लमखुल्ला काम करती रहीं, किन्तु सरकार ने जब इन पर प्रहार किया, तो ये ही खुली समितियाँ कुछ सदस्यों को लेकर गुप्त समितियों में परिणत हो गईं। ऐसा तो होता ही है, जब खुले तौर पर काम नहीं करने दिया जाता, तभी लोग गुप्त समितियाँ बनाते हैं।

वारीन्द्रकुमार घोष

१८८० में वारीन्द्रकुमार घोष का जन्म इङ्गलैण्ड में हुआ था, किंतु वे बचपन में ही इङ्गलैण्ड से भारतवर्ष लाए गए थे। १६०२ में वे अपने बड़े भाई श्री० अरविन्द घोष के निकट से जो उस समय बड़ौदा-कालेज में वाइस प्रिन्सिपल थे, बंगाल आए। ये दोनों भाई डाक्टर के० डी० घोष के लड़के थे। डाक्टर घोष सरकारी नौकर थे। अरविन्द की सारी शिक्षा इङ्गलैण्ड में ही हुई थी, वे कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय के 'Classical Tripos' की परीक्षा में प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हुए थे। इण्डियनसिविल सर्विस में भी वे ले लिए जाते, किंतु अन्य परीक्षाओं में पास होने पर घोड़े पर चढ़ने की परीक्षा में असफल होने के कारण उनको नहीं लिया गया था।

वारीन्द्र एक निश्चित उद्देश्य को लेकर ही बंगाल गए थे। बाद को उन्होंने स्वयं अदालत में कहा कि वे क्रान्तिकारी आन्दोलन के लिये बंगाल गए थे। इस आन्दोलन का उद्देश्य सशस्त्र उपायों से ब्रिटिश-सरकार को यहाँ से निकालना था तथा उसकी प्रथम सीढ़ी गुप्त समिति का रूप लेने वाली थी। वारीन्द्र ने बंगाल जाकर देखा कि कुछ व्यायाम-समितियाँ जरूर ही हैं, उन्होंने कुछ और भी स्थापित की, और क्रान्तिकारी भावनाएँ भी फैलाई; किन्तु जो बात वे चाहते थे, उसकी गुञ्जाइश उन्होंने नहीं देखी, इसलिये वे १६०३ में फिर बड़ौदा लौट गए। अभी समय नहीं आया था।

वारीन्द्र फिर आए

१६०४ में जब कि भावी बंग-भंग के विरुद्ध आन्दोलन जोरों पर पर था, उस समय वे फिर बंगाल गए। अब की बार वारीन्द्र को पहले से कहीं अधिक सफलता मिली। वारीन्द्र बाद को जब पकड़े गए, तो उन्होंने २२ मई १६०८ को एक मेजिस्ट्रेट के सामने जो बयान दिया था, वह नीचे दिया जाता है। स्मरण रहे कि वारीन्द्र के मुक़दमे में

सभी ने आपस में सलाह करके बयान दे दिया था उन्होंने ऐसा करने में देश की भलाई समझी। जो कुछ भी हो, वारीन्द्र के बयान का सारांश यह था—

वारीन्द्र घोष का बयान

"एक साल बड़ौदा में रहने के बाद मैं बंगाल लौट कर आया। मेरा उद्देश्य यह था कि राष्ट्रीय मिशनरी की भाँति मैं भारतीय स्वाधीनता-आन्दोलन का प्रचार करूँ। मैं एक ज़िले से दूसरे जिले गया और मैंने वहाँ अखाड़े वगैरह स्थापित किए। नौजवानों को ऐसी जगहों पर कसरत सिखाई तथा राजनीति में उनकी दिलचस्पी पैदा की जाती थी। इसी भाँति मैंने दो साल तक लगातार स्वाधीनता का प्रचार करते हुए दौरा किया। मैं इसी बीच में बङ्गाल के लगभग सब जिलों का दौरा कर चुका था। मैं इस बात से थक गया और बड़ौदा लौट गया, और फिर अपनी किताबों में डूब गया। एक साल बाद फिर मैं बङ्गाल लौट आया। अब की बार मैं इस नतीजे पर पहुँचा कि केवल शुद्ध राजनीतिक प्रचार-कार्य से इस देश में कुछ नहीं होगा लोगों को आध्यात्मिक शिक्षा देनी चाहिए, ताकि वे विपत्ति का सामना कर सकें। एक धार्मिक संस्था खोलने की योजना भी मेरे दिमाग़ में थी। तब तक स्वदेशी तथा बायकाट आन्दोलन भी आरम्भ हो चुका था। मैंने सोचा कि कुछ आदमियों को मैं अपनी देख रेख में शिक्षा दूँ, इसलिये मैंने इन लोगों को एकत्र किया, जो मेरे साथ पकड़े गए हैं। मेरे मित्र भूपेन्द्रनाथ दत्त तथा अविनाश भट्टाचार्य की सहायता से मैंने 'युगान्तर' प्रकाशित करना शुरू किया। हम ने लगभग डेढ़ साल तक इसे चलाया, फिर इसे वर्तमान व्यवस्थापकों के हाथ सौंप दिया। अखबार का भार इस प्रकार दूसरों पर सौंपने के बाद, मैं फिर लोगों को भर्ती करने में लग गया। मैंने १९०७ के शुरू से लेकर अब तक (अर्थात् १९०८) करीब १४-१५ नवयुवकों को एकत्रित किया। मैंने इन नवयुवकों को धार्मिक पुस्तकें तथा राजनीति पढ़ाई। हम लोग हमेशा यही सोचते थे कि

आगे जाकर एक क्रान्ति होगी और इस के लिए अस्त्र-शस्त्र भी इकट्ठे किए जाने लगे। मैंने इन दिनों ११ पिस्तौलें, चार राइफलें और एक बन्दूक एकत्र कर ली थी। हमारे यहाँ के नवयुवकों में एक उल्लासकर-दत्त भी था। उसने कहा कि चूँकि मैं आप लोगों से मिलकर काम करना चाहता था, इसी लिये मैंने बम बनाना सीख लिया था। उसके घर में एक प्रयोगशाला थी, जिसका कि उसके पिता को पता नहीं था। उसी में वह अपने प्रयोग किया करता था। मैं कभी इस प्रयोगशाला में नहीं गया। मुझे उस से केवल यह मालूम भर था कि एक ऐसी प्रयोगशाला है। उल्लासकर की मदद से हम ने ३२ नं० मुरारीपुकुररोड के एक मकान में बम बनाना शुरू किया। इस बीच में हमारे एक मित्र हेमचन्द्रदास अपनी जायदाद का एक हिस्सा बेंचकर पैरिस में मेकेनिक्स और हो सका तो बम बनाना सीखने चले गए। जब वे लौट आए, तो वे बम बनाने के हमारे कारखाने में उल्लासकर के साथ शामिल हो गए। हम कभी भी यह नहीं समझते थे कि राजनीतिक हत्याओं से आजादी मिल जायगी। हम हत्याएँ केवल इसलिये करते हैं कि हम समझते हैं कि जनता को इसकी आवश्यकता है।"

वारीन्द्र के अतिरिक्त और लोगों ने जो बयान दिए उन से भी साफ हो जाता है कि उस जमाने के क्रान्तिकारी क्या चाहते थे। उपेन्द्र नाथ बनर्जी इन षड्यन्त्र कारियों में एक प्रमुख व्यक्ति थे, बंगला के लेखकों में उन्हें एक प्रमुख स्थान प्राप्त है।

उपेन्द्र का बयान

"मैंने सोचा कि हिन्दुस्तान के कुछ आदमी तब तक कुछ काम नहीं करेंगे, जब तक कि उन्हें धार्मिक रूप से न कराया जाय, इसलिये मैंने चाहा कि अपने काम में साधुओं से मदद लूँ। जब साधुओं की की मदद न मिली, तो मैंने छात्रों पर ध्यान दिया, और उनको धार्मिक, नैतिक तथा राजनीतिक शिक्षा देने लगा। तब से मैं बराबर लड़कों में देश की दशा तथा आजादी की जरूरत पर प्रचार करता रहा, और यह

बताता रहा कि इसको हासिल करने का एकमात्र उपाय लड़ना है। वह इस प्रकार होगा कि अभी तो गुप्त समितियाँ स्थापित कर हम भावनाओं का प्रचार करें तथा अस्त्र शस्त्र संग्रह करें, फिर जब समय आएगा और हमारी तैयारी पूरी हो जायगी, तो हम विद्रोह करें मैं यह जानता था कि वारीन्द्र, उल्लासकर और हेम बम बना रहे हैं, ऐसा करने में उनका उद्देश्य उन सरकारी अफसरों को, उदाहरणार्थ गवर्नर तथा किङ्सफोर्ड को मारना था, जो दमन द्वारा हमारे काम में रोड़े अटकाते रहते थे।"

दूसरे अभियुक्तों ने इसी प्रकार के बयान दिए।

क्रान्तिकारियों का प्रचार-कार्य

वारीन्द्र जिस षड्यन्त्र में लिप्त थे, जब वह पकड़े गए तो वह 'अलीपुर। षड्यन्त्र' नाम से मशहूर हुआ। इस षड्यन्त्र के बहुत से सदस्य उच्च शिक्षित थे। कुछ तो विदेशों से भी आए थे। जनता में भी असन्तोष था, ऐसी अवस्था में वारीन्द्र आदि ने प्रचार-कार्य और भी जोरों से किया। वारीन्द्र वगैरह ने एक अखबार 'युगान्तर' नाम से निकाला १९०७ में इसकी ग्राहक-संख्या ७००० थी। १९२८ में इसकी बिक्री और भी बढ़ी, किंतु इसी सन् में Newspaper's incitement to offences Act 'समाचार-पत्रों द्वारा विद्रोह के लिये प्रोत्साहन-सम्बन्धी कानून' के अनुसार इसे बन्द कर दिया गया। चीफ जस्टिस सर लारेन्स जेन्किन्स ने 'युगान्तर' की फाइलों के सम्बन्ध में बताया—

"इनकी हरएक पङ्क्ति से अङ्गरेजों के प्रति विद्वेष टपकता है, हरएक शब्द से क्रान्ति के लिये उत्तेजना झलकती है। इनमें बताया गया है कि क्रन्ति कैसे होगी ?"

जो लोग कि अखबार निकाल कर एकदम क्रान्ति का प्रचार करते थे, उनके सम्बन्ध में न तो यह कहा जा सकता है कि वे जनमत को कोई महत्व नहीं देते थे, और न यह कहा जा सकता है कि वे प्रचार-कार्य से अनभिज्ञ थे। अवश्य ही वे प्रचार कार्य द्वारा जनमत को इस

हद तक ले जाना चाहते थे कि कोई विद्रोह हो, कम-से-कम वे चाहते थे जनता उसका विरोध न करे।

माननीय जस्टिस मिस्टर रौलट ने अपनी रिपोर्ट में दिखलाया है कि 'युगान्तर' किस प्रकार का प्रचार-कार्य करता था। इसके लिए उन्होंने 'युगान्तर' से दो उदाहरण दिये हैं। हम दोनों का यहाँ अनुवाद उद्धृत करते हैं—

"अस्त्र की शक्ति प्राप्त करने का एक और बहुत ही अच्छा उपाय है। रूस की क्रान्ति में देखा गया है कि जार की सेना में क्रान्तिकारियों से मिले हुये बहुत-से आदमी हैं जो कि समय पड़ने पर अस्त्र-शस्त्र समेत क्रान्तिकारियों से मिल जायँ। फ्रांस की राजक्रान्ति में भी यह प्रणाली खूब सफल रही थी। जहाँ पर कि शासक विदेशी हैं, वहाँ तो क्रान्तिकारियों के लिए और भी सुभीता है, क्योंकि विदेशी-सरकार को अपनी अधिकांश सेना को पराधीन जाति से ही भर्ती करना पड़ता है यदि क्रान्तिकारीगण बुद्धिमानी से इन लोगों में स्वतन्त्रता का प्रचार करें, तो बहुत काम हो सकता है। जब असली संघर्ष का मौका आएगा, तब क्रान्तिकारियों को न सिर्फ इतने सीखे हुए आदमी मिलेंगे; बल्कि सरकारपक्ष के अच्छे-से-अच्छे हथियार भी मिलेंगे।"

दूसरा पत्र इस रूप में था—

प्रिय सम्पादकजी,

मुझे मालूम हुआ है कि आप के अखबार हजारों की तादाद में बाजार में बिकते हैं। यदि मान भी लिया जाय कि आप के अखबार की पन्द्रह हजार प्रतियाँ खप जाती हैं, तो इसका अर्थ होता है कि कम-से-कम ६०,००० लोग उसे पढ़ते हैं। मैं इन ६०,००० व्यक्तियों से एक बात कहने का लाभ नहीं रोक सकता, इसीलिये मैंने असमय में कलम पकड़ी है! मैं पागल, नादान तथा सनसनी पैदा करने वाला ही सही, मेरे आनन्द की सीमा नहीं रहती है, जब कि मैं देखता हूँ कि कि चारों ओर असन्तोष बढ़ रहा है ··ऐ डकैती! मैं तुम्हारी पूजा

करता हूँ, हमारी सहायता कर। अब तक तुम ने हमें लुटवाया, किन्तु अब हमें वही मार्ग दिखा, जिस स हम लूटने वालों को लूट सकें। इसी लिये हम तुम्हारी पूजा करते हैं।"

ऊपर जो पत्र दिया गया, वह हम ने रौलट साहब के विवरण से लिया है, अतएव उसमें कहाँ तक नमक-मिर्च मिलाया गया है, तथा कहाँ तक अतिरञ्जन है, यह मैं नहीं कह सकता।

बाद की सब बातें पृथक अध्यायों में आ जावेंगी, केवल थोड़ी सी महत्त्वपूर्ण घटनाओं का वर्णन दे देते हैं, जिनका उल्लेख वहाँ नहीं होगा।

लाट साहब पर हमला

१६०७ के अक्तूबर में गवर्नर की गाड़ी को उड़ा देने के दो षड्-यन्त्र हुए थे। ६ दिसम्बर १६०७ को गवर्नर की गाड़ी बड़ी शान्ति से अपने पथ पर मिदनापुर के पास से जा रही थी। इतने बड़े जोर का धमाका हुआ। गाड़ी पटरी पर से उतर गई, किन्तु लाट साहब बाल-बाल बच गए। पुलीस की रिपोर्ट के अनुसार इस धड़ाके से पाँच फुट चौड़ा और पाँच फुट गहरा गड्ढा हो गया था।

१६०७ के अक्तूबर में ढाका जिले के निताइगञ्ज-नामक स्थान में एक आदमी को छुरा मार कर लूट लिया गया। उसी सन् के २३ दिसम्बर को ढाका के भूतपूर्व जिला मैजिस्ट्रेट मिस्टर एलन की पीठ पर गोली मारी गई, अन्त में वे बच गए। ११ अप्रैल १६०८ को चन्दननगर के फ्रेंच मेयर के घर पर बम डाला गया, कोई मरा नहीं। इस मेयर पर, कहा जाता है, इसलिये हमला किया गया था कि उसने फ्रेंच भारत से गुप्त रूप में अस्त्र-शस्त्र मँगाने का रास्ता बन्द कर दिया था।

मुजफ्फरपुर-हत्या-काण्ड

३० अप्रैल १६०८ को किंग्सफोर्ड के धोखे में मिसेज़ और मिस केनेडी की गाड़ी पर बम फेंका गया। बम फेंकने वाले का नाम खुदी-

राम था। मिसेस और मिस केनेडी दोनों मर गईं। खुदीराम के बारे में विस्तार-पूर्वक हम आगे लिखेंगे।

अलीपुर-षड्यन्त्र

३४ मुरारीपुकुर-रोड में जो बम का कारखाना था, जब वह पकड़ा गया, तो उसी के साथ बहुत-से बम, डिनामाइट तथा चिट्ठियाँ भी पकड़ी गईं। ३४ आदमी पकड़े गए और इस षड्यन्त्र का नाम अलीपुर षड्यन्त्र पड़ गया। अभियुक्तों में से एक अर्थात् नरेन गोसाईं मुखबिर हो गया, किन्तु अदालत में उसका बयान होने के पहले ही दो क्रान्तिकारी नवयुवकों ने बड़ों से बिना सलाह लिए ही, चोरी से जेल में पिस्तौलें मँगा ली, और मुखबिर का काम तमाम कर दिया। इन दोनों नवयुवकों के अर्थात् श्रीकन्हाईलाल तथा श्रीसत्येन चाक को फाँसी की सजा हुई। अन्त तक अलीपुर-षड्यन्त्र में १५ आदमियों को सम्राट् के विरुद्ध षड्यन्त्र करने के अपराध में सजा हुई। इन सजा-याफ्तों में वारीन्द्रकुमार घोष, उल्लासकर दत्त, हेमचन्द्र दास तथा उपेन्द्र बनर्जी का नाम पहले उल्लेख किया जा चुका है। १० फरवरी १९०९ को अलीपुर षड्यन्त्र का सरकारी वकील जान से मार डाला गया। २४ फरवरी सन् १९१० को जब अलीपुर-षड्यन्त्र की अपील की सुनाई हाइकोर्ट में हो रही थी, उस समय डी० एस्० पी०, जो सरकार की ओर से इस मुकद्दमे की देख-रेख कर रहा था, दिनदहाड़े अदालत से निकलते समय गोली से मार दिया गया।

इसी प्रकार की बहुत-सी घटनाएँ हुईं, जिनका अलग-अलग उल्लेख करना न तो सम्भव है, न उसकी कोई जरूरत है। सार यह है कि बंगाल की मध्यवित्त श्रेणी इस प्रकार बृटिश-साम्राज्यवाद पर वार करती रही। सारा बंगाल और कुछ हद तक सारा भारत इन अलमस्तों के पीछे था। इस आन्दोलन का और कुछ नतीजा हो या न हो, बंगाल तो फिर से एक हो गया। मानना पड़ेगा कि जाति की मुरझाई हुई मनोवृत्ति पर शहीदों के खून की यह वर्षा काफी उत्तेजक

साबित हुई। बंगाली जाति एक बेरीढ़ की जाति थी। इन लोहे की रीढ़वालों ने उसे एक 'रीढ़दार जाति' बना दी। गुलाम हिन्दुस्तान के गुलाम हिन्दुस्तानी नहीं, किन्तु स्वतन्त्र भारत के स्वतन्त्र लेखक ही इनके असली मूल्य को आँक सकेंगे।

जिस समय 'वन्देमातरम्' कहने पर लोग मारे जाते थे, जन-आन्दोलन जब स्वप्न था, उस जमाने में इन लोगों ने जो हिम्मत की, कोई अन्धा, मूर्ख, कायर भले ही उसे छोटा बतावे, किन्तु हमारी जाति के मन पर उसका जो असर पड़ा, वह बहुत महत्त्वपूर्ण है।

कन्हाई का होली खेलना

ऊपर हम संक्षेप में कन्हाईलाल का वर्णन कर आये, किन्तु उस ज़माने में कन्हाई के कार्य से सारे बङ्गाल में जो सनसनी हुई थी, और जो खुशी की लहर दौड़ गई थी उसको देखते हुए इस विषय का थोड़ा विस्तृत वर्णन होना ज़रूरी है। अलीपुर षड्यन्त्र में नरेन गोसाई नामक एक नौजवान मुखबिर हो गया, ३० जून १६०८ को इसे माफ़ी दे दी गई। साधारण कायदे के मुताबिक नरेन को अभियुक्तों से हटाकर अस्पताल में रक्खा गया, हाँ राजनैतिक मुकदमा होने के कारण उस पर अच्छी देखरेख रखते थे, ताकि वह पलट न जाय या उस पर कोई हमला न करे। जब नरेन इस प्रकार मुखबिर बना तो अभियुक्तों में जो नौजवान थे उनको बहुत बुरा लगा, और उन्होंने तय किया कि इसकी किसी प्रकार हत्या की जाय, किन्तु काम बड़ा कठिन था एक तो किसी की हत्या जेल के बाहर ही करना मुश्किल है, फिर जब हत्या करने का इरादा रखने वाला स्वयं कैदी हो, और जिसकी हत्या करना है उस पर पहरा रहता हो तो यह काम बहुत ही कठिन हो जाता है। सत्येन्द्र वसु तथा कन्हाईलाल ने आपस में सलाह कर ली, और तय कर लिया कि यह काम होना चाहिये, षड्यन्त्र के नेताओं से इस बात का इशारा किया गया, किन्तु उन्होंने इसमें बिलकुल दिलचस्पी नहीं ली बल्कि ऐसी २ बातें कहीं जिससे यह बात असंभव सिद्ध हो। अब

ये दो अलमस्त साधन की खोज में लगे; बाहर से अभियुक्तों के लिये कटहल, मछली वगैरह आती थी। कहा जाता है कटहल या मछली के अन्दर ही दो रिवालवर आये, असली बात तो यह है किसी को पता ही नहीं कि कैसे ये रिवालवर अन्दर गये। जो लोग जेल में बहुत दिनों तक रह चुके हैं वे जानते हैं कि रुपया खर्च करने के लिये तैयार होने पर जेल में कोई भी चीज वार्डर यहाँ तक कि जेलरों के ज़रिये से जा सकती है, फिर क्रान्तिकारी इसके अतिरिक्त नैतिक दबाव भी तो रखते हैं। सम्भव है कि कोई वार्डर इन रिवालवरों को अन्दर ले गया हो। बात यह है इस षड्यन्त्र में लिप्त दोनों व्यक्तियों को फाँसी हो गई, उनकी जीभ हमेशा के लिये नीरव हो गई है, इसलिये ठीक ठीक इसका पता इतिहास को कभी नहीं लगेगा।

जेल में धाँय धाँय

जब साधन प्राप्त हो गया तो यह प्रश्न पैदा हुआ कि नरेन के पास कैसे जाया जाय, क्योंकि जेल में एक वार्ड से दूसरे वार्ड में जाना तिब्बत या मध्य अमेरिका जाने से कम कठिन नहीं है। सत्येन्द्र ने खाँसी की बीमारी बनाई, और अस्पताल पहुँच गये. उधर दो एक दिन बाद कन्हाईलाल के भी पेट में सूक्ष्म दर्द उठा, और वे भी कराहते बिलखते अस्पताल पहुँचे। अस्पताल पहुँचते ही पहिले कन्हाई इतने ज़ोर से कराहने लगे कि डाक्टर तथा जेलर समझे कि अब ये दो ही चार दिन के मेहमान हैं, किन्तु उनका असली मतलब तो यह था कि सत्येन्द्र जान जायँ कि वे आ गये, और अब काम शुरू हो जाना चाहिये।

उधर सत्येन्द्र अस्पताल में आने के बाद से बराबर यह दिखला रहे थे कि जेल जीवन से उकता गये हैं, और अपने साथियों से नाराज़ हैं। उन्होंने नरेन को एक खबर भी भेज दी कि हम भी मुखबिर बनना चाहते हैं, नरेन तथा जेल के अफसर सत्येन्द्र के अभिनय से इतने प्रभावित हुए थे कि ३१ अगस्त को नरेन एक जेल सर्जेन्ट की संरक्षकता में सत्येन्द्र से मिलने भेजा गया। बस गोली की मार के अन्दर आते ही

सत्येन्द्र ने गोली चला दी। गोली पैर में तो लगी, किन्तु नरेन गिरा नहीं। अब कन्हाई भी आस-पास ही कहीं थे, उनके पास भी भरा हुआ रिवालवर था। नरेन भाग कर अस्पताल से बाहर जा रहा है यह देख कर कन्हाई ने उसका पीछा किया। बीच में एक फाटक पड़ता था, किन्तु हाथ में रिवालवर देख फाटक के पहरेदार ने फाटक खोल दिया, यही नहीं उसने इशारे से बता दिया नरेन किधर गया है। कन्हाई एक शेर की तरह झपटकर नरेन के पास पहुँचा, और सब गोलियाँ उस पर खाली कर दीं। इस प्रकार साम्राज्यवाद के ऐन गढ़ में साम्राज्यवाद का एक पिट्ठू मारा गया।...... ..

इस खबर के पहुँचते ही सारे बङ्गाल में जो सनसनी हुई है वह अवर्णनीय है।

"बङ्गाली" दफ्तर में खुशी में सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने मिठाई बाँटी, सारे बङ्गाल में यह घटना एक राष्ट्रीय विजय के रूप में ली गई।

साम्राज्यवाद का बदला

ब्रिटिश साम्राज्यवाद यह नहीं बर्दाश्त कर सकता कि कोई व्यक्ति या संस्था आतंकवाद में उससे आगे बढ़ जाय, वह तो इस वस्तु का एकाधिकार अपने हाथ में रखना चाहता है, तदनुसार कन्हाई और सत्येन्द्र पर मुकद्दमा चला, और सन् १९०८ के १० नवम्बर को इन्हें फाँसी दे दी गई।

शहीद का दर्शन

मोतीलाल राय ने कन्हाईलाल पर एक पुस्तक लिखी है, यह बंगाल के एक प्रसिद्ध क्रान्तिकारी तथा लेखक थे। कन्हाई की फाँसी के बाद इनकी तथा कुछ अन्य लोगों को जेल के अन्दर कन्हाई की लाश ले आने की आज्ञा मिली थी, उस समय का जो मार्मिक वर्णन उन्होंने लिखा है उसे हम उद्धृत करते हैं—

"पाँच छै आदमियों को भीतर जाने की आज्ञा मिली, एक गोरे ने हमसे जानना चाहा कौन कौन भीतर जाना चाहता है। आशु बाबू

(कन्हाई के बड़े भाई) मैं और कन्हाई परिवार के अन्य तीन व्यक्ति थर थर काँपते हुए उस गोरे के पीछे हो लिये। शोक और दुःख से हम सिहर रहे थे। लोहे के फाटकों को पार कर हम लोग जेल के भीतर दाखिल हुए, यन्त्र के पुतलों की भाँति हम उस गोरे के पीछे पीछे चल रहे थे एकाएक वह गोरा रुक गया, और उँगली के इशारे से एक कोठरी दिखा दी। सिर से पैर तक कम्बल से ढकी हुई एक लाश पड़ी था, यहा कन्हाई की लाश थी। हम लोगों ने लाश उठाकर कोठरी के सामने आँगन पर रख दी, किंतु किसी को भी यह हिम्मत न होती थी कि लाश के ऊपर से कम्बल उतारे। आशु बाबू के चेहरे पर से मोतियों के समान बूंदें टपकने लगीं। एक एक कर के सभी रोने लगे। उसी समय वह गोरा "आप रोते क्यों हैं ? जिस देश में ऐसे वीर पैदा होते हैं वह देश धन्य है। मरेंगे तो सभी, किंतु ऐसी मौत कितने मरते हैं ?'

"हमने विस्मित नेत्रों से आँख उठा कर उस कर्मचारी को देखा तो मालूम हुआ कि उस के चेहरे पर भी आँसुओं की झड़ी लगी है। उसने कहा मैं इस जेल का जेलर हूँ, कन्हाई के साथ मेरी खूब बातें हुआ करती थीं। फाँसी की सजा सुनाये जाने के बाद से उसकी खुशी का कोई वारापार नहीं था; कल शाम को उसके चेहरे पर जो मोहिनी हँसी मैंने देखी वह कभी न भूलूंगा। मैंने कहा कन्हाई आज हँस रहे हो, किंतु कल मृत्यु की कालिमा से तुम्हारे ये हँसते हुए ओठ काले पड़ जायंगे। दुर्भाग्य से कन्हाई की फाँसी होने के समय भी मैं वहाँ पर था, कन्हाई की आँखें बाँध दी गई थीं, वह शिकंजे में कसा जाने वाला ही था, ठीक उसी समय कन्हाई ने घूमकर मेरी ओर संकेत किया और कहा "क्यों मिस्टर, मुझे आप कैसा देख रहे हैं ?" ओह यह वीरता इस प्रकार की वीरता का होना रक्त मांस के मानवों के लिये संभव नहीं।"

"हमने चकित होकर यह सब बातें सुनीं। इसके बाद डरते-डरते ओढ़ाये हुए कम्बल को उठाकर उसको देखा, अर्थात् उस तपस्वी

कन्हाईलाल के दिव्य स्वरूप के वर्णन की भाषा मेरे निकट नहीं है। लम्बे-लम्बे बालों से चौड़ा माथा ढका हुआ था, अधखुले नेत्रों से अमृत ढलक रहा था, दृढ़वद्ध ओठों में संकल्प की रेखा फूट पड़ती थी, विशाल भुजाओं की मुट्ठियां बँधी हुई थी। आश्चर्य कन्हाई के किसी भी अंग पर मृत्यु की मनहूस छाप नहीं थी, कहीं भी वीभत्सता के चिह्न न थे। केवल दोनों कन्धे फाँसी की रस्सी की रगड़ से नमित हो गये थे, उसकी पवित्र मुख श्री पर कहीं विकृति न थी। कौन ऐसा अभागा है जो इस मृत्यु पर ईर्ष्या न करेगा ?

कन्हाई की लाश को बड़े समारोह के साथ जलाया गया, हजारों की तादाद में लोग इकट्ठे थे। हजारों रोनेवाले थे, जब कन्हाई जलकर खाक हो गया तो उसकी राख को लोगों ने गंडा-ताबीज बनाने के लिये लूट लिया। कन्हाई को एक शहीद, का सन्मान दिया गया, यह बात ब्रिटिश साम्राज्यवाद के लिये कितनी अखरनेवाली थी की जिसको उसने हत्यारा कहकर फाँसी पर चढ़ा दी उसे जनता ने शहीद कर के पूजा ? ....

कन्हाई पर उस युग का सार्वजनिक मत

कन्हाईलाल की फाँसी पर जनमत किस प्रकार उत्तेजित हुआ था, यह १२ सितम्बर १९०८ के "वन्दे मातरम्" के एक लेख से पता लगता है, उसमें लिखा था।

"कन्हाई ने नरेन को मार डाला। कोई भी अभागा भारतवासी जो अपने साथियों का हाथ चूम लेने के बाद उनके साथ विश्वासघात करता है अब से अपने को प्रतिहिंसा लेनेवाले से बेखतरा नहीं समझेगा।"

"स्वाधीन भारत" नामक एक परचे में निकला।

When coming to know of the weakness of Narendra, who roused by a new impulse, had

lost his self-control, our crooked-minded merchant rulers were preparing to hurl a horrible thunderbolt upon the whole country, and when the great hero Kanailal, after having achieved success in the effort to acqire strength, in order to give an exhibition of India's unexpected strength wielding the terrible thunderbolt of the great magician, and making every chamber in the Alipore central jail quake drew blood from the breast of the traitor to his country, safe in a British prison, in iron chains, surrounded by the wells of a prison then indeed the English realised that the flame which had been lit in Bengal had at its root a wonderful strength in store..."

यह बात बिना किसी अत्युक्ति के कही जा सकती है कि कन्हाई लाल और खुदीराम बङ्गाल की चेतना के अन्तरंगतम स्तर में प्रविष्ट हो गये, तथा बंगाल के राष्ट्रीय जीवन के उस हिस्से में घुस गये जहाँ से उन्हें कोई नहीं निकाल सकता याने लोरियों में, गानों में, बच्चों की कहानियों में, और जहाँ से वे राष्ट्रीय जीवन के उत्सस्थल को मजे में अपनी पवित्र धारा से पूत कर सकते थे।

दिल्ली और पंजाब में क्रान्तिकारी लहरें और गदर पार्टी

पंजाब और बंगाल भारत के दो विभिन्न सिरे पर हैं, फिर भी बंगाल तथा अन्य प्रान्तों में जो लहर चल रही थी, पंजाब उससे अछूता न रह सका। सर डेनज़िल इबटसन ने जो उन दिनों पंजाब के गवर्नर थे १९०७ में एक रिपोर्ट दी जिसमें लिखा कि नये विचारों का बड़े ज़ोर से प्रचार हो रहा है। उन्होंने लिखा "पूर्व तथा पश्चिम पंजाब ये विचार पढ़े लिखे लोगों में विशेषकर वकील, मुंशी और छात्रों में फैले हैं, किन्तु मध्य पंजाब में तो ये विचार हर श्रेणी में फैले मालूम देते हैं, लोगों में बड़ी बेचैनी तथा असंतोष है। लाहौर से आंदोलनकारी आ आकर अमृतसर और फीरोज़पुर में राजद्रोह का प्रचार करते रहे हैं, फीरोजपुर में इनको काफी सफलता मिली, गोकि अमृतसर में ये इतने सफल न रह सके। ये रावलपिंडी; स्यालकोट तथा लायलपुर में अंग्रेजों के विरुद्ध बड़े जोरशोर से प्रचार कार्य कर रहे हैं। लाहौर में तो इस प्रचार-कार्य का कुछ कहना ही नहीं, इससे सारे शहर में एक गहरी बेचैनी फैली है।" सर डेनज़िल ने अपनी इस रिपोर्ट में यह भी लिखा कि दो जगह गोरों का अपमान गोरा होने की वजह से से किया गया, और एक जगह तो ऐसा हुआ कि एक संपादक को सजा दी गई तो दंगा ही हो गया।

गवर्नर साहब ने यह लिखा था कि लाहौर के आंदोलनकारियों ने आकर गड़बड़ मचाई थी यह बात ग़लत थी, असली बात यह थी कि साम्राज्यवाद का शोषण तीव्रतर हो रहा था इसलिए भूख, ग़रीबी बेकारी की वजह से लोग बेचैन होते जा रहे थे। पंजाब के गाँवों में जो असंतोष बढ़ रहा था वह मुख्यतः आर्थिक था। चीनाब-नहर की

बस्तियों में तथा बड़ी दुआब में सरकार नहर की दर बढ़ा रही थी, इस पर असंतोष हुआ तो उस पर लाहौर के आन्दोलनकारी क्या करें ? सरकार की मंशा तो यह थी कि नगर वगैरह से जो जमीन पहले से अधिक उपजाऊ हो गई उसका सारा फायदा सरकार को ही हो, और किसान जैसे भुक्खड़ थे वैसे ही रहें। सरकार की इस शोषण नीति से जनता इतनी क्रुद्ध हो गई थी कि जनता ने फौज और पुलिस से नौकरी छोड़ने को कहा। वही सरकार की पुरानी नीति के मुआफिक था, अर्थात् और शोषण करना, तथा जरूरत पड़ने पर जल्दी से जल्दी फौज लाकर जनता को दबा देना। इस रेल के कुलियों में एक बार हड़ताल हुई तो सारी जनता ने उनसे सहानुभूति दिखाई, उनकी हमदर्दी में यत्र तत्र आम सभायें हुईं और हड़तालियों के सहायतार्थ एक बड़ी रकम चंदे में उगाई गई। यहाँ पर मैं एक बात की ओर ध्यान आकर्षित कर आगे बढ़ूँगा, वह यह कि आज हिन्दुस्तान के पूँजीपति यह कहते नजर आते हैं कि आज दिन जो हड़तालें होती हैं उनके लिये साम्यवादी जिम्मेदार हैं। जब भारत में कोई भी अपने को साम्यवादी नहीं कहता था तथा जब शायद उसका नाम किसी को आता भी नहीं था उस समय हड़तालें कैसे हो जाती थीं ? बात यह है यही मज़दूरों के हाथ में एक अस्त्र है, और यह अस्त्र उसी प्रकार उनके लिए स्वाभाविक है जैसे बैल के लिए सींग। किसी साम्यवादी से उसे उसका व्यवहार सीखने की ज़रूरत नहीं।

गवर्नर साहब भला यह सब बात क्यों सोचते ? उन्होंने लिख मारा कि कुछ लोग यहाँ से अंग्रेजों का बिस्तर बंधवाना चाहते हैं, और इन लोगों को ही बंधवा दिया जाय तो प्रजा की आँखों से फिर राजभक्ति से आँसू आने लगे। तदनुसार ब्रिटिश सरकार के क़ानूनों की किताब में ढूँढ़ाई पड़ी, माँ बाप सरकार किसी गैर क़ानूनी तरीके से बाँध थोड़े ही सकती थी, बहुत गोताखोरी के बाद कानून समुद्र से "१८१८ का रेगुलेशन तीन" नामक एक अस्त्र निकला।

लालाजी और अजीतसिंह

लाला लाजपतराय जी और सरदार अजीतसिंह जी ११ मई १६६६ को गिरफ़्तार कर लिये गये, और ले जाकर वर्मा निर्वासित कर दिये गये। इसका उलटा असर हुआ, पंजाब के इन दो लोकप्रिय नेताओं की गिरफ़्तारी से लोगों में और भी असन्तोष फैला। सरकार ने यह मानने से इनकार किया कि इस असन्तोष की जड़ आर्थिक है, १६०७ के जून को पार्लियामेंट में भाषण देते हुए मिस्टर मोर्ले ने कहा— "पहिली मार्च से पहिली मई तक पंजाब के प्रसिद्ध आन्दोलनकारियों ने २८ सभायें कीं, जिनमें से केवल ५ से खेती सम्बन्धी दुखड़ों का ताल्लुक था, बाकी विशुद्ध राजनैतिक सभायें थीं।" मोर्ले ने ये बातें ऐसे कहीं जिससे भ्रम होने लगता है कि शायद विशुद्ध राजनैतिक सभायें करना कोई गुनाह है, किन्तु सरकार की आँखों में यह गुनाह ही था। पहिली नवम्बर को वायसराय महोदय ने राजद्रोही सभाओं को बन्द करने के लिए पेश नये बिल के सम्बन्ध में बोलते हुए फर्माया "हम भूल नहीं सकते कि लाहौर में गोरे ख्वामख्वाह बेइज्जत किये गये, तथा रावलपिंडी में दंगे हुए, इस पर वहाँ के गवर्नर बहादुर ने जो गंभीर मन्तव्य किया वह भी हम भुला नहीं सकते। इसी मन्तव्य के ऊपर लाला लाजपत राय तथा सरदार अजीतसिंह जनता के हित के लिये गिरफ्तार कर नजरबंद कर दिये, और आर्डिनेन्स नाफ़िज़ कर दिया गया। इन सब बातों के अलावा पूर्व बंगाल से तो रोज़ बायकाट, बेइज्जती, लूटमार तथा ग़ैरकानूनी कार्यवाइयों की खबरें आती रही हैं। इन सब की जड़ में ये आंदोलनकारी थे जो राजद्रोही भाषणों से, इश्तहारों से, अख़बारों से, लोगों में बुरी से बुरी जातिगत भावनायें उभाड़ते रहे।"

श्यामजी के नाम लाला लाजपतराय

इन दोनों नेताओं की नजरबन्दी के बाद कुछ दिनों तक आंदोलन कुछ ठण्डा सा पड़ गया, किंतु राजनैतिक साहित्य में बराबर वृद्धि

होती गई। ६ महीने नजरबंद रहने के बाद सरदार अजीत सिंह ईरान भाग गये और तब से वे बाहर ही हैं। प्रसिद्ध राष्ट्रीय कवि लालचंद 'फलक' को राष्ट्रीय कविताओं के सम्बन्ध में इसी युग में सजा दी गई। भाई परमानन्द के ऊपर मुकदमा चलाया गया, और उनसे मुचलका ले लिया गया। भाई परमानंद के पास से वही 'बम मैनुअल" मिला, जो अलीपुर षड्यंत्र-कारियों के पास मिला था। इसके अतिरिक्त इनके पास लाला लाजपतराय के लिखे हुये दो पत्र भी मिले जो १९०७ के तूफानी जमाने में भेजे गये थे। एक पत्र पर २८ फरवरी १९०७ की तारीख थी और दूसरे पर ११ अप्रैल पड़ा था दोनों लाहौर से गये थे। एक पत्र में लाला जी ने भाई परमानन्द को लिखा था कि वे श्याम जी कृष्णवर्मा से कहें कि वे अपने अगाध धन के थोड़े से हिस्से को लगाकर यहाँ के छात्रों के लिये ढंग की राजनैतिक पुस्तकें भेजें। उस पत्र में यह भी कहा गया था कि श्याम जी से कहा जाय वे १००००) रु० राजनैतिक मिशनरियों के लिये दें।

दूसरी चिट्ठी में लालाजी ने लिखा था "लोग अजीब बेचैनी में हैं। खेतिहर श्रेणी में भी यह असन्तोष बहुत फैला है, मुझे भय है कि कहीं लोग फूट पड़ने में जल्दबाजी न कर जायें।' यह पत्र प्रकाशनार्थ नहीं लिखा गया था, इससे साफ ज़ाहिर है कि यह सारी बेचैनी स्वतः उद्भूत हुई थी तथा शोषण के परिणाम स्वरूप थी। नेता बल्कि पीछे थे, परिस्थितियों से फ़ायदा उठाने की हिम्मत उनमें नहीं थी।

जब ये पत्र अदालत में आये तो लाला लाजपत राय ने कहा कि उनका मतलब यह लिखने में केवल इतना था कि "खेतिहर श्रेणी के लोग चूँकि राजनैतिक हलचल के आदी नहीं हैं इसलिये संभव है कि वे अपना आंदोलन शांतिपूर्वक न चला सकें।" वे उस ज़माने में "खेतिहर श्रेणी में राजनैतिक आंदोलन के पक्ष-पाती नहीं थे।"

उन्होंने यह भी कहा कि जिन पुस्तकों के सम्बन्ध में उस पत्र में उल्लेख है वह कुछ सुप्रचलित अच्छी पुस्तकों के सम्बन्ध में था, तथा

इनसे उनका मतलब 'राजनैतिक, क्रांतिकारी तथा ऐतिहासिक उपन्यासों का था।" उन्होंने अदालत में यह भी कहा कि नज़र-बन्दी से लौटने के बाद ही उन्हें पता लगा कि श्यामजी कृष्णवर्मा राजनैतिक बलप्रयोग में विश्वास रखते हैं। "जब से मुझे उनके विषय में ये बातें मालूम हुईं, तब से मैंने उनके साथ कोई सम्बन्ध नहीं रक्खा।"

दिल्ली में संगठन

ऊपर जो कुछ लिखा गया है उससे इतना ही जाहिर होता है कि एक असंतोष उत्तर भारत में सुलग रहा था, किंतु कोई क्रांतिकारी संगठन नहीं था, यानी क्रांतिकारी परिस्थितियों के होते हुए भी वह शक्तियां इतनी प्रबल नहीं हुई थीं कि अपने अन्दर से कोई उपयुक्त व्यक्तित्व या संगठन पैदा करें। अस्तु।

मास्टर अमीरचंद दिल्ली के एक अध्यापक थे, ये ही एक तरह से उत्तर भारत के पहिले संगठनकर्ता थे। लाला हनुमन्त सहाय रईस इनके सहायक थे। पहिले ये सज्जन धार्मिक तथा सुधार के क्षेत्रों में काम करते थे, किंतु १९०६ में स्वदेशी आंदोलन का बंगाल में ज़ोर बढ़ते ही ये जी जान से उसी में काम करने लगे।

लाला हरदयाल

लाला हरदयाल पंजाब विश्वविद्यालय से एम० ए० पास कर सरकारी छात्रवृत्ति लेकर विलायत गये हुए थे। वे दिल्ली के ही रहनेवाले थे, और बड़े प्रतिभावान थे। विलायत जाने के बाद उन्होंने एकाएक यह कहकर आक्सफोर्ड में पढ़ना तथा सरकारी छात्रवृत्ति लेना अस्वीकार कर दिया कि अंग्रेज़ी शिक्षा का तरीका ही बुरा है। भारत लौट आने के बाद लाला हरदयाल राजनैतिक शिक्षा के प्रचार में जुट गये। वे लाहौर तथा दिल्ली में विशेष रूप से क्रियाशील हो गये। यह सन् १९०८ की बात है। लाला हरदयाल के कई अनुयायी हो गये, जिसमें दीनानाथ, जे० एन० चटर्जी, अमीरचंद आदि कई आदमी थे। लाला हरदयाल तो क्रांति के आयोजन में विदेश चले गये, किंतु दिल्ली में मास्टर

अमीरचंद उनके काम को चलाते रहे। यह दल एक आदर्शवादियों का दल था। लाला हनुमन्त सहाय विदेशी माल के बड़े व्यापारी थे, किंतु स्वदेशी के प्रण करने के बाद उन्होंने अपने लाभजनक कारोबार पर लात मार दी। फिर लाला हरदयाल के संस्पर्श में आकर उनको यह विश्वास हो गया कि विदेशी शिक्षा का उद्देश्य हमारी गुलामी को मजबूत करना तथा गुलाम मनोवृत्ति पैदा करना है, बस उन्होंने १६०६ में अपने मकान चेलपुरी में एक राष्ट्रीय स्कूल खोला। इसी समय राष्ट्रीय पुस्तकों का वाचनालय भी खोला गया। जिस स्कूल का उल्लेख किया गया है उसमें मास्टर अमीरचंद के अतिरिक्त कई और व्यक्ति शिक्षा देने का काम करते थे जो बाद को क्रांतिकारी आंदोलन में मशहूर हुये। इन लोगों में गनेसीलाल खस्ता और मास्टर अवध विहारी भी थे। असल में यह स्कूल क्या था क्रांतिकारी लोगों के लिये नये-नये लोगों को सदस्य भर्ती करने का जरिया था। इन लोगों में मास्टर अवध विहारी सब से ज्यादा उत्साही थे। इन लोगों का बंगाल से भी सम्बन्ध था, किंतु कभी तो वह सम्बन्ध टूट जाता था, और कभी कायम हो जाता था।

१६१० में यह सम्बन्ध अलीपुर षड़यंत्र के खतम हो जाने के बाद टूट गया, किंतु जब रासविहारी उत्तर भारत में आए, उस समय यह सम्बन्ध फिर से कायम किया गया। महात्मा हंसराज के पुत्र बलराज जी भी इस आंदोलन में शरीक थे। ऊपर जिन आदमियों के नाम आये हैं उनके अतिरिक्त चरनदास, मन्नू लाल, खुशीराम आदि व्यक्ति भी इस षड्यंत्र में शामिल थे, किंतु यह बात कही जा सकती है कि रास विहारी के हेड क्लर्क होकर देहरादून जंगल विभाग में आने के पहले यह संस्था केवल एक प्रचार कार्य की संस्था थी, और उसने कोई भी खास काम नहीं किया था।

रास विहारी

रास विहारी ने लाला हरदयाल के लगाये हुये पौधे को खूब

इन्द्रप्रस्थ के वैभव का उद्धार करने के लिए ही दिल्ली को राजधानी बनाया गया, किन्तु असली बात यह थी कि सरकार यह समझ गई थी कि बङ्गाल प्रान्त बहुत खतरनाक प्रांत है, और उसमें अखिल-भारतीय राजधानी रखना किसी भी तरह युक्तियुक्त न होगा। इसके अतिरिक्त सरकार यह भी चाहती थी कि राजधानी समुद्र से जितना भी दूर हो सके उतना हो, क्योंकि उसी समय से महायुद्ध के बादल यूरोप के आकाश में मँडरा रहे थे, उस हालत में देश के अन्दर राजधानी रखने में ही भलाई थी। बंगाल को सरकार ने जोड़ जरूर दिया, किन्तु उसका मतलब इसमें हल न हो सका, क्योंकि यद्यपि बङ्गाल का आंदोलन एक तरह से बङ्ग-भङ्ग के विरोध से ही प्रारम्भ हुआ था, किन्तु बङ्गाली अब बहुत आगे बढ़ चुके थे, और उनके सामने स्वतंत्रता की माँग थी, न कि केवल बङ्ग भङ्ग को रद्द कराने की माँग। बाद के इतिहास से यह स्पष्ट हो जायगा कि १९११ के दरबार में ब्रिटिश साम्राज्यवाद ने जितनी भी चालें चलीं सब व्यर्थ गईं, जिस खतरे के डर से भारतवर्ष की राजधानी बात की बात में कलकत्ते से दिल्ली लाई गई थी वही खतरा दिल्ली आते ही आते पेश आया।

वायसराय पर बम

ब्रिटिश साम्राज्यवाद ने हार्डिंग को भारत का वायसराय बना कर भेजा था। यह तय हुआ कि हार्डिंग २३ दिसम्बर १९१२ को दिल्ली में बड़े समारोह के साथ प्रवेश करे। हजारों हाथी, घोड़े, तोप, बन्दूक, फौज के साथ यह जुलूस निकला। देखने से मालूम होता था कि ब्रिटिश साम्राज्यवाद हमेशा के लिए अपना डेरा यहाँ जमा रहा है। देश-भक्तों के दिल की एक अजीब ही स्थिति थी, यह जुलूस देख कर स्वतः यह भाव मन में उठता था कि इतना बड़ा जिसका साम्राज्य है कि उसमें सूर्य तक अस्त नहीं होता, इतनी विशाल जिसकी फौजें हैं, और इतना विपुल जिसका ऐश्वर्य है उससे मुट्ठी भर क्रान्तिकारी, जिनके पास न तो धन है न साधन, भला कैसे लोहा ले सकते हैं। सच्ची बात यह है कि इसी

असर को पैदा करने के लिए ब्रिटिश साम्राज्यवाद ने यह सारा खेल रचा था किन्तु दिल्ली के कुछ मन चले क्रान्तिकारियों ने उस अवसर पर कुछ और ही असर पैदा करना चाहा।

जिस समय चाँदनी चौक में एक तरह से दिल्ली के वक्षस्थल में वायसराय का यह मीलों लम्बा जुलूस पहुँचा, उस समय किसी अज्ञात दिशा से वायसराय की सवारी के ऊपर एक भयानक बम गिरा, निशाना ठीक नहीं बैठा। किन्तु जुलूस का जो कुछ उद्देश्य था उस पर पानी फिर गया। एक बार फिर सारे भारतवर्ष ने जाना कि भारतवर्ष वीरों से शून्य नहीं है। देशभक्तों का दिल बाँसों उछलने लगा। निशाना तो ठीक नहीं लगा था, किन्तु फिर भी वायसराय का एक अंगरक्षक घायल हो गया, और वह वहीं पर मर कर ढेर हो गया। वायसराय के सिर के पीछे भी चोट आई किन्तु वे केवल मूर्छित ही हुये। सारे जुलूस में भगदड़ मच गई, और पुलिस ने चारों तरफ से चाँदनी चौक को घेर लिया। किन्तु बम फेंकने वाले का कुछ पता न लगा।

इसी घटना के सिलसिले में बाद को गिरफ्तारियाँ वगैरह हुईं।

बाद को पता लगा कि इस षड्यन्त्र की ओर से एक परचा बाँटा गया था जिसमें इस हमले की तारीफ की गई थी। उसमें लिखा था "गीता, वेद, पुरान सभी इसी बात को कहते हैं कि मातृभूमि के दुश्मनों को चाहे वे किसी जाति या धर्म के हों मारना चाहिए। दिल्ली में दिसम्बर में जो घटना हुई थी उससे सूचित होता है कि भारतवर्ष के बुरे दिन अब खतम होने को हैं, और ईश्वर ने अपने वरद हस्तों में भारतवर्ष के भाग्य को ले लिया है।" बाद को यह भी प्रमाणित हुआ कि १७ मई १९१३ को लाहौर के लारेंसबाग में जहाँ शहर के गोरे एकत्रित होते थे वहाँ जो बम फूटा था वह इन्हीं लोगों के द्वारा रखा हुआ था। इस बम से कोई भी गोरा नहीं मरा, बल्कि एक हिन्दुस्तानी अरदली, जो इस पर आ गया, मर गया।

दिल्ली षड्यन्त्र

कलकत्ते के राजा बाजार में तलाशी लेने पर अवध विहारी के नाम का पता लगा। पता लगाने पर पुलिस ने यह भी मालूम किया कि अवध विहारी मास्टर अमीरचंद के घर में रहते हैं। तदनुसार पुलिस ने मास्टर साहब के घर की तलाशी ली। उस तलाशी में कई क्रांतिकारी परचे, एक बम की टोपी तथा कुछ पत्र मिले। इस पर अमीरचंद, उनके भतीजे सुलतानचन्द और अवध विहारी गिरफ्तार कर लिये गये। इन पत्रों में कुछ "एम० एस०" के दस्तखती पत्र थे। पुलिस ने पता लगाते-लगाते कई दिनों में यह पता लगाया कि "एम० एस०" का असली नाम दीनानाथ है। अब दीनानाथ की खोज होने लगी, कई व्यक्ति दीनानाथ के धोखे में पकड़े गये, अन्त में असली दीनानाथ पकड़े गये। यह हजरत पकड़े जाते ही मुखबिर हो गये, और जो कुछ भी उसे मालूम था कह दिया, किंतु इस व्यक्ति को भी वायसराय पर बम फेंकने का पता न था। सरकार ने १३ अभियुक्तों पर मुकदमा चलाया। दीनानाथ के अतिरिक्त सुलतानचन्द भी मुखबिर हो गया। ७ माह मुकदमे के बाद ५ अक्टूबर १६१४ को मास्टर अमीर चन्द, अवध विहारी तथा बालमुकुन्द को फाँसी की सजा हो गई। चीफ कोर्ट में फैसला और भी सख्त हो गया अर्थात् वसन्त कुमार को भी फाँसी की सजा दी गई।

यह एक अजीब बात थी कि किसी भी गवाह ने वायसराय पर बम वाले मामले का उद्घाटन नहीं किया था, किन्तु फिर भी चार व्यक्तियों को फाँसी की सजा एक तरह से इन्तजामन दी गई। अब भी पञ्जाब की जेलों में ऐसे पुराने वार्डर हैं जो कि इन वीरों के जेल जीवन का वर्णन करते हैं। उससे मालूम होता है कि ये लोग जब तक हवालात में रहें तब तक अपने स्वभाव के अनुसार कैदियों तथा वार्डरों को पढ़ाते तथा अन्य शिक्षा देते थे।

अवध विहारी

अवध विहारी की फाँसी के दिन एक अंग्रेज ने पूछा "कहिए आप की अन्तिम इच्छा क्या है ?" इस पर अवध विहारी ने तपाक से उत्तर दिया कि मेरी एक ही इच्छा है कि अंग्रेजी राज का नाश हो जाय।

इस पर अंग्रेज ने कहा "अब तो शान्ति पूर्वक मरिये।" अवध विहारी ने इस पर हँस कर कहा "अब शान्ति कैसी, मैं तो—चाहता हूँ ऐसी प्रचंड क्रांति की आग सुलगे जिसमें ये सारी ब्रिटिश सत्ता ही नष्ट हो जाय।"

बड़ी बहादुरी से अवध विहारी फाँसी के तख्ते पर चढ़े।

बाल मुकुन्द

बाल मुकुन्द कुछ दिनों तक जोधपुर में राज कुमारों को पढ़ाने का काम करते थे, जब नराधम दीनानाथ ने उनका नाम लिया तो ये गिरफ्तार हो गये। उनके पास दो बम भी बरामद हुये। उनकी तलाशी लेते हुये गाँव में जो उनका घर था उसकी तमाम जमीन दो दो गज गहरी खोद डाली गई। पुलीस को यह शक था कि उनके यहाँ बम का खजाना है। भाई परमानन्द बालमुकुन्द जी के भाई लगते थे, इसलिये उन्होंने बड़ी दूर तक अपीलें की, किंतु उससे कुछ फायदा न हुआ, और उनको फाँसी की सजा दे दी गई।

श्रीमती बालमुकुन्द

भाई बालमुकुन्द विवाहित थे, उनकी स्त्री श्रीमती रामरखी को हम कोई राजनैतिक महत्व नहीं दे सकते, वह कोई क्रान्तिकारिणी नहीं थीं, किन्तु जिस प्रकार उन्होंने अपने देशभक्त पति का साथ दिया वह एक ऐतिहासिक चीज है, और उसका बिना उल्लेख किये भाई बालमुकुन्द की वीरता की कहानी अधूरी रह जायगी। पति की गिरफ्तारी होने के दिन से ही श्रीमती रामरखी कृश होने लगीं, उनको कुछ आभास सा हो गया कि बस अब खातमा है। बड़ी मुश्किलों से जेल में पति से

मिलने की इजाजत मिली, रामरखी को पहिले ही पति को भोजन कैसा मिलता है इसकी फिक्र पड़ गई, उन्होंने पूछा—"खाना कैसा मिलता है?"

भाई बालमुकुन्द ने इस पर हँस कर कहा—"मिट्टी मिली रोटी।" रामरखी उस दिन घर लौट गई तो अपने आटे में मिट्टी मिलाने लगीं। फिर एक बार वह मिलने गई तो पूछा कि सोते कहाँ हैं, इसके उत्तर में भाई जी ने बताया कि अंधेरी कोठीरी में दो कम्बल पर। बस उस दिन से जो श्रीमती रामरखी घर लौटीं तो वह भी ग्रीष्म ऋतु के होते हुए भी कम्बल पर लेटने लगीं। जिस दिन भाई जी को फाँसी हुई, उस दिन सबेरे उठकर रामरखी ने वस्त्र-आभूषण धारण किये, और जाकर एक चबूतरे पर बैठ गई। उनके चेहरे पर कोई भी दुःख का चिह्न नहीं था। किन्तु वह जो बैठ गईं सो उठी नहीं, न तो श्रीमती रामरखी ने जहर खाया था न कोई ऐसी बात की थी। पति-पत्नी दोनों की लाश एक साथ जलाई गई! .....

करतार सिंह

पंजाब ने यों तो भारतवर्ष के इतिहास को बहुत से वीर दिये हैं, किन्तु जिस युग का जिकर हम कर रहें हैं उस युग में देश के लिये सिर देनेवाले सर्दारों में शायद करतार सिंह सब से सब कम उम्र थे, इसलिये हम उसकी जीवनी की कुछ विस्तृत आलोचना करेंगे। करतार सिंह का जन्म १८६६ ई० में पञ्जाब प्रान्त के लुधियाना ज़िले के सरावा नामक गाव में हुआ था। आप के पिता का नाम सर्दार मंगल सिंह था, लड़कपन में ही करातार सिंह का पितृवियोग हुआ। करतार के अभिभावक उनके दादा ही थे, उन्होंने बचपन में ही उनका पालनपोषण किया तथा शिक्षा आदि दी। लुधियाना के रगलसा हाई स्कूल में वे भर्ती कराये गये, किन्तु वे स्वभाव से ऊधमी थे, पढ़ने लिखने में उन का मन न लगता था। खेलों में तथा ऊधम में वे सब से आगे रहते थे, लड़कों के वे एक तरह से प्राकृतिक नेता थे। करतार के स्कूल की

शिक्षा अभी पूर्ण भी नहीं हुई थी कि वे उड़ीसा चले गये। वहीं उन्होंने एन्ट्रेन्स पास किया और उनकी रुचि राजनैतिक साहित्य की ओर मुड़ी। दिल में विपत्तियों में कूद पड़ने की लालसा तो थी ही, तिस पर उन दिनों सैकड़ों पञ्जाबी समुद्र लाँघ कर अमेरिका जा रहे थे, करतार को भी सूझा कि वे ऐसा क्यों न करें। बस उन्होंने अपने दादा से कहा, दादा भी राजी हो गये, करतार सिंह अमेरिका पहुँच गये।

करतार सिंह ने अमेरिका जाकर देखा कि ये पश्चिम के लोग, यों तो, हर वक्त आजादी भ्रातृत्व आदि शब्द अपने मुंह पर रखते हैं, किन्तु भारतीयों से घृणा करते हैं। उनने खूब सोचा तो पाया कि भारतीयों से ये लोग जो घृणा करते हैं, इसकी वजह यह है कि भारतवासी गुलाम हैं। इस प्रकार बड़ी अच्छी माली हालत होने पर भी गुलामी की ग़लानि उन पर हमेशा रहने लगी। अपने साथी भारतीयों से वे सदा इस बात की आलोचना किया करते कि गुलामी कैसे दूर हो, सच बात तो यह है कि वे कुछ करने के लिये छटपटाने लगे, किन्तु कोई रास्ता ही नहीं मालूम होता था। इतने में पंजाब से निकाले हुए श्री भगवान सिंह अमेरिका आ पहुँचे। एक तजर्बेकार व्यक्ति के आ जाने से सब काम चमक गया, और अमेरिका के भारतवासियों में जोरों से काम होने लगा, दल की ओर से अख़बार "गदर" निकाला जाने लगा, करतार सिंह इस अखबार के सम्पादकों में थे। "गदर" अखबार के सम्पादक माने केवल सम्पादक नहीं था, बल्कि सम्पादक लोग खुद ही कम्पोज करते मशीन चलाते, छापते तथा बेंचते थे। करतार सिंह इस अखबार में मिहनत करते कभी अघाते नहीं थे, बराबर हँसते और गीत गाते थे। करतार सिंह ने इस प्रकार छापने का काम तो सीख ही लिया, किन्तु जहाज के भी सारे काम सीखे।

जब महायुद्ध छिड़ा तो करतार सिंह ने कहा अब विदेश में रहने का कोई अर्थ नहीं होता, यही तो मौका है, ब्रिटिश साम्राज्यवाद इस वक्त एक मुसीबत की गिरफ्त में है, देश में क्रान्ति की तैयारी होनी

चाहिये। देश में लौटना उस जमाने में खतरे से खाली नहीं था जो आता था करीब करीब वहीं "भारत-रक्षा-कानून" में गिरफ्तार कर लिया जाता था, किन्तु करतार सिंह किसी तरह बचबचाकर भारत की भूमि पर पहुँच गये। उस दिन से करतार सिंह के लिये बैठना हराम हो गया, सारे देश का वह दौरा करने लगे। याद रहे कि इस समय करतार सिंह की उम्र केवल अठारह साल की थी। करतारसिंह रासबिहारी से बनारस में मिले, रासबिहारी ने उन से कहा "जाओ पंजाब को तैयार करो, इधर हम तैयार हो रहे हैं।" करतार पंजाब चले गये, और वहाँ के संगठन को मजबूत बनाने लगे। शस्त्र इकट्ठे होने लगे, दल की नई २ शाखाएँ खोली जाने लगीं, धन एकत्र करने लिये डाके भी डाले गए।

२१ फरवरी १६१५ का दिन सारे भारत में क्रान्ति के लिए मुकर्रर था। करतार सिंह इसके पहिले ही लाहौर छावनी की मेगजीन पर हमला करने वाले थे। एक सिपाही उनसे मिल गया था, इसने वादा किया था कि समय उपस्थित होने पर वह मेगजीन की कुञ्जी उन्हें दे देगा, किन्तु करतार जब वहाँ दल बल सहित पहुँचे तो मालूम हुआ कि वह सिपाही एक दिन पहिले बदल गया। किन्तु इस प्रकार निराश होने पर भी उनका दिल नहीं टूटा, वे पिंगले के साथ मेरठ, आगरा, कानपुर, इलाहाबाद, बनारस आदि छावनियों का गश्त करने निकल पड़े। छावनियों में कमेटियाँ बन गई थी, २१ फरवरी को विद्रोह होना निश्चित था, इस बीच में दल के ही एक व्यक्ति कृपाल सिंह ने सारा रहस्य खोलकर सरकार के सामने रख दिया। ब्रिटिश साम्राज्यवाद कुछ इस प्रकार की बातों के अस्तित्व का मन ही मन अनुमान लगा रही थी, इतने में यह भंडाफोड़ हो गया। बस क्या था दमन चक्र बड़े जोरों से चलने लगा; गिरफ्तारियों की धूम मच रही थी, पुलिस का राज्य हो रहा था। जहाँ जहाँ छावनियों में शक था कि यहाँ की फौजें विद्रोह में भाग लेंगी, वहाँ सारी फौजों से शस्त्र ही छीन लिए गये। इन सब

बातों से इतनी गड़बड़ी फैल गई कि लोग अपने भागने में लग गये, काम कौन करता।

करतारसिंह को भी लोगों के भागने की सलाह दी, भागने के अलावा करते ही क्या, उस समय काम कुछ हो नहीं रहा था। कृपाल सिंह की कृपा के कारण लोग इस प्रकार डर चुके थे कि कोई किसी की सुनने के लिये तैयार न था, इस हालत में करतार सिंह भी दो साथियों सहित बृटिश भारत के बाहर पहुँचे। अब उनपर कोई विपत्ति नहीं थी, न आ सकती थी, क्योंकि उनका पता किसी को भी नहीं मालूम था, किन्तु इस प्रकार इतने ही से उनके मन में शान्ति नहीं मिली। वे भावुक तो थे ही, उन्होंने सोचा इस प्रकार भागने से क्या हासिल,जब एक साथ लड़े तो एक साथ विपत्ति का सामना भी करेंगे बस उन्होंने अपनी यात्रा की दिशा बदल दी। ऐसी जगह पर आते हैं जहाँ कि लोग उन्हें जानते थे वे गिरफ्तार कर लिये गये और जेल पहुँचाये गये। इस प्रकार निश्चित गिरफ्तारी में अपने को झोंक देना बेवकूफी भले ही हो, किन्तु इसमें जो बहादुरी है उसकी हम बिना तारीफ किये रह नहीं सकते।

जेल में भी यह चिर-विद्रोही चुप न रह सका। वहाँ उसने सब साथियों को इस बात पर राजी कर लिया कि जेल से भाग चला जाय और बाहर चलकर लाहौर छावनी की मेगज़ीन पर कब्जा कर लिया जाय। फिर क्या है लड़ाई छेड़ दी जाय। करतार सिंह की यह योजना भी सफल नहीं हो सकी। भेद खुल गया,और सबको बेड़ियाँ पड़ गईं कहा जाता है कि करतार सिंह की सुराही के नीचे की जमीन में सब औजार बरामद हो गये।

करतारसिंह ने अदालत में अपने से सम्बन्ध रखने वाली सब बातें को स्वीकार किया। वीर करतार को यह समझ ही में नहीं आ रहा था कि आखिर इन बातों को करके उसने कौन सा बुरा काम किया। उसे न तो यह पता था, न तो कोई इसकी परवाह थी कि उसका मुकद्दमा

बिगड़ जायगा। सच बात तो यह है वह मुकद्दमा में विश्वास ही नहीं रखता था। उसने सब बातें कबूल करने के अनन्तर यह कहा "मैं जानता हूँ मैंने जिन बातों को कबूल किया है उनका दो ही नतीजा हो सकता है, कालेपानी या फाँसी। इन दो बातों में मैं फाँसी को ही तरजीह दूँगा, क्योंकि उसके बाद फिर नया शरीर पाकर मैं अपने देश की सेवा कर सकूँगा। यदि मैं भाग्यवश अगले जन्म में स्त्री भी होऊँ तो मैं अपनी कोख से विद्रोही सन्तानों को पैदा करूँगा।"

करतार की बात ही सच थी, जज ने उसे फाँसी की सजा दी। फाँसी घर में उसका वजन दस पौंड बढ़ गया? ....

फाँसी के बाद करतार सिंह फाँसीघर में बन्द थे, उनके माथे पर बल न था, न भय। उनके दादा आये और बोले "करतार तुम फाँसी किनके लिए जा रहे हो, वे तो सब तुम्हें गालियाँ दे रहे हैं।" करतार के माथे पर एक बल आया, किन्तु क्षण भर के लिए; वाकई यह दुःख की बात थी कि जिनके लिये वह यहाँ बन्द था वे ही उसे बुरा कहें। फिर भी करतार दबनेवाला या हृदय हार जानेवाला जीव नहीं था, उसने अपने दो एक रिश्तेदारों का नाम लेकर पूछा "वे कहाँ गये?' दादा ने कहा, "वे मर गये।" इसपर करतार ने कहा "मर तो वे गये। हम भी मरने जा रहे हैं, फिर नई बात क्या है?"

बलवन्त सिंह

विदेश से लौटे हुए जिन पंजाबियों को क्रान्तिकारी आन्दोलन में फाँसी हुई थी, उनमें बलवन्त सिंह भी थे। १८८२ ईसवी में आपका जन्म जालन्धर के खुदपुर गाँव में हुआ था। थोड़ी शिक्षा के बाद ही आप फौज में भर्ती हो गये, किन्तु दस साल उनमें रहने के बाद उनका जी ऊब गया, और वे विदेश रवाना हो गये। आप अमेरिका जाने के बजाय कैनेडा गये, और वहीं पर काम करने लगे। कैनेडा में उन दिनों कोई गुरुद्वारा नहीं था, इसके अतिरिक्त भारतीयों को अपने मुर्दों को जलाने का अधिकार भी नहीं था, उन्होंने पहले पहल इन्हीं बातों को

लेकर सार्वजनिक आन्दोलन में प्रवेश किया, और इसमें वे सफल रहे। भारतीयों को गोरे कुली बहुत नापसन्द करते थे क्योंकि भारतीय उनसे अधिक मिहनत कर सकते थे, गोरे यह आन्दोलन करने लगे कि भारतीय हंडूरास द्वीप में भेज दिये जायँ। इस पेंच को भी वहाँ के भारतीयों ने काट दिया, इस आदोलन में श्री बलवन्त सिंह का मुख्य भाग था। किन्तु केवल इन्हीं बातों से सन्तुष्ट होने वाले जीव वे नहीं थे; लड़ाई छिड़ चुकी थी, विदेश की स्वाधीन आबहवा में पले हुए हिन्दुस्तानी सैकड़ों की तादाद में देश वापस आने लगे, ताकि वहाँ जाकर क्रांति की आग को भड़का सकें। क्योंकि इस समय ब्रिटिश साम्राज्यवाद की आँखें कहीं और लगी हुई थीं। आप भी शंघाई पहुँचे, किन्तु वहाँ से हिन्दुस्तान न जाकर आप श्याम की राजधानी बैंकाक पहुँचे। श्याम की सरकार ने उन्हें गिरफ्तार कर लिया, और ब्रिटिश सरकार के हाथों में सौंप दिया। लाहौर षड्यन्त्र में आप को सम्मिलित कर लिया गया, और मृत्युदंड की सज़ा हुई।

फाँसी घर में रहते समय आप पर यह जुर्म लगाया गया कि आपने अपने सिर पर जो कम्बल का टुकड़ा बाँध रखा है उसमें अफीम है, और उस अफीम का यह मतलब बताया गया कि वे इस अफीम को खाकर आत्महत्या करने वाले हैं। इस पर उन्होंने जवाब दिया "वाह खूब रहा, जब हमें गौरवपूर्ण ढंग से मरने का मौका दो चार दिन में मिलने ही वाला है तो मैं क्यों इस प्रकार कायरों की मौत मरूँ?" यथा समय इनको फाँसी दे दी गई।

भाई भागसिंह

भाई भागसिंह २० साल की अवस्था में फौज में भर्ती हुए थे। पाँच वर्ष तक नौकरी करने के बाद आप चीन चले गये। हाँगकाँग में कुछ दिन तक पुलिस की नौकरी करते रहे, फिर वहाँ से शांघाई गये और वहाँ की म्युनिसिपैलिटी में नौकरी कर ली। यहाँ भी मन न लगा तो कैनाडा पहुँचे. अब तक का जीवन अल्हड़पन का जीवन था। ज्यादा

सोचने विचारने का अवसर न था, किन्तु कैनाडा में जो गये और वहाँ के गोरे निवासियों के मुकाबले में भारतीयों की दुर्दशा देखी तो आप एक नये ढंग पर सोचने को विवश हुए। फिर बलवन्त सिंह, सुन्दर सिंह आदि लोगों का साथ हुआ।

कैनाडा में "गदर" पत्र तो आता ही था, ये भी उस रंग में रंग गये। आप जब काम से दक्षिणी बृटिश कोलम्बिया गये, तो वहाँ सन्देहवश गिरफ्तार कर लिये गये, किन्तु फिर बाद को छोड़ दिये गये। भाई भागसिंह गुरुद्वारा बनवाना, मुर्दे जलाने का अधिकार प्राप्त करना तथा "कोमा गाटा मारू" को घाट उतारने के मामले में कैनाडा के गोरों की आँखों में काफी खटकने लगे थे। उन लोगों ने बहुतेरा हाथ पाँव मारा कि भाई जी को दबा दें या खरीद लें, किन्तु वे असफल रहे। इसलिये इन लोगों ने सोचा कि इसका काम ही तमाम कर दिया जाय, किन्तु इन घृणित काम को कैसे अंजाम देंगे यह इन्हें नहीं सूझता था। अन्त तक गोरों ने बेलासिंह नामक एक सिक्ख ही को इस काम के लिये नियुक्त किया। एक दिन भाई भागसिंह जी नियमानुसार अपना पूजा पाठ खतम कर सिर टेक रहे थे कि बेलासिंह ने उनकी पीठ की ओर से गोली चलाई, यह गोली जाकर उनके फेफड़े में रुक गई। भीड़ थी इस लिये लोग दौड़ पड़े, तो एक आदमी को उस दुष्ट ने और भी गोली मार दी।

अस्पताल में आपका आपरेशन हुआ, लड़का आपके सामने लाया गया तो आप बोले "यह लड़का मुल्क का है, जाओ इसे दरबार साहब में ले जाओ।" आपकी अन्तिम घड़ी आई तो आप यहीं अफसोस करते हुए मरे कि मैं तो चाहता था कि स्वतंत्रता के युद्ध में वीरों की तरह मरूँ, किन्तु अफसोस मैं ऐसे मर रहा हूँ।

भाई वतनसिंह

विश्वासघाती बेलासिंह की गोली से एक और सिक्ख खेत आये थे, इस व्यक्ति का नाम वतनसिंह था। आप भी पञ्जाब से रोजी की तलाश में कैनाडा आये हुए थे। वहाँ वे बराबर भाई भागसिंह आदि

देश-भक्तों के साथ सभी हकों की लड़ाई में सम्मिलित थे। जिस दिन बेलासिंह ने गोरों के बहकाने में आकर भागसिंह पर गोलियां चलाईं उस दिन भाई वतनसिंह वहीं मौजूद थे। बेलासिंह ने जो भागसिंह पर गोली चलाई तो वतनसिंह आततायी पर लपके किन्तु बेलासिंह बिलकुल निधड़क गोली चला रहा था। उसने एक के बाद एक सात गोली वतन सिंह को मारी, और जब वे गिर पड़े तो जान छुड़ाकर भाग गया।

डाक्टर मथुरा सिंह

ग़दर दल के सदस्यों में डाक्टर मथुरासिंह एक प्रमुख व्यक्ति थे। मैट्रिक पास करने के बाद आप डाक्टरी का काम पुस्तकों से तथा डाक्टरों से सीखने लगे, और इस प्रकार कुछ वर्षों में एक सुचतुर डाक्टर हो गये। निजी तौर पर डाक्टरी सीखने को तो आप ने सीख ली, किन्तु उससे आप को तृप्ति नहीं हुई। आपने विदेशों में जाकर डाक्टरी सीखने की ठान ली, तदनुसार वे उस के लिये तैयारियाँ करने लगे। इस बीच में आपकी स्त्री तथा कन्या की मृत्यु हो गई, इससे आप को दुःख तो हुआ, किन्तु आप और भी स्वतन्त्र हो गये, और अब आपकी विदेश-यात्रा के रास्ते में कोई भी अड़चन नहीं रही। लड़ाई छिड़ने के पहले ही वे अमेरिका के लिये रवाना हो गये, किन्तु शंघाई जाते जाते उनकी पूँजी खतम हो गई, इससे उन्हें वहीं उतरना पड़ा। वहाँ वे डाक्टरी करने लगे, और जब काफी रुपया इकट्ठा हो गया तो वे कैनाडा के लिये रवाना हो गये। वहाँ पर उतरने में काफी दिक्कत हुई, तो उनका मिजाज गरम हुआ, तिसपर इमिग्रेशन वालों ने कुछ अधिक पूछताछ की तो झगड़ा ही हो गया मामला अदालत तक गया तो वहाँ आप दोषी माने गये, और उन्हें कैनाडा से निकल कर उलटे पाँव फिर शंघाई आना पड़ा।

इसी बीच में बाबा गुरुदत्त सिंह ने 'कोमा गाटा मारू" जहाज पर क्रान्तिकारी कामों का सिलसिला जारी कर दिया था, और तमाम समुद्रों में आफतों का सामना करने के बाद यह भारत की ओर आ रहा था।

डाक्टर मथुरा सिंह इस जहाज से पहले ही भारत पहुँच गये थे, वे अमृतसर पहुँच भी न पाये थे इतने में बजबज की दुर्घटना हुई। बजबज की दुर्घटना को अच्छी तरह समझने के लिए जरूरी है हम समझें कि गदर पार्टी क्या थी।

ग़दर-पार्टी का वास्तविक स्वरूप

ग़दर-पार्टी जैसा कि पहिले कहा जा चुका है एक सशस्त्र क्रांति में विश्वास करने वाला दल था, किन्तु यह भावना रोटी की तथा एक-आध क्षेत्र में विद्या की तलाश में गये हुए हिन्दुस्तानियों के दिल में कहां से आई? बात यह है ये सभी हिन्दुस्तानी गये थे रोटी की तलाश में, किन्तु जब उन्होंने देखा कि केवल उनके सम्मान में ही नहीं रोटी में भी उनकी गुलामी बाधक है, पग-पग पर अड़चनें खड़ी की जाती हैं, कहीं उतरने नहीं दिया जाता, कहीं मजदूरी करने नहीं दी जाती तो उनके दिलों में राजनैतिक जजबात आये। अब तक वे लोग अपने-अपने स्वार्थ के सम्बन्ध में सोचते थे, किन्तु अब वे जत्थेबन्द होकर सामूहिक रूप से सोचने लगे। अमेरिका के अरिगन प्रान्त में पंडित काशीराम, बाबा केशर सिंह, बाबा इशर सिंह महारान, शहीद भगत सिंह उर्फ गान्धी सिंह, बाबा सोहन सिंह, शहीद मास्टर ऊधम सिंह, हरनाम सिंह, टंडिलाट तथा अन्य लोगों ने अपनी हालत के सुधार के लिये एक आन्दोलन खड़ा किया। उधर कैलिफोर्निया के हिन्दुस्तानी भी संगठित हो रहे थे। अरिगन के हिन्दुस्तानियों ने लाला हरदयाल को कैलिफोर्निया से बुला लिया, और परामर्श के बाद यह तय हुआ कि सारे हिन्दुस्तानी संगठित हो जायँ। इस फैसले के फलस्वरूप जो सभा कायम हुई उसका नाम "हिन्दी असोसिएशन" रक्खा गया, यही असोसिएशन बाद में जाकर "गदर-पार्टी" के रूप में तबदील हो गया। इस असोसिएशन के पदाधिकारी निम्नलिखित व्यक्ति चुने गये:—

सभापति—बाबा सोहन सिंह

उप-सभापति— बाबा केसर सिंह

मन्त्री— लाला हरदयाल

कोषाध्यक्ष—पं० काशीराम

तमाम हिन्दुस्तानी इस संघ के सदस्य हो गये, बात की बात में चन्दा तथा काम करने वाले भी खूब इकट्ठे हो गये। संघ की ओर से जैसा पहिले लिखा जा चुका है "गदर" नाम से एक अखबार निकाला गया, और यह तय हुआ कि सैनफ्रैंसिस्को इस संघ का केन्द्र हो। इसकी वजह यह थी कि कैलिफोर्निया प्रान्त में ही हिन्दुस्तानी सब से ज्यादा बसे थे। सैनफ्रैंसिस्को एक प्रसिद्ध बन्दरगाह होने की वजह से भी बहुत उपयुक्त था। जो दफ्तर इस संघ के लिये लिया गया उसका नाम 'युगान्तर आश्रम' रक्खा गया, और जो प्रेस इसके अखबार के लिये स्थापित किया गया उसका नाम 'गदर प्रेस' रक्खा गया। "गदर" के सम्पादन का भार लाला हरदयाल पर सौंपा गया। "गदर" अखबार का पहिला अंक नवम्बर १९१३ में निकला।

काम की योजना तैयार हो चुकी थी, अब अमेरिका के रहने वाले सब हिन्दुस्तानियों की मंजूरी लेनी बाकी थी, इस उद्देश्य से फरवरी सन् १९१४ में स्टाकटन नगर में एक सभा की गई। इस सभा का सभापतित्व प्रसिद्ध पञ्जाबी क्रांतिकारी श्री ज्वाला सिंह ने किया। इस सभा में बाबा सोहन सिंह, केशर सिंह, करतार सिंह, लाला हरदयाल, तारकनाथ दास, पृथ्वी सिंह, बाबा करम सिंह, बाबा बसाखा सिंह, भाई सन्तोख सिंह, पंडित जगतराम हर्यानवी, दलीप सिंह फाल, पूरन सिंह, निरञ्जन सिंह पंडोरी, कमरसिंह धूत, निधानसिंह महरोरी, बाबा निधान सिंह चग्घा, बाबा अरूड़ सिंह आदि शामिल थे। इस सभा में बहुत से प्रस्ताव पास हुए। प्रवासी हिन्दुस्तानियों का यह पहिला ही क्रान्तिकारी जलसा था। इस सभा में किये हुए फैसले के मुताबिक अखबार और छापेखाने में काम करने वाले सैनफ्रैंसिस्को चले गये। बाबा सोहनसिंह और बाबा केसर सिंह कैलिफोर्निया में संगठन के उद्देश्य से दौरा करने लगे।

भगतसिंह और करतारसिंह आप लोगों के साथ हो गये।

इसके थोड़े ही दिन बाद एक सभा और बुलाई गई, इसमें शहीद रामसिंह, भागसिंह, मलालसिंह, मौलवी बरकतुल्ला और भाई भगवान सिंह भी शरीक थे। फिर तो जलसे होते ही रहे। दल के लिए धन इकट्ठा करने का काम जारी था, इन प्रवासी हिन्दुस्तानियों में देश के लिए इस प्रकार जोश था कि लोग अपने बंक की किताबें ही चन्दे में दे देते थे। इस प्रकार हर उपाय से दल का सन्देशा हर हिन्दुस्तानी के घर पहुँचा दिया गया। बड़े जोरशोर से काम होने लगा, थोड़े ही दिनों में दल की शाखायें कैनाडा, पनामा, चीन तथा अन्य देशों में जहाँ जहाँ हिन्दुस्तानी थे फैल गईं।

ग़दर पार्टी का आदार्श था आजादी और बराबरी। इस पार्टी में किसी धर्म तथा सम्प्रदाय का भेद नहीं था, कोई भी हिन्दुस्तानी इस दल का सदस्य हो सकता था। ग़दर पार्टी का हरेक सदस्य देश का का एक सिपाही समझा जाता था। पार्टी के अन्दर मजहबी या धार्मिक बहस की कोई आशा नहीं थी। वैयक्तिक जीवन में हर एक सदस्य को पूरी आजादी थी, इस पार्टी का एक खास सिद्धान्त यह था कि जहाँ कहीं भी दुनिया के किसी हिस्से में गुलामी के विरुद्ध युद्ध हो वहाँ ग़दर पार्टी का सिपाही अपने आपको आजादी और बराबरी के सिद्धांतों की रक्षा के लिए पेश करे, और हिन्दुस्तान के स्वातंत्र्य-युद्ध के लिये तो तन, मन, धन अर्पण करने को तैयार रहे। हिन्दुस्तान में स्वतन्त्र प्रजातन्त्र कायम करना इस दल का उद्देश्य था।

मार्च १९१४ में लाला हरदयाल पर अमेरिका की सरकार ने मुकद्दमा दायर किया, खैर आप को एक हजार डालर की जमानत पर रिहा कर दिया गया। यह सलाह ठहरी कि लाला हरदयाल अमेरिका से बूदोबास उठा कर चले जायँ। इनके जाने के बाद बाबा सोहनसिंह और भाई सन्तोख सिंह बहैसियत सभापति और मंत्री के काम करते

रहे। करतारसिंह, पृथ्वीसिंह और पं० जगतराम बाहर संगठन करने के काम में संलग्न रहे।

कोमा गाटा मारू

पहिले हम कोमागाटा मारू का उल्लेख कर चुके हैं। इसी जमाने में जब यह आन्दोलन चल रहा था, हिन्दुस्तानियों का विशेष कर बाबा गुरदत्तसिंह का चार्टर किया हुआ यह जहाज वैंकोवर पहुँचा, किंतु कैनाडा की सरकार ने उसे बन्दरगाह पर लगने से रोक दिया। इस पर कैनाडानिवासी हिन्दुस्तानियों में बहुत ही जबर्दस्त असन्तोष की आग भड़क उठी। भागसिंह, मेवासिंह और वतनसिंह ने इस सम्बन्ध में जो कुर्बानियाँ की, वे सोने के हरफों में लिखी रहेंगी। भागसिंह तथा वतन सिंह किन परिस्थितियों में शहीद हुए यह तो पहिले ही लिखा जा चुका है, अब मेवासिंह का थोड़ा सा हाल सक्षेप में लिखकर हम आगे बढ़ जायेंगे।

मेवासिंह

भाग सिह तथा वतन सिंह की हत्या का मुकद्दमा चल रहा था। हत्यारे ने बयान दिया कि इमिग्रेशन विभाग के लोगों ने मुझे यह हत्या करने के लिये नियुक्त किया था। इस बयान को सुनकर अदालत में उपस्थित मेवा सिंह के बदन में आग सी लग गई, कितना बड़ा विश्वासघात था कि पैसों के लिये एक हिन्दुस्तानी गोरों के भड़-काने पर दो अच्छे से अच्छे नररत्नों की हत्या कर डाले। प्रतिहिंसा के लिये वे व्याकुल हो गये किन्तु समय अभी नहीं आया था। आप सिद्धि के लिये साधना करने लगे, सैकड़ों रुपये उन्होंने गोली चलाने में दक्षता प्राप्त करने में खर्च कर डाले।

मुकद्दमा चल रहा था। उस दिन इमिग्रेशन अफसर मिस्टर हाप-किन्सन की गवाही हो रही थी, इतने में सनसनाती हुई गोली आकर हाप-किन्सन को लगी। वह वहीं ढेर हो गया। अदालत में एक भगदड़ सी मच गई। जज मेज़ के नीचे छिप गये, और जिसको जिधर जगह

मिली वह उधर भाग निकला। किन्तु मेवा सिंह का काम हो चुका था, उसे और किसी को सजा देनी नहीं थी, उन्होंने रिवालवर वहीं पर पटक दिया, और चिल्लाकर लोगों से कहा—"कोई डरने की बात नहीं, मेरा काम खतम हो चुका है, मुझे अब कोई भी गिरफ्तार कर सकता है।"

गिरफ्तार कर लिये जाने पर जब उन्हें बताया कि हापकिन्सन मर चुका तो वे बहुत ही खुश हुए। उन्होंने अफसोस किया तो इतना किया कि वे रीड का (जो कि हापकिन्सन का साथी और सलाहकार था) न मार सके। मुकद्दमे में आपने अपना सारा अपराध कबूल कर लिया। उन्हें मालूम था कि इसके लिये उन्हें फाँसी ही होगी, किन्तु उन्हें इसकी कब परवाह थी।

फाँसीघर में बहुत दिनों तक प्रतीक्षा करने के बाद फाँसी का दिन आया। भाई मीतसिंह धर्माचार्य बनकर गये तो उन्होंने हँसते हँसते अपने देश के लिये यह सन्देशा दिया कि दलबन्दी तथा मजहबी तास्सुब छोड़कर सब लोग कार्य करें। यथा समय उनको फाँसी दे दी गई, और उनकी लाश का बड़ा भारी जुलूस निकला।

कोमा गाटा मारू रवाना

२३ जुलाई १९१४ के दिन कोमा गाटा मारू वैंकोवर से रवाना हुआ, और हिन्दुस्तान की ओर यात्रा शुरू हुई। इस बीच में यूरोप में लड़ाई छिड़ गई थी। ग़दर पार्टी ने यह फैसला किया कि यात्रियों से भेंट करे, और पार्टी की सारी बातें उन्हें सूचित करें। बाबा सोहन सिंह इस उद्देश्य से रवाना हुए और योकोहामा में ये इन यात्रियों से मिले।

बाबा सोहन सिंह जिस समय योकोहामा में थे उसी समय करतार सिंह सराभा भी पहुँच गये, और यह खबर लाये कि महायुद्ध शुरू होने के कारण ग़दर पार्टी ने यह फैसला किया था कि उसके तमाम त्यागी सदस्य हिन्दुस्तान में चले जाएँ, और क्रान्तिकारी तरीकों से मातृभूमि को स्वाधीन करने का प्रयत्न करें। इसी उद्देश्य से सैनफ्रैंसिस्को से

चलनेवाला जहाज़ "कोरिया" था, जिस में सिर्फ कैलिफोर्निया से ठीक ६२ हिन्दुस्तानी सवार हुए, इनमें से ६० तो ऐसे थे जो देश की सेवा में सब कुछ न्यौछावर करने वाले थे और दो सरकार के टुकड़े पर पलने वाले सी० आई० डी० के कुत्ते थे।

जहाज में खूब सभाएँ होती थीं, गदर गूँज पढ़ी जाती थी। हरेक यात्री के दिल में यही धुन थी कि हिन्दुस्तान को आजाद करें या उसी कोशिश में मर मिटेंगे। देश को स्वाधीन देखने के अलावा इनके दिल में कोई आकांक्षा नहीं थी। जब यह जहाज योकोहामा पहुँचा, तो सुप्रसिद्ध क्रान्तिकारी पंडित परमानन्द इनमें शामिल हो गये। पं० परमानन्द को आगे चलकर पहिले फाँसी बाद में कालेपानी की सजा हुई। साढ़े तेईस साल लगातार जेल में रहने के बाद वे अब छूटे हैं। उनका विस्तृत इतिहास यथास्थान लिखा जायगा।

जापान पहुँचने पर यह सलाह ठहरी कि कुछ साथियों को चीन भेज दिया जाय ताकि वहाँ के हिन्दुस्तानियों को क्रान्ति का सन्देशा दे दिया जाय। तदनुसार निधान सिंह चग्घा, अमर सिंह और प्यारा सिंह इस काम के लिये शंघाई रवाना किये गये, जो वहाँ से सैकड़ों हिन्दुस्तानियोंको लेकर हिन्दुस्तान अपने साथियों से पहिले आये।

दो और जहाज जो कैनाडा से चले थे 'कोरिया" जहाज को हॉंगकॉंग आकर मिले। इन जहाजों पर करम सिंह, सजन सिंह, बाबा शेरसिंह और किशन सिंह भी थे। इन दिनों समुद्र के इस भाग पर जर्मन जहाज "एमडन" का राज्य था, इसलिये जहाज को कई दिनों तक हॉंगकॉंग में लंगर डाले पड़े रहना पड़ा। बराबर इस हालत में भी जहाज में सभाएँ होती थीं, हॉंगकॉंग के फौजी हिन्दुस्तानी भी इन जलसों में शरीक होते थे। जब सरकार को इस बात का पता लगा तो वह बहुत घबड़ाई, उसने यह हुक्म जारी कर दिया कि कोई सिपाही इन जलसों में शामिल नहीं होंगे। याद रहे कि इस जहाज पर जो लोग थे वे कोई बच्चे नहीं थे, लाखों डालरों का कारोबार करनेवाले लोग

इसमें थे, फिर भी जोश से किस प्रकार भरे हुए थे वह इन दिनों हाँग-काँग में होनेवाली एक घटना से पता लगता है। बाबा ज्वाला सिंह एक दिन हाँगकाँग में टहल रहे थे कि उन्होंने एक रिकशा आते देखा, उसमें एक गोरा बैठा था और एक चीनी उसे खींच रहा था। बाबा जी को यह बात गवारा न हुई, और वे उस गारे पर टूट पड़े और बोले "तुझे शर्म नहीं आती कि तू इस पर बैठा है और एक तेरी ही तरह इनसान तुझे खींच रहा है।" बड़ी मुश्किलों से दोस्तों ने इस झगड़े को दाबा नहीं तो मामला बहुत तूल पकड़ता।

जब जहाज में खाना कम हो गया, तो तोशामारू नामक जहाज कुछ मुसाफिरों को लेकर हिन्दुस्तान रवाना हुआ। रास्ता इस समय खतरनाक हो रहा था। मुसाफिरों के जहाजों को डुबो देना तो एमडेन के लिये एक खेल था, उस के सामने तो बड़े बड़े जंगी जहाजों के छक्के छूटे हुए रहते थे, और दर्जनों जंगी जहाजों को वह अकेला जल-समाधि दे चुका था। जब उसने तोशामारू को भी उड़ाना चाहा तो इस जहाज से झंडियों के जरिये बातचीत कर उसे समझा दिया गया कि इस जहाज में अमेरिका प्रवासी भारतीय क्रान्तिकारी हैं जो भारत में क्रान्ति की आग सुलगाने जा रहें हैं। इस पर "एमडेन" ने इसे छोड़ दिया, जहाज तीन दिन सिंगापुर ठहर कर पेनांग पहुँचा।

तोशामारू पेनांग में

तोशामारू पेनांग पहुँचने पर उसे रोक लिया गया, उसे जाने ही नहीं दिया जाता था, तब एक दिन उकताकर बाबा ज्वालासिंह आदि कुछ क्रान्तिकारी एक हथियार बन्द डेपुटेशन बना कर गवर्नर के पास पहुँचे। वहां इस हालत में अस्त्रशस्त्र लेकर बिना अनुमति के घुसना मना था, किन्तु ये मनचले भला ऐसी बातों को कब सुनने वाले थे, वे एकदम उसी हालत में गवर्नर के कमरे में शोर मचाते हुए पहुँचे। गवर्नर ने जो देखा कि इतने अजनबी आदमी अस्त्रशस्त्र से लैस होकर उसके यहां घुस पड़े हैं तो उसकी सिट्टीपिट्टी भूल गई और वह बगलें झांकने लगा।

उसने इन लोगों को बैठने को कहा तो इन लोगों ने पूछा कि क्या वजह है हमें बन्दरगाह छोड़ने नही दिया जाता, इस पर गवर्नर ने तुरन्त बन्दरगाह के हाकिम के नाम यह हुक्म लिख दिया कि जल्दी से जल्दी इन्हें जाने दो। दूसरी शिकायत यह थी कि जहाज में रसद कम हो गयी है, इस पर गवर्नर ने कहा कि वे भला इस में क्या कर सकते हैं, तो उन्हे बतलाया गया कि उनको कुछ करना ही होगा। गवर्नर ने इन लोगों के चेहरों की ओर देखा और १५००) रु० दे दिये। यह १५००) रु० जहाज के काम करने वाले खलासी आदि में बांट दिया गया। उनकी रसद वाकई कम हो चुकी थी।

किन्तु तोशामारू आजाद हालत में भारत न पहुँचा। कलकत्ते से पहिले ही इस जहाज को हिरासत में ले लिया गया, और २६ अक्टूबर को कलकत्ता पहुँचने पर १२० यात्री को उतारकर मान्टगोमरी और मुलतान की जेलों में भेज कर नजरबन्द कर दिया गया, और बाकी लोगों को अपने-अपने गांव में नजरबन्द कर दिया गया। तोशामारू के यात्रियों के साथ यह व्यवहार इसलिये किया गया कि इसके पहिले ही कोमागाटामारू २६ सितम्बर को ११ बजे आ चुका था, और बजबज में दोनों ओर से गोलियां चली थी। झगड़ा इस बात पर चल पड़ा कि जहाज़ से उतरे हुए यात्री अपने को आजाद समझते थे, किन्तु सरकार चाहती थी कि वे खड़े स्पेशल ट्रेन पर पञ्जाब जायँ। इस पर गोलियां चल गईं, १८ यात्री मारे गये, बहुत से भाग गये थे, भागने वालों में गुरुदत्त सिंह भी थे। भेदियों के जरिये से सब पता पुलिस को पहिले से था ही।

इसके बाद तो मुकद्दमों का तांता सा लग गया। लाहौर षड्यन्त्र के नाम जो पहिला मुकद्दमा चला और जिसका फैसला १३ सितम्बर १६१७ को सुनाया, इसमें केवल फांसी ही इतने आदमियों की सुनाई गई :—

(१) बाबा सोहनसिंह (२) बाबा केशर सिंह

(३) पृथ्वी सिंह (४) करतार सिंह
(५ वी० जे० पिंगले ६) भगत सिंह
(७) जगत सिंह (८) पं० परमानन्द झांसीवाले
(९) जगतराम (१०) बाबा जौहर सिंह
(११) हरनाम सिंह (१२) बख्शी सिंह
(१३) सोहन सिंह अव्वल (१४) सोहन सिंह दोयम
(१५) निधान सिंह चग्घा (१६) भाई परमानन्द लाहौरी
(१७ ` हृदय राम (१८) हरनाम सिंह टेडिला
(१९) रामसरन कपूरथला (२०) रलिया सिंह
(२१) खुशहाल सिंह (२२) बसाधा सिंह
(२३) काहिला सिंह २४) बलवन्त सिंह
(२६) सावन सिंह (२६) नन्द सिंह
इत्यादि ।

इनमें से सब को आखिर तक फांसी नहीं हुई, पहिले मुकद्दमा ६४ आदमियों पर चलाया गया। जिसमें से सात को आखिर तक फांसी हुई, पाँच बरी हुए, चौबीस की सारी सम्पत्ति जब्त कर ली गई तथा काले-पानी की सजा दी गई और बाकी को १० से लेकर २ साल की सजा हुई।

हम पहिले भी कहीं लिख चुके हैं और फिर लिखते हैं कि महायुद्ध के जमाने में क्रांतिकारियों ने जो तैयारी की थी वह कुछ मनचलों के मन की लहर नहीं थी, न वह सिर पर कफन बांधे हुए अलमस्तों की अग्निक्रीड़ा ही थी, बल्कि हरेक अर्थ में एक क्रान्ति की तैयारी थी। यह बात सच है कि जो तैयारियाँ तथा जिस किस्म की तैयारियाँ थीं उनके सफलीभूत होने पर यहाँ समाजवादी क्रांति नहीं हो जाती, किन्तु समाजवादी क्रांति के पहिले जिस क्रांति को सभी वैज्ञानिक क्रांतिकारी अनिवार्य मानते हैं अर्थात् राष्ट्रीय क्रांति वह अवश्य ही होकर रहती। डाक्टर भाग सिंह पी० एच० डी०, जिनका मैं इस अध्याय के पिछले

हिस्से को लिखने में अनुगृहीत हूँ, भी इस विचार को स्वीकार करते हैं।

वे लिखते हैं "१९१४-१५ का क्रांति-आयोजन इतना जबरदस्त तथा विस्तृत था, और यूरप में छिड़े हुए महायुद्ध की वजह से सरकार बड़ी ही नाजुक हालत से गुजर रही थी कि इस आयोजन से उसे बड़ा खतरा पैदा हो गया था।" यह खतरा कितना बड़ा था इस सम्बन्ध में पञ्जाब के उस समय के गवर्नर सर माइकल ओडायर ने इस तरह लिखा है कि महायुद्ध के दौरान में सरकार बहुत कमजोर हो चुकी थी। हिन्दुस्तान भर में केवल तेरह हजार गोरी फौज थी जिनकी नुमाइश सारे हिन्दुस्तान में करके सरकार के रोब को कायम रखने की चेष्टा की जा रही थी। ये भी बूढ़े थे, नौजवान तो यूरोप के युद्धक्षेत्रों में लड़ रहे थे। यदि इस अवस्था में सैनफ्रैंसिस्को से चलने वाले गदर पार्टी के सिपाहियों की आवाज मुल्क तक पहुँच पाती तो निश्चय है कि हिन्दुस्तान अंग्रेजों के हाथ से निकल जाता। यह राय उक्त गवर्नर ने अपनी India as I knew it नामक पुस्तक में दर्ज की है। यही राय वायसराय हार्डिञ्ज और दूसरे अंग्रेजों की है।

सब मिलाकर ६ षड्यन्त्र के मुकदमे स्पेशल ट्रिब्युनल के सामने चले। इन सब मुकदमों में २८ आदमियों को फाँसी दे दी गई, यों हुक्म तो बहुतों को हुआ। इन मुकद्दमों के फैसले के दौरान में जो-जो बातें कही गईं उनमें से कुछ का उल्लेख कर हम इस अध्याय को समाप्त करते हैं। "बहुत से और परचों के साथ एक युद्ध की घोषणा भी तलाशी में बरामद हुई थी, रेल तथा तार को बेकार कर देने के लिये एक बड़ी तादाद में औजार इकट्ठे किये गये थे।" "फौजों में बद-अमनी पैदा करना इनके कार्य-क्रम की सबसे प्रमुख बात थी। इस बात के प्रमाण है कि रास्ते के बन्दरगाहों में तथा मेरठ, कानपुर, इलाहाबाद, फैजाबाद, बनारस, लखनऊ की फौजों में इस उद्देश्य से लोग

गये थे।" एक पर्चे में, कहा जाता है कि, यह भी था कि छात्रों से अपील की गई थी कि वे पढ़ना छोड़कर क्रांतिकारी कामों में शामिल हो जायँ। इसमें और भी कहा गया था कि क्रांति के बाद लोगों को बड़े ओहदे मिलेंगे, और हरदयाल को राजा बनाया जायगा। ब्रिटेन के शत्रुओं से इनको मदद प्राप्त थी, वह कितनी बड़ी थी, यह किसी और अध्याय में दिखाया जायगा।

संयुक्त प्रान्त में क्रान्तिकारी आन्दोलन

संयुक्त प्रान्त में क्रान्तिकारी आन्दोलन मुख्यतः बङ्गाल में फैला, रौलट साहब ने इस सम्बन्ध में अपनी रिपोर्ट में एक पूरा अध्याय ही लिखा है। हम इस लेख में मुख्यतः उससे उद्धरण देंगे। वे पहिले संयुक्त प्रान्त का वर्णन करते हैं। "संयुक्त प्रांत आगरा व अवध और बङ्गाल के बीच में बिहार व उड़ीसा प्रांत है। यह प्रान्त भौगोलिक दृष्टि से भारतवर्ष का हृदय है, इस प्रान्त में बनारस और इलाहाबाद है जो हिन्दुओं की दृष्टि में पवित्र हैं, आगरा है जो किसी जमाने में मुग़ल साम्राज्य का केन्द्र था, और लखनऊ है जो एक मुस्लिम राज की राजधानी थी। १८५७ के युद्धों का यही प्रांत मुख्यतः केन्द्र था।"

"नवम्बर १९०७ में 'स्वराज्य' नाम से इलाहाबाद से एक पत्र निकला, यहीं से पहिले पहल इस शांतिपूर्ण प्रान्त में क्रान्तिकारी प्रचार का तथा प्रयास का सूत्रपात होता है। इसके परिचालक एक सज्जन श्री शांतिनारायण थे जो पहिले पञ्जाब के किसी अखबार के सम्पादक थे। इस पत्र का उद्देश्य लाला लाजपत राय तथा सरदार अजितसिंह की नजरबन्दी से रिहाई की यादगारी थी। इस अखबार का स्वर

शुरू से ही सरकार के विरुद्ध था, किन्तु ज्यों ज्यों दिन बीतने लगे यह और भी गरम होता गया। अन्त में शान्तिनारायण को खुदीराम बसु के सम्बन्ध में लिखे हुए एक आपत्तिजनक लेख के कारण लम्बी सजा हुई। 'स्वराज्य' फिर भी बन्द नहीं हुआ चलता रहा, एक के बाद एक इसके आठ सम्पादक हुए, जिनमें से तीन को आपत्तिजनक लेखों के सम्बन्ध में लम्बी सजायें हुईं। इन आठ सम्पादकों में से सात पञ्जाबी थे। १६१० में प्रेस ऐक्ट के बाद ही यह अखबार बन्द किया जा सका। जिन लेखों पर आपत्ति की गई थी उनमें से एक तो खुदीराम बसु पर था यह खुदीराम वही था जिसने श्रीमती तथा कुमारी केनेडी की हत्या कर डाली थी। दूसरे ऐसे लेखों के शीर्षक यों थे "बम या बायकाट" "जालिम और दबाने वाला।" यद्यपि इस अखबार ने बड़े जोर का राजद्रोह फैलाया, फिर भी प्रांत में इसका कोई प्रत्यक्ष प्रभाव नहीं पड़ा। इलाहाबाद से १६०६ में एक ऐसा ही अखबार "कर्मयोगी" निकला किन्तु इसका भी कोई नतीजा इस प्रांत में नहीं हुआ।"

"१६०८ में होतीलाल वर्मा नाम के एक व्यक्ति को हम एकाएक राजद्रोही प्रचार कार्य में नाम करते हुए पाते हैं। ये जाति के जाट थे, और पंजाब में पत्रकार रूप में कुछ दिनों तक काम करते थे। अरविंद घोष का कलकत्ते से जो 'वन्देमातरम्' नामक अखबार निकला था ये उसके संवाददाता थे। बाद को इनको क्रांतिकारी प्रचार कार्य में दस साल का कालेपानी हुआ। वे महाशय चीन जापान तथा यूरोप घूम चुके थे, तथा वहाँ बुरे लोगों के (!) असर में आ चुके थे। इनके पास बम बनाने के मैनुअल के कुछ हिस्से मिले थे, ये हिस्से कलकत्ता अनुशील-लन समिति के द्वारा बनाये गये मैनुएल से मिलते जुलते थे। इन्होंने अलीगढ़ के नौजवानों में राजद्रोह फैलाने की कोशिश की थी, किन्तु उसका कोई परिणाम नहीं निकला।"

भारत में सशस्त्र क्रांति-चेष्टा का रोमांचकारी इतिहास
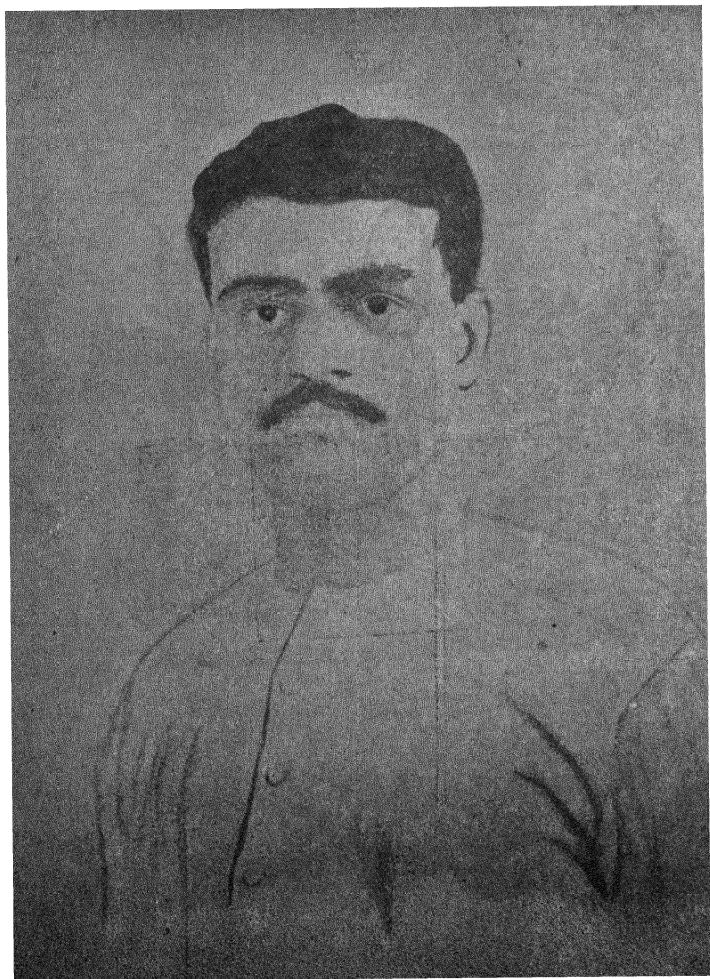
श्री शचीन्द्र नाथ सान्याल

भारत में सशस्त्र क्रांति-चेष्टा का रोमांचकारी इतिहास
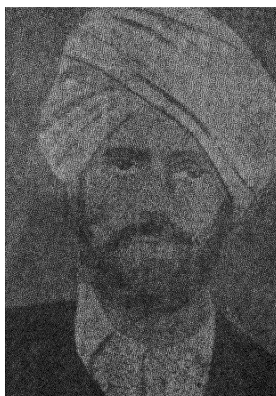
मैनपुरी षडयन्त्र के नेता श्री गेंदालाल दीक्षित

बनारस षड्यन्त्र

"हम अब बनारस षड्यन्त्र की कहानी पर आते हैं। प्रसिद्ध शहर बनारस में बहुत से विद्यालय और दो कालेज़ हैं। इसमें रहनेवालों में बंगालियों की एक बड़ी संख्या है, बहुत से बंगाली तीर्थ के ख्याल से इस शहर में बसे हुए हैं फिर भला वे जहरीली बातें यहाँ क्यों न फैलती जो दूसरी जगह फैल चुकी थी।"

बनारस का काम

"१६०८ में शचीन्द्रनाथ सान्याल नाम के एक नौजवान बंगाली ने, जो उस समय बंगाली टोला हाईस्कूल की सर्वोच्च कक्षा में पढ़ता था, कुछ दूसरे नौजवानों के साथ अनुशीलन समिति नाम से एक क्लब खोला। उन दिनों ढाका की अनुशीलन समिति अपनी बढ़ती पर थी, उसी से यह नाम लिया गया थ, किन्तु जिस समय ढाका समिति पर मुकद्दमे वगैरह की नौबत आई तो बनारस की समिति का नाम Young Mens' Association "युवक संघ" बना दिया गया। यह एक मार्के की बात है कि इस संस्था के एक के अलावा सभी सदस्य बनारस के रहने वाले थे। यह जो एक बाहरी थे ये भी Students' union league के सदस्य थे, और बाद को ये षड्यन्त्र में अभियुक्त थे। देखने में तो इस समिति का उद्देश्य सदस्यों की मानसिक, नैतिक, शारीरिक उन्नति करना था, किन्तु बनारस षड्यन्त्र के कमिशनरों के शब्दों में, जिनकी अदालत में यह मुकद्दमा चला था, इसमें कोई सदेह नहीं कि इस संस्था को खोलने में शचींन्द्र का उद्देश्य राजद्रोह प्रचार करना था; जैसा कि इसके भूतपूर्व सदस्य देवनारायण मुकर्जी ने बताया है कि यहाँ लोग सरकार के विरुद्ध बहुत गालियाँ दिया करते थे। विभूति के अनुसार इस समिति का एक भीतरी वृत्त था जिसके सदस्य इसके असली उद्देश्य से वाकिफ थे, राजद्रोह की शिक्षा इस प्रकार दी जाती थी कि भगवद्-गीता का क्लास खोला गया था, उसमें गीता की व्याख्या ऐसे की जाती

थी कि राजनैतिक हत्या का भी समर्थन हो। वार्षिक कालीपूजा के अवसर पर एक सफेद कुम्हड़ा या पेठा की बलि दी जाती थी। यों तो इसका कोई खास अर्थ नहीं था, किन्तु इन लोगों ने इसका अर्थ यह लगाया कि सफेद कुम्हड़ा माने सफेद चमड़ावाला अंग्रेज है। इसलिये इस बलिदान के लिये एक विशेष प्रार्थना भी की जाती थी।" इस बात का प्रमाण हैं कि बनारस में अनुशीलन-समिति की स्थापना के पहिले बंगाल के क्रान्तिकारी आन्दोलन से सम्बन्ध रखने वाले व्यक्ति यहाँ आये थे, और यह निश्चित है कि शचीन्द्र तथा उनके साथी जो उस समय करीब करीब बच्चे थे उनमें से किसी के द्वारा बरगलाये गये थे।

"यह क्लब या समिति १६०६ से १६१३ तक कायम रही, किन्तु यह बात नहीं कि उनमें आपसी मतभेद न हो। पहिले तो इसके वे सदस्य अलग हो गये जो इसकी राजनैतिक कार्यप्रणाली से असहमत थे, और यह नहीं चाहते थे कि यह समिति इस प्रकार सरकार से लोहा ले। फिर इसके जो गरम सदस्य थे वे भी इससे अलग हो गये, इन अलग होने वालों में शचीन्द्र भी थे। ये लोग चाहते थे कि सिद्धान्त कार्यरूप में परिणत किये जाएँ, और बातों की जगह पर काम हो। इन लोगों ने एक नई समिति बनाई जो बङ्गाल की समितियों के साथ पूर्ण सहयोग में काम करना चाहती थी। एक मुखबिर के बाद में छिपे हुए बयान के अनुसार शचीन्द्र बराबर कलकत्ता जाता रहा, और वहाँ शशांक मोहन हाजरा उर्फ अमृत हाजरा (जो कि राजा बजार बम मामले में मशहूर हुये थे) से मिले और उनसे बम तथा धन लाते रहे। १६१३ की शरद ऋतु में उसने तथा उसके साथियों ने बनारस के स्कूल तथा कालेजों में राजद्रोहात्मक पर्चे बाँटे और डाक द्वारा दूसरी जगहों में पर्चे बाँटे। विभूति नामक मुखबिर के अनुसार ये लोग कभी गाँवों में भी जाते थे और गाँव वालों में लेकचर देते थे। मुखबिर के अनुसार लेकचर के दो ही विषय होते

थे, एक तो अंग्रेजों को निकाल बाहर करो और दूसरा अपनी हालत सुधारो। मुखबिर ने और भी कहा कि हम खुल्लमखुल्ला अंगरेजों के निकालने की बात करते थे और कहते थे कि अपनी दशा को सुधारो।

रासविहारी

१६१४ में दिल्ली और लाहौर षड्यंत्र में मशहूर रासविहारी स्वयं बनारस में आये, और अपने हाथों में पूरे आन्दोलन का भार ले लिया। यद्यपि रासविहारी को गिरफ्तार करने के लिये एक बड़ी रकम इनाम की घोषणा की जा चुकी थी, तथा उसके फोटो का सर्वत्र प्रचार किया जा चुका से था, फिर भी १६१४ का अधिकांश समय वे पुलिस की अनजान में बिताने में समर्थ हुए। बनारस एक ऐसा शहर है जहाँ हर प्रान्त के लोग रहते हैं, हरेक प्रान्त के लोग करीब करीब एक दूसरे से अलग रहते हैं। बङ्गालीटोला, जो बङ्गालियों का विशेष मुहल्ला है, करीब करीब एक ऐसा मुहल्ला है जिसके लोग अपने ही दायरे में रहते हैं। इस प्रकार ग़ैर बङ्गाली पुलिस के लिए जो बंगला नहीं बोल सकते हैं, यह बात बड़ी कठिन हो जाती है कि बंगालीटोला के लोगों पर ठीक ठीक निगरानी रक्खे। रासविहारी बंगालीटोला के पास रहते थे, और रात के समय व्यायाम की दृष्टि से निकलते थे। शचीन्द्र दल के बहुत से व्यक्ति समय समय पर उससे मिलते थे, कम से कम एक मौके पर उसने बम तथा पिस्तौल लोगों को दिखलाया था। १६१४ के नवम्बर की रात को जब वे एक बम की टोपी की जाँच कर रहे थे, वह फट गयी, और शचीन्द्र और रासविहारी दोनों को चोट आ गई। इस दुर्घटना के बाद रासविहारी एक दूसरे मकान में गये। यहीं पर विष्णुगणेश पिंगले नाम का एक मराठा युवक रास-विहारी से मिलाया गया। पिंगले बहुत दिनों तक अमेरिका में रहा। १६१४ के नवम्बर में वह लौटा था, उसके साथ लौटने वालों में ग़दर पार्टी के कुछ सिक्ख भी थे। उसने रासविहारी से बतलाया कि अमेरिका से ४००० आदमी विद्रोह की गरज से आ चुके थे, और

२०००० तब आने वाले थे जब विद्रोह छिड़ जायगा। रासविहारी ने शचीन्द्र को पंजाब की हालत देखने को भेजा। शचीन्द्र ने अपना काम निभा लिया, उसने कुछ ग़दर पार्टी के नेताओं को बतलाया कि जो बम बनाना सीखना चाहते हैं वह आसानी से सिखाया जा सकता है। इसके साथ ही उसने बताया कि इसमें उन्हें बंगालियों की सहायता मिलेगी।"

"१९१५ की फरवरी में शचीन्द्र पिंगले के साथ बनारस लौट आया, और उसके बनारस पहुँचने पर रासविहारी ने, जो इस बीच में मकान बदल चुके थे, दल की एक महत्वपूर्ण सभा की ! इसमें उन्होंने बतलाया कि एक विराट विद्रोह शीघ्र ही होने वाला है, और वे देश के लिये मरने को तैयार रहें। इलाहाबाद में दामोदर स्वरूप नाम का एक शिक्षक नेतृत्व करने वाला था। रासविहारी स्वयं शचीन्द्र तथा पिंगले के साथ लाहौर जा रहे थे। दो आदमी बंगाल से हथियार और बम लाने के लिये नियुक्त किये गये, और विनायकराव कापले नामक एक मराठा युवक पञ्जाब में बम ले जाने के लिये नियुक्त किया गया। विभूति और प्रियनाथ पर यह भार रहा कि वे बनारस में फौज को भड़कावें, और नलिनी नाम का एक व्यक्ति जबलपुर में फौज को भड़काने वाला था। इन योजनाओं पर काम करने के लिये फौरन बन्दोबस्त किये गये, शचीन्द्र और रासविहारी लाहौर और दिल्ली के लिये रवाना हो गये, किन्तु शचीन्द्र जाते ही फिर बनारस इस लिये लौट आये कि बनारस का कार्यभार लें। १५ फरवरी के दिन मनीलाल जो बाद में मुखबिर हो गया, और विनायकराव कापले एक पुलिन्दा लेकर बनारस से लाहौर के लिये रवाना हो गये। ये दोनों पश्चिमी भारत के रहने वाले थे, तथा इनके साथ जो पुलिन्दा था उसमें १८ बम थे। एकाएक किसी से धक्का लगकर धड़ाका न हो इसलिये ये लोग बराबर ड्योढ़ा में गये, दो जगह पर अर्थात् लखनऊ और मुरादाबाद में इन्हें फालतू भाड़ा देना पड़ा क्योंकि इन लोगों के पास तीसरे दर्जे के टिकट थे। लाहौर

पहुँचने पर मनीलाल से रासविहारी ने कहा कि २६ फरवरी को सारे भारत में एक साथ विद्रोह होगा। इस तारीख की ख़बर बनारस भेज दी गई, किन्तु चूँकि लाहौर दल को सन्देह हुआ कि उन्हीं में से एक व्यक्ति ने इसका भंडाफोड़ कर दिया है, इसलिये तारीख बदल दी गई।"

'बनारस के लोगों को, जो शचीन्द्र के मातहत काम कर रहे थे, इस तारीख बदलने की बात का पता नहीं था, इसलिये २१ की शाम को परेड की जगह पर प्रतीक्षा कर रहे थे कि अब गदर होता है। इस बीच में लहौर में भंडा फूट चुका था और बहुत सी गिरफ़्तारियाँ हो चुकी थीं। रासविहारी और पिंगले बनारस लौट गये, किन्तु केवल थोड़े दिनों के लिये ही। २३ मार्च को पिंगले १० बम के एक बक्स समेत १२ नं० इंडियन कैवलरी की छावनी में पकड़े गये। ये बम इतने काफी थे कि आधा रेजिमेन्ट इनसे उड़ सकता था। मुखबिर विभूति के बयान के अनुसार ये बम कलकत्ते से लाकर बनारस में इकट्ठे किये गये थे, और तब से वहीं थे। जिस समय वे पकड़े गये, उस समय वे एक टीन के बक्स में थे। इनमें पाँच पर कैप चढ़े हुए थे, और दो अलग कैप थे जिनके अन्दर गनकटन था।"

"रासविहारी कलकत्ते में अपने बनारस के चेलों से आखिरी बार मिलने के बाद हिन्दुस्तान के बाहर चले गये। इसी मुलाकात में उन्होंने अपने चेलों के बतलाया कि वे किसी "पहाड़" में जा रहे हैं और दो साल तक नहीं लौटेंगे। इस बीच में संगठन तथा क्रान्तिकारी साहित्य का प्रचार जारी रहनेवाला था। रासविहारी की अनुपस्थिति में शचीन्द्र तथा नगेन्द्रनाथ दत्त उर्फ गिरिजा बाबू इस दल के नेता होने वाले थे। ये नगेन्द्र बाबू ढाका अनुशीलन-समिति के तपे हुए सदस्य थे इनका नाम अवनी मुकर्जी के नोटबुक में निकला था। अवनी मुकर्जी, सिंगापर में बंगाल और जर्मन बन्दूक मँगाने के षड्यन्त्र के सम्बन्ध में गिरफ़्तार हुए थे।"

बनारस षड्यन्त्र

"बाद को शचीन्द्र, गिरिजा बाबू तथा दूसरे षड्यन्त्रकारी पकड़े गये, और भारतरक्षा-कानून के मुताबिक बनाई गई एक अदालत में इनपर मुकदमा चला। कुछ तो इनमें से मुखबिर हो गये, कई को लम्बी सजायें हुई और शचीन्द्र नाथ सान्याल को साढ़े बाईस साल की सजा हुई। इस मुकद्दमे में दी गई गवाहियों से साबित है कि कई बार फौजों को भड़काने की चेष्टा की गई, राजद्रोही परचे बांटे गये तथा वे बातें हुईं जो ऊपर लिखी गई हैं।"

"तहकीकात के दौरान में मुखबिर विभूति की दी हुई खबर के अनुसार कि वह तथा उसके साथी चन्दननगर के एक सुरेश बाबू के यहाँ ठहरे थे, पुलिस ने फौरन वहाँ तलाशी ली और ये चीजें वहाँ बरामद हुईं :—

(क) एक ४५० छै फायर वाला रिवालवर

(ख) उसी के लिये एक टिन कार्तूस

(ग) एक ब्रीच लोडिंग राइफल

(घ) एक दो नली ५०० एक्सप्रेस राइफल

(ङ) एक दो नली बन्दूक

(च) सत्रह करौलियाँ

(छ) बहुत से कार्तूस

(ज) एक पैकेट बारूद

(झ) कुछ "स्वाधीन भारत' और "Liberty" पर्चे

इस मकान पर पहिले कभी शक नहीं था। शचीन्द्रनाथ सान्याल के कब्जे से पुराने 'युगान्तर' की फाइलें तथा राजनैतिक हत्याकारियों के फोटो बरामद हुए। जिस समय वे गिरफ्तार हुए उस समय वे डाक से राजविद्रोही पर्चे भेजने का बन्दोबस्त कर रहे थे। पटना के बंकिमचन्द्र के घर में मैजिनी का जीवन-चरित्र मिला जिस पर शचीन्द्र ने पृष्ठ पर एक नोट लिखा था "लेखों के जरिए शिक्षा।" "इसके लेखों ने, जो

कि चोरी से देश के कोने-कोने तक पहुँचा दिये गये थे, बहुत से हृदयों पर प्रभाव डाला और समय पर जाकर उसने प्रभाव डाला" वाक्य इसके नीचे लकीर खींची गई थी। फिर एक वाक्य लीजिये जिसके नीचे लकीर खींची हुई थी "जाकोप रूफिनि ने अपने षड्यन्त्र के साथियों से कहा—देखो हम केवल पाँच बहुत ही कम उम्र के नौजवान हैं, हमारे पास करीब करीब कोई भी बल नहीं है और हम करने क्या चलें हैं कि एक प्रतिष्ठित सरकार को उलटने ?"

"बनारस में जितनों को सजा हुई उसमें से केवल एक ऐसा था जो संयुक्त प्रान्त का रहनेवाला था अधिकतर बंगाली थे और सभी हिन्दू थे। सब परिस्थितियों को देखते हुए यह कहा जाता है कि इन षड्यंत्रकारियों को षड्यंत्र के लिए उत्तेजना तो बंगाल से मिली थी, ये धीरे-धीरे इसी की ओर जा रहे थे, फिर रासविहारी के आने पर यह एक बड़ा-सा कांड हो गया और एक अखिल भारतीय क्रांतिकारी योजना का एक अंश हो गया। यह योजना करीब-करीब सफल हो गई थी, कम से कम एक भयंकर मारकाट तो हो ही जाती, और वह ऐसे समय में जब कि समय बहुत खराब था।"

हरनाम सिंह

"गदर आयोजना की सफलता के कुछ दिन बाद हरनाम सिंह नाम का एक पंजाब का जाट सिक्ख जो कभी ९ नम्बर भूपाल इनफैंट्री में हवलदार था और बाद को फैजाबाद छावनी बाजार का चौधरी हो गया था पकड़ा गया और उस पर षड्यंत्र करने का जुर्म लगाया गया। यह साबित हुआ कि क्रान्तिकारी पर्चों से उसका दिमाग फिर गया था, ये पर्चे उसको रासविहारी से सम्बन्ध रखनेवाले सुचा सिंह नामक लुधियाने के एक छात्र ने दिये थे। हरनाम सिंह बाद को पंजाब गया था, वहाँ इसने इन पर्चों को बाँटा था, एक क्रान्तिकारी झण्डा तथा एलान-ए-जंग नामक पुस्तिका ली थी। यह पुस्तिका उसके घर पर बरामद हुई।"

कापले का हत्या

विनायक राव कापले बनारस षड्यन्त्र के सम्बन्ध में फरार थे। १९१८ के ६ फरवरी को ये मार डाले गये, इनके विरुद्ध कई गम्भीर आरोप थे। ये एक मौजेर की गोली से मारे गये थे। बाद को इसी सम्बन्ध में एक बंगाली युवक पकड़ा गया और उसके साथ दो ४५० रिवालवर और २१६ पौंड मौजेर पिस्टल के पाये गये। कापले की हत्या के अपराध में सुशील लाहिडी एम० ए० को फाँसी हुई। पंडित जगतनारायण, जो काकोरी षडयन्त्र में इस्तगासे की ओर से वकील थे, वे ही सुशील लाहिड़ी के मुकद्दमे में अभियुक्त के वकील थे।

मैनपुरी षड्यन्त्र

यों तो संयुक्त प्रान्त में कई षड्यंत्र चले किन्तु मैनपुरी षड्यन्त्र इसमें एक अपनी ही विशेषता रखता है। मैंने इस सम्बन्ध में पहिले ही लिखा है "इस प्रान्त में यही एक ऐसा षड्यन्त्र है जिस पर कि बंगाल या बंगाली क्रान्तिकारियों का कोई प्रभाव नहीं था।"

पं० गेंदालाल दीक्षित

इस षड्यन्त्र के नेता पं० गेंदालाल दीक्षित थे, आप का जन्म आगरा जिले के प्रसिद्ध गाँव बटेसर के पास ३० नवम्बर सन् १८८८ इसवी में हुआ। इनसे पिता का नाम भोलानाथ दीक्षित था। इन्ट्रेन्स पास करने के बाद आप और आगे पढ़ना चाहते थे, किन्तु आर्थिक कारणों से आप और आगे पढ़ न सके, और आप को शिक्षक का कार्य करना पड़ा। दीक्षित जी औरैया के डी० ए० वी० स्कूल में शिक्षक का कार्य करने लगे। पंडित जी आर्य समाजी थे। उन दिनों का आर्य समाज आज के आर्य समाज से विभिन्न था, उसमें जीवन का

स्फुरण था, तथा कुछ अंश तक वह एक क्रान्तिकारी शक्ति था। पंडित जी के हृदय में देश की दुर्दशा पर क्षोभ तो था ही, तिस पर देश में उस वक्त एक अग्नियुग जोरों से चल रहा था। बंगाल के नवयुवक सिर पर कफन बाँधकर अपने तरीके से स्वाधीनता-आन्दोलन में जुटे थे। पंडितजी ने भी सोचा कि बस हम क्यों चुप बैठे रहें, हम भी कुछ कर गुजरें।

इसी उदेश्य से इन्होंने शिवाजी-समिति बनाई, शिवा जी के तरीके से ही उन्होंने भारत-माता को विदेशियों की जंजीर से छुड़ाने की ठानी। कहा जाता है कि दीक्षित जी ने पहिले तो देश के पढ़े लिखे लोगों को इसलिये उभाड़ना चाहा, किन्तु पढ़ेलिखे वर्ग के सब लोग तो गुलामी की बदौलत चैन की वंशी बजा रहे थे, बल्कि यों कहना चाहिये कि उनको शिक्षा ऐसी दी गई थी, तथा उनके चारों ओर वातावरण ऐसा पैदा किया गया था कि वे गुलामी में ही सुखी थे, इसलिये वे निराश होकर डाकुओं का संगठन करने लगे। बात यह है कि उन्होंने देखा कि डाकुओं में हिम्मत है, यदि किसी बात में गलती है तो यह है कि उनको उचित दिशा नहीं मालूम। अब विचार करने पर मालूम होगा कि पं० जी ने ऐसी उम्मीद कर बड़ी भूल की। जो डाकू थे उनका भला क्या उपयोग हो सकता था। वे तो बल्कि आन्दोलन को कलुषित करते। खैर यह बात नहीं कि पं० गेंदालाल का ही ऐसा गलत ख्याल था, शायद श्री शचीन्द्रनाथ सन्याल ने ही कहीं लिखा है कि पहले वे भी समझते थे कि जिस समय आम विद्रोह हो उस समय जेल के कैदी सब रिहा कर दिये जायें तो वे उस समय उसमें मदद देंगे, किन्तु बाद को जब वे कैदियों में बहुत दिन रहे तो उनका यह ख्याल बदला।

कुछ दिनों तक गेंदालाल इन्ही का संगठन करते रहे। उन्हें एक व्यक्ति मिल गया जिसे लोग ब्रह्मचारी कहते थे। ये चम्बल और यमुना के बीच में रहनेवाले डाकुओं का संगठन करने लगे। इस काम में वे बड़े दक्ष साबित हुए। ब्रह्मचारी ग्वालियर में डाके डलवाते रहे। थोड़े

ही दिन में राज्य को ब्रह्मचारी की फिक्र होने लगी और और उन्होंने चाहा कि उसे किसी भी तरह पकड़ें। राज्य की ओर चारों तरफ गुप्त-चर दौड़ने लगे, तथा लोगों को इनाम के वादे किये गये।

एक डाका

ब्रह्मचारी तथा गेंदालाल ने एक धनी के यहां डाका डालने का निश्चय किया। वह जगह इतनी दूर थी कि एक दिन में नहीं पहुँच सकते थे, इसलिये रास्ते में पड़ाव डालना पड़ा। गिरोह में ८० के करीब आदमी थे। उसी गिरोह में एक भेदिया था, इसने तय कर लिया था कि किसी प्रकार भी हो सके इन्हें पकड़ना जरूरी है, और इससे अच्छा मौका भला कहां मिलेगा! लोग भूखे तो थे ही, वह स्वयं पूड़ियाँ बना-कर लाने गया और उसमें विष मिलवाकर लाया। ब्रह्मचारी ने जब पूड़ियां खाईं तो बस उनकी जीभ ऐंठने लगी,वे समझ गये कि मामला क्या है। उधर उस भेदिये ने जब देखा कि उसकी बात शायद खुल गई, तो वह जल्दी से पानी लाने के बहाने चला जाने लगा, किन्तु ब्रह्मचारी की आँखों से भला वह कब बचकर जा सकता था। उन्होंने पास में खड़ी भरी बन्दूक उठाई, और धाँय से उस पर गोली चला दी।

आस ही पास कहीं पुलिस के सवार थे, गोली की आवाज सुनते वे लोग भी आ गये। बस फिर क्या था, वह तो एक बकायदा लड़ाई सी हो गई। ब्रह्मचारी के दल के ३५ आदमी मारे गये। पुलिसवालों की संख्या बहुत थी तथा वे हर तरीके के सामान से लैस थे, बड़ी बहादुरी से लड़ने पर भी ये न जीत सके। ब्रह्मचारी, गेंदालाल तथा अन्य साथी ग्वालियर के किले में बन्द हो गये।

"मातृवेदी"

इधर कुछ नौजवान भी गेंदालाल के नेतृत्व में काम कर रहे थे। इस टोली का नाम 'मातृवेदी' था, ये लोग भले घर के लड़के थे, तथा

इनका दल में भर्ती होने का उद्देश्य केवल एक ही था—देशभक्ति। इन लोगों ने भी डाके डाले, किन्तु ग्वालियर के गिरोह की तरह ये डाकू नहीं थे। जब इन लोगों को पता लगा कि गेंदालाल इस प्रकार गिरफ़्तार हो गये, तो उन्होंने गेंदालाल को जेल से भगाने की एक योजना बनाई और तदनुसार काम होने लगा। किन्तु यह षड्यन्त्र फूट गया और गिरफ्तारियाँ हुईं। इन्हीं गिरफ्तारियों का नतीजा मैनपुरी षड्यन्त्र हुआ, सोमदेव नाम का एक नौजवान मुखबिर भी हो गया। उसने अपने बयान में कहा कि गेंदालाल जी इस षड्यन्त्र के नेता हैं, साथ ही यह भी बतलाया कि गेंदालाल जी इस समय ग्वालियर के किले में हे। गेंदालाल जी को इस प्रकार रक्खा गया था कि उनका स्वास्थ्य एक दम चौपट हो गया था।

वे ग्वालियर से मैनपुरी जेल लाये गये, स्टेशन से जेल उन्हें पैदल ले जाया गया। जेल कोई दूर नहीं था, किन्तु इसी बीच में क्षयरोग हो जाने के कारण वे इतने दुबल हो गये थे कि रास्ते में उन्हें कई बार बैठना पड़ा। पं० गेंदालाल जेल में दाखिल होते ही मुकद्दमे की क्या परिस्थिति है समझ गये।

अब उन्होंने सोचना शुरू किया कि क्या होना चाहिये। स्थिति बड़ी विकट थी। उधर ग्वालियर का मुकद्दमा था, इधर मैनपुरी का। या तो फाँसी होती या आजन्म कालेपानी। उन्होंने पुलिसवालों से कहा कि इन बच्चों को क्या मालूम, ये भला क्या मुखबिर बनेंगे, मैं बनूंगा, मैं तो बंगाल तथा बम्बई के सैकड़ों क्रान्तिकारियों को जानता हूँ, मैं चाहूँगा तो सैकड़ों को पकड़ा दूंगा। बस, क्या था पुलिसवाले बहुत खुश हुए, उन्होंने कहा, यह बहुत अच्छा हुआ कि खुद 'गिरोह का सरदार ही मुखबिर बन गया।" गेंदालाल जी को ले जाकर पुलिसवालों ने मुखबिरों में रख दिया। मुखबिर लोग भी दंग रह गये और अभियुक्तगण भी।

एक दिन सबेरे लोगों को पता लगा कि पं० गेंदालालजी मुखबिर हो

गये थे रात को गायब हो गये, साथ ही साथ अपने एक मुखबिर राम नारायण को लेते गये। दौड़-धूप होने लगी, किन्तु गेंदालाल भला क्यों हाथ आते। गेंदालाल रामनारायण को पट्टी पढ़ाकर जेल से भगा ले गये थे, किन्तु वे उसपर एतबार नहीं कर सकते थे। एक दफे जो मुखबिर बन गया उसे साथ में रखना खतरनाक था। वे रामनारायण को लेकर कोटा पहुँचे। जिस बात से गेंदालालजी डरते थे वही हुआ। राम-नारायण ने एकदिन गेंदालाल जी को कोठरी में बन्द कर दिया, और उनका सारा सामान लेकर चलता हो गया। इतनी ही खैरियत हुई कि उसने पुलिस भेजकर उन्हें गिरफ्तार नहीं करवा दिया। गेंदालाल जी तीन दिन तक बिना दाना पानी के उसी बन्द कोठरी में बन्द पड़े रहे। किसी भी प्रकार से अन्त में वे कोठरी में से निकले। उनके बाद वे पैदल चल कर आगरा पहुँचे, किन्तु वहाँ भी दुर्भाग्य ने पीछा न छोड़ा। वहाँ भी उन्हें आश्रय न मिला। जब इस प्रकार कई जगह ठोकरे खाने के बाद भी उन्हें आश्रय न मिला तो वे विवश हो कर अपने घर की ओर चले।

इधर घर वालों का हाल बुरा था क्योंकि पुलिस ने उन्हें बहुत तङ्ग कर रक्खा था। पुलिस वाले यह समझते थे कि गेंदालाल जी कहाँ हैं इसका पता घर वालों को अवश्य होगा। अतः वे उनको हर तरीके से तङ्ग करते थे। घर वाले हर तरीके से परेशान थे, इतने में गेंदालाल जी बहुत ही बुरी हालत में घर पहुँचे। उनको देख कर घर वालों का हाल और भी बुरा हुआ। इतनी घोर विपत्ति में वह अपनी बहादुरी से मुक्त हो आये इस पर खुशी मनाना तो दूर रहा वे उन्हें पकड़ाने की फिक्र करने लगे। एक व्यक्ति से गेंदालाल जी को इस बात का पता लग गया, तो उन्होंने अपने घर वालों से कहा कि आप फिक्र न कीजिये मैं बहुत जल्दी आप का घर छोड़ कर चला जाता हूँ। सारांश यह है कि उन्हें अन्त में घर त्यागना पड़ा।

अन्त में वे किसी तरह लुढ़कते पुढ़कते दिल्ली पहुँचे। पुलिस तो

पीछे थी ही इधर पास एक पैसा नहीं था। साथी तो जेल में थे या भगे हुए। रिश्तेदारों की हालत यह थी कि उन्हें पकड़ाने को तैयार थे। शरीर जवाब दे रहा था, मन में कोई प्रसन्नता नहीं थी क्योंकि जिस क्रान्ति के लिये सर्वस्व बलिदान करके यह सारा खेल रचा गया उसका कहीं पता नहीं था। दल छिन्न भिन्न हो चुका था। बहादुर साथी लम्बी लम्बी सजा के लिये जेलों में प्रतीक्षा कर रहे थे, दूसरे साथी थोड़ी ही परीक्षा में अपने प्रण से डिग ही नहीं गये थे बल्कि अपने मित्रों को फँसाने के लिये अदालत के सामने गवाहियाँ देने को तैयार थे। इस अवस्था में पंडित जी की मानसिक हालत कैसी थी यह कल्पना की जा सकती है। फिर भी जीना जरूरी था, इसलिये उन्होंने एक प्याऊ में नौकरी कर ली। पुलिस की आँखों से बचने के लिये यही सबसे अच्छी नौकरी थी। इधर रोग ने उनको और भी बेकाबू कर दिया। वे समझ गये कि अब इस रोग से बचना कठिन है, फिर ठीक-ठीक इलाज भी होता तो कोई बात थी, उसका तो कोई सवाल ही नहीं उठता था, मुश्किल से पेट चलता था। गेंदालाल जी ने यह सब सोच समझकर अपने एक विश्वस्त मित्र को एक पत्र लिखा। खैरियत यह थी कि ये वाकई मित्र थे, ये पंडित जी की स्त्री को लेकर झट पंडित जी के पास पहुँचे।

रोग यह था कि उन्हें रह रहकर मूर्छा आती थी, स्त्री ने बड़ी सेवा तथा तीमारदारी की, किन्तु वहाँ तो रोग घटने के बजाय बढ़ता नजर आ रहा था। क्या भयानक तथा दर्दनाक दृश्य है। एक देश-भक्त अपनी जन्मभूमि से दूर अपनी अन्तिम शय्या पर लेटा हुआ है। उसके सहयोद्धा मित्र पास नहीं हैं, केवल एक स्त्री उसके पास है, तिस पर तुर्रा यह कि पुलिस पीछे लगी हुई है।

ऐसी अवस्था में जब कि मृत्यु करीब थी उनकी स्त्री रोने लगी। पं० गेंदालाल थोड़ी देर तक अपनी स्त्री की ओर देखते रहे, फिर बोले "तुम रोती हो, रोओ, किन्तु आखिर इस रोने से क्या हासिल! दुःख

तो मुझे भी है। किस बात का मैंने बीड़ा उठाया था और मैंने उसे कितना सिद्ध किया ? मर तो मैं रहा ही हूँ, किन्तु जिस कारण मैं मर रहा हूँ वह पूरा कहाँ हुआ ? सच बात तो यह है उसके पूरे होने की कोई आशा भी नहीं देख रहा हूँ। मैं इस बात को देखकर मर रहा हूँ कि मैंने जो कुछ किया था वह छिन्न भिन्न हो गया है। मुझे केवल इतना ही दुःख है कि माँ के ऊपर अत्याचार करने वालों का बदला नहीं ले सका, जो मन की बात थी वह मन ही में रह गई। मेरा यह शरीर नष्ट हो जायगा, किन्तु मैं मोक्ष नहीं चाहता, मैं तो चाहता हूँ कि बार-बार इसी भूमि में जन्मू और बार-बार इसी के लिये मरूं। ऐसा तब तक करता रहूँ, जब तक कि देश गुलामी की जंजीर से छूट न जाय।"

इसी प्रकार जब भी उन्हें होश आता था ऐसी बात करते थे। जो लोग पंडितजी की मृत्युशय्या के पास थे उनको यह भी डर था कि कहीं पुलिस को पता चल गया कि गेंदालाल जी यहाँ हैं तो सब की फजीहत हो जायेगी, यहाँ तक कि यदि वे मर भी गये तो लाश पर झगड़ा खड़ा होने का डर है। जो कुछ भी हो इन लोगों ने सोच साच कर गेंदा-लाल जी की स्त्री को घर भेज दिया और गेंदालाल जी को सरकारी अस्पताल में भर्ती करा दिया। इस प्रकार पण्डित जी उसी हालत में अकेले मर गये। १६२० के दिसम्बर की २१ तारीख को यह घटना हुई।

षड्यंत्र के दूसरे व्यक्ति

काकोरी षड्यन्त्र में बाद को फाँसी पाने वाले पं० रामप्रसाद बिस्मिल के नाम भी मैनपुरी षड्यन्त्र के सिलसिले में वारंट था, किन्तु उन्होंने ऐसी डुबकी लगाई कि पुलिस वाले खोजते रह गये और अन्त तक उनका पता नहीं लगा। जब १६१४-१८ का महायुद्ध खतम हो गया, और उसके बाद आम मुआफी दी गई, उस समय वे सार्वजनिक रूप से प्रकट हुए।

एक शिवकृष्णजी थे वे तो अब भी फरार हैं, उनको शायद आम मुआफी के अवसर पर भी माफी नहीं दी गई। ये भी उस षड्यन्त्र के प्रमुख नेता थे।

मुकुन्दी लाल जी जिन्हें बाद में काकोरी षड्यन्त्र में आजीवन कालेपानी की सजा हुई थी इस षड्यन्त्र में थे। उनको उस मुकदमे में ६ साल की सजा हुई। मजे की बात यह है कि जब आम मुआफी हुई तो मुकुन्दी लाल जी उसमें शामिल नहीं किये गये, इसमें उन साथियों की गलती बल्कि शरारत थी जो कि जेल में से सरकार के साथ इस आम मुआफी की बातचीत कर रहे थे। उन्होंने अपनी पूरी सजा नैनी में काटी।

दूसरे सजा पानेवालों में पंडित देवनारायण, जो कि इस समय शाहजहाँपुर से एम० एल० ए० हैं, मथुरा के शिवचरण लाल शर्मा तथा आगरा के चन्द्रधर जौहरी थे। शिवचरण लाल के ऊपर काकोरी षड्यन्त्र में वारंट था, किन्तु न मालूम क्यों इन पर से वारंट वापस ले लिया गया।

इसमें सन्देह नहीं कि मैनपुरी षड्यन्त्र भारतवर्ष के क्रांतिकारी आन्दोलन में एक विशेष कड़ी है।

लड़ाई के समय विदेश में भारत के क्रान्तिकारी

बहुत से लोग समझते हैं और कहते फिरते हैं कि क्रान्तिकारियों का संगठन तथा आन्दोलन एक बच्चों का खेल था, किन्तु इस अध्याय से साबित हो जायगा कि यह बात निर्मूल है। ताकि यह न समझा जाय कि हम क्रान्तिकारियों की तारीफ में अतिशयोक्ति कर रहे हैं, इसलिये

हम अपनी ओर से कुछ न लिखकर माननीय जस्टिस रौलट की रिपोर्ट को अक्षरशः उद्धृत करेंगे। वे लिखते हैं;

बर्नहार्डी ने "जर्मनी और आगामी महायुद्ध" नामक अपनी पुस्तक में (१९११ के आक्टोबर में छपी थी) जर्मनों की यह आशा व्यक्त की थी कि बंगाल के हिन्दू जिनमें स्पष्ट रूप से राष्ट्रीय तथा क्रान्तिकारी विचार के हैं हिन्दुस्तान के मुसलमानों से मिल जायँ तो इनके सहयोग से दुनिया में ब्रिटेन की जो धाक और दबदबा है उसकी नींव हिल जायगी।" १९१४ के ६ मार्च को जर्मनी के सुप्रसिद्ध अखबार 'बर्लिनेर टागेब्लाट' ने एक लेख प्रकाशित किया जिसका शीर्षक था "इंगलैंड की भारतीय आफत।" इस लेख में दिखलाया गया था कि भारतवर्ष की स्थिति बड़ी डांवाडोल है, तथा यहां गुप्त समितियां पनप रही हैं और बाहर से उनको मदद मिल रही है। खास करके इस लेख में यह कहा गया था कि कैलिफोर्निया में एक विराट चेष्टा इस अभिप्राय से हो रही थी कि भारतवर्ष को बमों तथा हथियारों से लैस किया जाय।

सैनफ्रैंसिस्को षडयंत्र

१९१७ के २२ नवम्बर को अमेरिका के सैनफ्रैंसिस्को में एक मुकद्दमा चला, इस में यह बात खुली कि १९११ के पहिले हरदयाल ने जर्मन एजटों तथा यूरोप के भारतीय क्रान्तिकारियों की मदद से गदर पार्टी के उद्देश्यों को पूरा करने के लिये एक बड़ा षड्यंत्र किया था, यह षड्यन्त्र कैलिफोर्निया, ओरिगोन तथा वाशिङ्गटन में फैला हुआ था। इस में यह प्रचार किया जाता था कि जर्मनी ही इङ्गलैंड का विनाश करेगा।

जर्मनी में क्राँतिके पुजारी

१९१४ के सितम्बर को एक नौजवान तामिल ने जिसका नाम चम्पकरमण पिल्ले था और जो जुरिख में "अन्तर्राष्ट्रीय प्रो-इंडिया कमेटी" का सभापति था, जुरिख के जर्मन कौंसल को लिखा कि हम

जर्मनी में ब्रिटिश-विरोधी साहित्य के प्रकाशन की अनुमति चाहते हैं। १६१४ अक्टोबर को वे जुरिख छोड़कर बर्लिन चले गये, वहां वे जर्मन परराष्ट्र-दफ़र की देखरेख में काम करने लगे। उन्होने वहाँ पर जर्मन जेनरल स्टाफ से संयुक्त "Indian National Party" भारतीय राष्ट्रीय दल नाम से एक दल स्थापित किया। इसके सदस्यों में "गदर" पत्रिका के संस्थापक हरदयाल, तारकनाथ दास, बरकतुल्ला, चन्द्र चक्रवर्ती, तथा हेरम्बलाल गुप्त भी थे। आखिर में जिन का नाम लिया गया अर्थात् चक्रवर्ती और गुप्त सैनफ्रैंसिस्को के जर्मन-भारतीय षड्यन्त्र में अभियुक्त थे।

बृटिश-विरोधी साहित्य

जर्मनों ने, मालूम होता है, शुरू-शुरू से इस दल के लोगों से केवल इतना ही काम लिया कि वे ब्रिटन के विरुद्ध भड़कानेवाले साहित्य की सृष्टि करें। इस साहित्य का दिल खोल कर उन उन जगहों में प्रचार किया गया जहाँ-जहाँ समझा गया कि इससे ब्रिटेन का नुकसान हो सकता है। बाद को इन लोगों से दूसरे काम लिये जाने लगे। बरकतुल्ला को इसलिये नियुक्त किया गया कि जितने भी हिन्दुस्तानी फौजी आदमी जर्मनों के हाथ में गिरफ्तार हों उनको ब्रिटिश विरोधी बना दिया जाय इस प्रकार आजाद हिन्द फौज की नींव पड़ी। पिल्ले का तो यहाँ तक एतबार किया गया कि जर्मन सेना की, गुप्तलिपि तक बता दी गई, इसको फिर उसने १६१७ में आमस्टरडम में एक अपने एजेन्ट को दिया जो अमेरिका होकर बैंकाक जा रहा था जहाँ कि वह एक छापाखाना खोलता जिससे लड़ाई की खबरें छपतीं और चोरी से श्याम तथा वर्मा की सरहद में फैलाई जाती। हेरम्बलाल गुप्त कुछ दिनों तक अमेरिका में जर्मनी का एजेन्ट था, और हेर बोहम '(Herr Boehm) से यह तय किया था कि वह श्याम में जाय और वहाँ अपने लोगों को शिक्षा देकर वर्मा पर धावा बोल दे। गुप्ता के बाद

चक्रवर्ती अमेरिका के जर्मन एजेन्ट हुए। उसकी नियुक्ति करते हुए जर्मन परराष्ट्र दफ्तर से उसे यह पत्र दिया गया था—

बर्लिन,
४ फरवरी १९१६

जर्मन राजदूत निवास,
वाशिंगटन,

भविष्य में हिन्दुस्तान के मुतल्लिक सब मामले डाक्टर चक्रवर्ती जो कमेटी बनायेंगे केवल उसी की देख-रेख में होंगे। इस प्रकार वीरेन्द्र सरकार तथा हेरम्ब लाल गुप्त जो इस बीच में जापान से निकाल दिये गये हैं भारतीय स्वाधीनता कमेटी के प्रतिनिधि नहीं रहे।

(द,) जिमेरमैन।

भारतवर्ष में जर्मन योजनायें

जर्मन जेनरल स्टाफ की भारत के सम्बन्ध में कुछ स्पष्ट योजनायें थीं। इन्हीं योजनाओं के सम्बन्ध में विशेष कर जहाँ तक भारत के गैरमुस्मिल लोगों से ताल्लुक है हम इस जगह पर आलोचना करेंगे। एक योजना मुसलमानों से ताल्लुक रखने वाली थी। वह सीमाप्रान्त में सीमित थी। दूसरी योजनायें सैनफ्रैंसिस्को की गदर पार्टी तथा बंगाल के क्रान्तिकारी दल के ऊपर निर्भर थीं। दोनों योजनायें शंघाई के जर्मन कौंसल-जनरल की देख-रेख में थी, किन्तु इस मामले में वाशिङ्गटन के कौंसल-जनरल ही सबसे बड़े अधिकारी थे। अगस्त १९१५ में फ्रेंच पुलिस ने यह रिपोर्ट दी कि यूरोप स्थित भारतीय क्रांतिकारियों में आम विश्वास दीख पड़ता है कि थोड़े ही दिन के अन्दर भारतवर्ष में एक प्रबल विद्रोह होगा और जर्मनी उसमें मदद देगा। बाद को जो कुछ लिखा जायगा उससे पता लग जायगा कि ऐसी धारणा के लिये क्या-क्या कारण थे।

नवम्बर १९१४ में पिंगले नामक एक मराठा तथा सत्येन्द्र सेन नामक एक बङ्गाली अमेरिका से सालामिस जहाज से आया। पिंगले

उत्तर भारत में चला गया ताकि वहाँ एक विद्रोह का संगठन किया जा सके। सत्येन्द्र १५६, बहूबजार स्ट्रीट में रहा।

१९१४ के आखिर में पुलिस को यह खबर मिली कि श्रमजीवी समवाय नाम की एक स्वदेशी कपड़े की दूकान के हिस्सेदार रामचन्द्र मजुमदार और अमरेन्द्र चटर्जी, जतीन मुकर्जी, अतुल घोष और नरेन भट्टाचार्य के साथ षड़यन्त्र कर रहे थे कि एक बड़ी तादाद में अस्त्रशस्त्र रक्खे जायँ।

१९१५ के आरम्भ में बङ्गाल के कुछ क्रांतिकारियों ने यह तय किया कि जर्मनों की तथा अन्य प्रान्तों के तथा श्याम के कांतिकारियों की सहायता से एक भारतव्यापी विद्रोह खड़ा किया जाय। इसके लिये तय हुआ कि धन डकैती द्वारा इकट्ठा किया जाय। तदनुसार गार्डन रीच और वेलियाघाटा में डकैतियाँ डालीं गईं, इन दोनों से ४०,०००) रु० क्रांतिकारियों के हाथ लगे। १२ जनवरी और २२ फरवरी को यह डकैतियां की गई थीं। भोलानाथ चटर्जी इसके पहिले ही बैंकक इसलिये भेजे जा चुके थे कि वहाँ के क्रांतिकारियों से सम्बन्ध स्थापित करे। जितेन्द्रनाथ लाहिड़ी मार्च के महीने में यूरोप से बम्बई लौटे, उसने भारतीय क्रांतिकारियों को कहा कि वे एक एजेन्ट बटैविया भेजें। इस पर एक सभा की गई जिसके फलस्वरूप नरेन भट्टाचार्य *बटैविया भेजे गये ताकि वे वहाँ के जर्मनों से बातचीत करे। वह अप्रैल में रवाना हो गया, अपना नाम बदलकर उसने सी मार्टिन रक्खा। उसी महीने में एक दूसरा बङ्गाली अवनी मुकर्जी जापान भेजा गया और इन लोगों के नेता जतीन मुकर्जी बालासोर में जाकर छिप रहे क्योंकि गार्डन रीच और वेलियाघाटा डकैतियों के बारे में बड़ी सख्त जाँच पड़ताल हो रही थी। उस महीने में मावेरिक नामक जहाज कैलिफोर्निया के सैनपेड्रो नामक स्थान से रवाना हुआ।

---

* यही नरेन भट्टाचार्य बाद को एम० एन० राय नाम के मशहूर हुए, स्मरण रहे कि मानवेन्द्र और नरेद्र का एक ही अर्थ है।

बैटेविया पहुँचने पर मार्टिन के साथ जर्मन कौंसल थियोडोर हेलफेरिख की जानपहिचान कराई गई, जिसने बतलाया कि करॉची के लिये अस्त्रशस्त्रों का एक जाहज रवाना हो गया है ताकि भारतवासियों को क्रांति में मदद दे सके। मार्टिन ने इस पर कहा कि यह जहाज बजाय कराची जाने के बङ्गाल जाय। शांघाई के कौंसल जेनरल से इजाजत लेने के बाद यह बात मान ली गई। मार्टिन इसके बाद बंगाल लौट आया, क्योंकि सुन्दरबन के राय मंगल नामक जगह पर जहाज को लेना था। इस जहाज में कहा जाता है सब समेत ३००,०० राइफलें हर एक राइफल के लिए ४०० कार्तूस और २ लाख रुपये थे। इसी बीच में मार्टिन ने हैरी एन्ड सन्स नाम की कलकत्ते की एक बोगस कम्पनी को तार दिया कि "व्यापार ठीक है।" जून के महीने में हैरी एन्ड संस ने मार्टिन को रुपया भेजने के लिये तार दिया, फिर तो हेलफेरिख और हैरी एन्ड संस में जून और अगस्त में खूब लेन देन होती रही। इस प्रकार कोई ४३००० हजार रुपये आये, जिसमें से ३३०००) रुपये क्रांतिकारियों के हाथ लगने के बाद ही पुलिसवालों को पता लगा कि क्या मामला है।

मार्टिन जून के मध्यभाग में हिन्दुस्तान लौट आया, और फिर तो जतीन मुकर्जी, जदूगोपाल मुकर्जी; नरेन्द्र भट्टाचार्य, भोलानाथ चटर्जी और अँतुल घोष मावेरिक के माल को उतारने का बन्दोबस्त करने लगे साथ ही साथ यह भी बन्दोबस्त होने लगा कि इस माल का अधिक से अधिक अच्छा उपयोग किया जाय। यह तय हुआ अस्त्र तीन हिस्सों में तकसीम कर दिया जाय (१) हटिया (इससे बंगाल के पूर्वी जिलों का काम चलता, बरीसाल दल इसको काम में लाते (२) कलकत्ता (३) बालासोर।

बंगाल के क्रांतिकारी समझते थे कि संख्या की दृष्टि से उनके साफ इतने काफी आदमी हैं जो बंगाल की फौजों से समझ ले सकते हैं, किंतु वे बाहर से आने वाली फ़ौजों से डरते थे। इसी उद्देश्य

को दृष्टि में रखकर क्रान्तिकारियों ने यह निश्चय किया कि बंगाल में आने वाली तीन मुख्य रेलों को उनके पुलों को उड़ाकर बेकार कर दिया जाय। यतीन्द्र के ऊपर मद्रास से आने वाली रेल का भार दिया गया, वे बालासोर से इस काम को अंजाम देने वाले थे; भोलानाथ चटर्जी बी० एन० आर० का भार लेकर चक्रधरपुर चले गये; सतीश चक्रवर्ती ई० आई० आर० का पुल उड़ाने के लिये अजय गये। नरेन चौधुरी और फणीन्द्र चक्रवर्ती को यह काम सौंपा गया कि वे हटिया जावें, जहाँ पर एक जत्था इकट्ठा होने वाला था। हटिया से वे इस जत्थे की सहायता से पूर्व बंगाल के जिलों पर कब्जा करने वाले थे, और वहाँ से वे कलकत्ता पर चढ़ आने वाले थे। नरेन भट्टाचार्य तथा विपिन गांगुली के नेतृत्व में कलकत्ता दल पहिले तो कलकत्ते के पास के अस्त्र-शस्त्र तथा अस्त्रागारों पर कब्जा करने वाला था, फिर फोर्ट विलियम पर धावा बोलने वाला तथा सारे कलकत्ते पर अधिकार जमाने वाला था। 'मवेरिक' जहाज पर आने वाले जर्मन अफसरों पर यह भार था कि वे पूर्व बंगाल में रहें, वहाँ फौजें इकट्ठी करे फिर बाकायदा उन्हें सैनिक शिक्षा दें।

इस बीच में जदूगोपाल मुकर्जी 'मावेरिक' के माल को उतारने का बन्दोबस्त कर रहे थे। कहा जाता है कि राय मङ्गल के पास के एक जमींदार से इनकी बातचीत हुई थी, जिसके फलस्वरूप उस जमींदार ने यह प्रतिज्ञा की थी कि माल उतारने के लिये वह आदमी, नावें आदि देगा। 'मावेरिक' रात को पहुँचने वाला था, जहाज की पहिचान यह होती कि उसमें कुछ लालटेनें कुछ खास तरीके से टँगी हुई होतीं। यह समझा जाता था कि १९१५ की पहिली जुलाई तक पहिली किश्त अस्त्र बँट जायेंगे।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि अतुल घोष की आज्ञा के अनुसार कुछ आदमी राय मङ्गल के पास नाव से इसलिये गये थे कि जहाज के माल उतारने में मदद दें। ये लोग कोई दस दिन तक वहीं आसपास

डेरा डाले पड़े रहे, किन्तु जून के अन्त तक भी 'मावेरिक' नहीं पहुँचा था न बैटेविया से कोई सन्देश आया था जिससे कि मालूम होता कि इस प्रकार देर क्यों हो रही है।

इधर तो ये लोग 'मावेरिक' की प्रतीक्षा में बैठे हुए थे उधर बैंकक से एक बङ्गाली ३ जुलाई को यह खबर लेकर आया कि श्याम का जर्मन कौन्सल नाव के जरिये राय मङ्गल में पाँच हजार राइफल, उसके उपयुक्त कार्तूस तथा एक लाख रुपया भेज रहा है। षड्यन्त्र-कारियों ने इस पर यह सोचा कि जो 'मावेरिक' से माल आनेवाला था और नहीं आया, यह उसी की क्षति पूर्ति है; उन्होंने इस सन्देश लाने वाले को वैटेविया होकर बैंकक जाने पर राजी किया, ताकि वह हेलफेरिख से कह सके कि पहिली योजना त्याग न दी जाय बल्कि दूसरी किश्तें सन्दीप बालासोर तथा गोकर्णी में भेजी जायँ। जुलाई में सरकार को रायमगंल में अस्त्र उतारने की योजना का पता लग गया। इसके बाद सरकार चौकन्नी हो गई।

७ अगस्त को खबर पाकर पुलिस ने हैरी एन्ड सन्स के दफ़्तर वगैरह की तलाशी ली और गिरफ्तारियाँ कीं। १३ अगस्त को षड्यन्त्रकारियों में से वैटेविया में हेलफेरिख को हुशियार करते हुए एक तार दिया। १५ अगस्त को मार्टिन उर्फ़ नरेन्द्र भट्टाचार्य और एक दूसरा आदमी हेलफेरिख की परिस्थिति समझने के लिये रवाना हो गये।

४ सितम्बर को बालासोर के यूनिवर्सल एम्पोरियम की (जो हैरी एन्ड सन्स की शाखा थी) तथा २० मील दूर कपटियपाड़ा नामक एक क्रांतिकारियों के अड्डे की तलाशी ली गई। यहाँ पर सुन्दरबन का एक मानचित्र तथा पेनाङ्ग के एक अखबार की वह कटिंग मिली जिसमें 'मावेरिक' जहाज की यात्रा के सम्बन्ध में कुछ छपा था। अन्त तक पाँच बंगालियों के एक जत्थे को घेर लिया गया और इनका

नेता जतीन मुकर्जी तथा इनस्पेक्टर सुरेशचन्द्र मुकर्जी का हत्यारा चित्तप्रिय राय चौधुरी मारे गये।

इस साल "मार्टिन" के बारे में और कुछ भी नहीं मालूम हुआ। अन्त तक ऊबकर हेलफेरिख को तार देने के लिये दो षड्यन्त्र-कारी गोआ गये। २७ दिसम्बर १९३५ को मार्टिन को बैटेविया से एक तार दिया गया जो यों था How doing, no news, very anxious—B. chatterton" इसके फलस्वरूप तहकीकात हुई और दो बंगाली पाये गये, एक तो उनमें से भोलानाथ चटर्जी थे। २७ जनवरी १९१६ को भोलानाथ ने आत्महत्या कर ली।

अन्य योजनायें

अब हम संक्षेप में 'मावेरिक' तथा 'हेनरी एल' नाम के जहाजों का वर्णन करेंगे। ये दोनों जहाज अमेरिका से पूर्वीय देशों के लिये रवाना हुए थे। "एस एस मावेरिक" स्टैंडर्ड आयेल कम्पनी का तेल ढोने वाला स्टीमर था, जिसको सैनफ्रैंसिस्को की एक जर्मन कम्पनी एफ० जेकसेन कम्पनी ने खरीदा था। कैलिफोर्निया के सैन पेड्रो नामक जगह से १९१५ के २२ अप्रैल को वह बिना कुछ माल लाये रवाना हुआ। इन पर खलासी आदि सब मिलाकर २५ जहाज के नौकर थे, इस में पाँच कथित ईरानी थे। इन्होंने अपने को खानसामा बताकर दस्तखत किया था। असल में ये पाँचों व्यक्ति भारतीय थे, जर्मन दूतावास का फान ब्रिन्केन तथा "गदर" नामक अखबार में हरदयाल के बाद सर्वेसर्वा रामचन्द्र ने इनको भेजा था। इनमें से एक हरि सिंह पंजाबी के पास बक्सों में चन्द "गदर" साहित्य था। मावेरिक पहिले तो दक्षिण कैलिफोर्निया के सैन जोसे डेल कैबो में गया, फिर वहाँ से उसे जावा के अंजेर (Anjer) की आज्ञा मिल गई। वह फिर सोकोररो द्वीप के लिये रवाना हो गया, जो मेक्सिको से ६०० मील पश्चिम में था। यहाँ पर वह "ऐनि लारसेन" नामक एक Schooner जहाज से मिलने वाला था। इस जहाज पर

टौशेर नामक एक जर्मन के द्वारा न्यूयार्क में खरीदे हुए अस्त्रशस्त्र थे, सैन डिगो नामक जहाज पर ये अस्त्रशस्त्र चढ़ाये गये थे। मावेरिक के कप्तान को यह आज्ञा थी कि राइफलों को एक खाली तेल की टंकी में भर दे, फिर ऊपर से उसको तेल से भर दे, और एक दूसरी टंकी में गोली वगैरह भर ले, और जरूरत पड़े तो जहाज को डुबा दे। इत्तिफाक ऐसा हुआ कि ऐनिलारसेन से मावेरिक की भेंट नहीं हुई; और कुछ दिन इन्तजार करने के बाद मावेरिक होनोलूलू होते हुए जावा रवाना हो गया। जावा में डच सरकार की ओर से उसकी तलाशी हुई, और वह खाली पाया गया। ऐनी लारसेन घूमते घामते सन् १५ के जून के अन्त तक वाशिंग्टन के होकियाम नामक स्थान में पहुँचा, जहाँ अमेरिकन सरकार ने इस सारे सामान को जप्त कर लिया। वाशिंग्टन स्थित जर्मन राजदूत कौन्ट लर्नसडोर्फ ने अमेरिकन सरकार से कहा कि यह माल जर्मन राष्ट्र का है, किन्तु अमेरिकन सरकार ने यह बात नहीं मानी।

हेलफेरिख ने बैटेविया में ठहरे हुए मावेरिक के खलासियों की खबरदारी की, ताकि उनको कोई नुकसान नहीं पहुँचे, फिर उसी जहाज में उन्हें अमेरिका वापस भेज दिया। अब की बार इसमें हरि सिंह के बजाय "मर्टिन" (एम० एन० राय) गये, इस प्रकार मार्टिन अमेरिका भाग गये। अमेरिका में पहुँचने पर मार्टिन अमेरिकन सरकार द्वारा गिरफ्तार कर लिये गये।

हेनरी० एस०

एक दूसरा जहाज़ "हेनरी० एस" भी इसी प्रकार जर्मन भारतीय षड्यन्त्र के सिलसिले में लगा था। वह मैनिला से शंघाई के लिये रवाना हुआ, किन्तु चुंगीवालों ने इस का पता पा लिया कि मामला यों है। बस उन्होंने जहाज की रवानगी के पहिले जहाज का सब माल उतरवा लिया। जब ऐसा हुआ तो वह बजाय शंघाई के पोन्टि आनाक रवाना हुआ। इत्तफाक ऐसा हुआ कि रास्ते में उसका मोटर बिगड़

गया और उसे सेलिबिस के एक बन्दरगाह में ठहरना पड़ा। उस जहाज पर दो जर्मन-अमेरिकन थे, एक वेड़े (Wehde) और दूसरा बोएम (Boehm। मालूम होता है कि इनकी योजना कुछ ऐसी थी कि जहाज बैंकक जाता और कुछ अस्त्रशस्त्र उतार देता जो श्याम-बर्मा के सीमान्त में पाकोह सुरंग में छिपा दिये जाते, और बोएम का यह काम था कि वह सरहद पर हिन्दुस्तानियों को फौजी शिक्षा देता ताकि वे बर्मा पर हमला के लिये प्रस्तुत हों। बोएम बैटेविया से आते हुए सिंगापुर में गिरफ़्तार हुआ, सेलिबिस से वह बैटेविया गया था। वह चिकागो स्थित हेरम्बलाल गुप्त की आज्ञा के अनुसार मैनिला में 'हेनरी० एस' पर सवार हुआ था, इसके अतिरिक्त इन्हें मैनिला के जर्मन कौंसल से यह आज्ञा मिली थी कि वे बैंकक में ५०० रिवालवर उतारें, और ५००० में से बाकी चटगांव भेज दिया गया। यह बतलाया गया था कि इन रिवालवरों में राइफल का कुन्दा है, इससे जान पड़ता है कि वे मौजेर पिस्तौल थे।

इस बात को विश्वास करने के लिये कारण है कि जब 'मावेरिक' की योजना असफल हो गई, तब शंघाई के कौन्सल-जनरल ने अस्त्रशस्त्रों के साथ दो और जहाजों को बङ्गाल की खाड़ी में भेजने का प्रबन्ध किया, एक रायमंगल को दूसरा बालासोर में। एक पर ३०००० राइफलें, ८० लाख कार्तूस, २००० पिस्तौल, हाथ वाले बम, विस्फोटक और दो लाख रुपया ले जानेवाला था, दूसरे में १०००० राइफलें, दस लाख कार्तूस, बम आदि जानेवाला था। 'मार्टिन' ने बैटेविया के जर्मन कौन्सल को बताया कि अब राय मंगल में कोई जहाज को उतारना ठीक नहीं होगा, इसके बजाय हटिया में ही उतारना ठीक होगा। इस स्थान परिवर्तन के सम्बन्ध में हेलफेरिख के साथ आलोचना के बाद यह योजना बनाई गई:—

तय हुआ कि हटिया के लिये जहाज सीधा शंघाई से आयेगा। बालासोर के लिये जो जहाज जानेवाला था वह एक जर्मन स्टीमर होने-

वाला था जो एक डच बन्दरगाह में था और जो कि बीच समुद्र में अस्त्रशस्त्र लादनेवाला था। एक तीसरा स्टीमर जो एक प्रकार से लड़ाई का जहाज था अस्त्रशस्त्र लेकर अन्डमन जानेवाला था, वहां वह पोर्ट ब्लेयर पर हमला करता, सब अराजकवादियों, कैदियों तथा सिङ्गापुर रेजिमेंट के विद्रोहियों को छुड़ाता और अपने में चढ़ाकर रंगून जाता और उस पर हमला बोल देता। बंगाल में षड्यन्त्रकारियों को मदद देने के लिये एक चीनी ६६००० गिल्डर* तथा एक पत्र लेकर पेनॉग में एक बंगाली को देनेवाला था। यदि ये न मिलते तो वह कलकत्ता के दो पते में से किसी पते पर जाकर यह धन तथा पत्र देता। यह पत्र तथा धन अपनी जगह पर नहीं पहुँच सके क्योंकि यह रास्ते में ही धन के साथ गिरफ्तार हो गया।

इसके साथ ही वह बंगाली जो 'मार्टिन' के साथ बटैविया गया था शंघाई में वहां के जर्मन राजदूत से बातचीत करने के लिये भेजा गया था, इसके बाद वह हटिया वाले जहाज से लौटनेवाला था। काफी मुश्किलों से वह शंघाई पहुँचे और वहीं गिरफ्तार हो गये।

इस बीच में जतीन मुकर्जी की मृत्यु के बाद कलकत्ता से षड्यन्त्रकारी चन्दननगर में जाकर छिप रहे। शंघाई के बंगाली की गिरफ्तारी के बाद, मालूम होता है, जर्मनों ने बङ्गाल की खाड़ी में हथियार पहुँचाने की योजना छोड़ दी।

वेवेडे बोएम और हेरम्बलाल गुप्त पर चिकागो में सरकार की ओर से मुकदमा चला और उनको सजा हुई। नवम्बर १९१७ में सैनफ्रैंसिस्को मुकदमा चला, इसमें भी लोगों को सजायें हुईं।

शंघाई में गिरफ्तारियाँ

अक्टूबर १९१५ में शंघाई की म्युनिसिपल पुलिस ने २ चीनियों को गिरफ्तार किया, इनके पास १२९ अटोमैटिक पिस्तौल तथा २०८३० गोलियां निकलीं। ये चीजें उनको नीलसेन नामक एक जर्मन ने दीं थीं, ये लोग इसे जहाज के तख्ते के नीचे छिपाकर ले जानेवाले थे।

---

*एक प्रकार की मुद्रा

जिस पते पर वे यह माल पहुँचाने वाले थे वह था अमरेन्द्र चटर्जी, श्रमजीवी समवाय कलकत्ता। अमरेन्द्र उन षड्यन्त्रकारियों में से था जो चन्दननगर भाग चुका था।

नीलसेन का पता ३२, यॉंगट्सिपू रोड जो इन चीनियों के मुकदमे में आया था अवनी के रोजनामचे में मिला था। अवनी क्रांतिकारी समिति की ओर से जापान भेजा गया था, वह जब जापान से देश की ओर लौट रहा था तभी सिंगापुर में गिरफ्तार हुआ था। यह विश्वास करने के लिये कारण है कि या तो यह या दूसरी इसी किस्म की योजनायें रासविहारी वसु की सलाह से बनी थीं। रासविहारी इन दिनों नीलसेन के मकान में ही टिके हुए थे। रासविहारी जिन पिस्तौलों को भारतवर्ष भेजना चाहते थे वे माई ताह औषधालय, चाओ तुङ रोड पर एक चीनी द्वारा पाये गये थे, नीलसेन के पतों में यह एक पता था। एक दूसरे क्रांतिकारी जो उस मकान में रहते थे उनका नाम था अविनाश राय। यह सख्स शंघाई के जर्मन भारतीय षडयंत्रों में लिप्त था जिसका उद्देश्य चोरी से भारतवर्ष में अस्त्रशस्त्र भेजना था, इन्होंने अवनी के जरिये चन्दननगर में मोतीलाल राय को एक सन्देश भेजा था जिसमें यह कहा गया था कि सब ठीक है और कोई योजना ऐसी निकाली जाय, जिससे अविनाश राय भारत में निर्विघ्नता से पहुँच जायँ। अवनी के नोटबुक में मोतीलाल राय के अलावा चन्दननगर कलकत्ता, ढाका और कोमिल्ला के कुछ जाने हुए क्रांतिकारियों का पता निकला। और चीजों के साथ उस नोटबुक में श्याम के पकोह नामक स्थान के निवासी अमर सिंह इंजिनियर का पता निकला। हेनरी एस० नामक जहाज के इसी पकोह में कुछ अस्त्रशस्त्र उतारे जाने वाले थे। अमरसिंह को बाद में मॉंडले षडयंत्र में फाँसी की सजा दे दी गई।

इतना लिखने के बाद रौलट साहब लिखते हैं "जर्मनों के इन सारे षड्यंत्रों से यह पता चलता है कि क्रांतिकारीगण बड़ी आशायें रखते थे किन्तु जर्मन लोग उस आंदोलन की रूप रेखा से बिलकुल अपरिचित थे जिसको वे उपयोग में लाना चाहते थे।"

बिहार व उड़ीसा में क्रान्तिकारी आन्दोलन

बिहार व उड़ीसा प्रांत अब अलग अलग हो गये हैं, किन्तु तथा-कथित प्रान्तीय स्वराज्य के पहले दोनों प्रान्त एक थे। बिहार-उड़ीसा प्रान्त के एक तरफ बंगल तथा दूसरी तरफ संयुक्त प्रान्त होने पर भी क्रान्तिकारी आंदोलन की दृष्टि से यह भूमि ऊसर साबित हो चुकी है, विशेष कर शुरू के युग में यह बात और भी सत्य थी। जिस युग का बात हम लिखने जा रहे हैं उस युग में बङ्गाल और बिहार अलग हो चुके थे, सन् १६०५ तक ये दोनों प्रान्त एक थे। बिहार में क्रान्तिकारी आन्दोलन पनपा नहीं, इनकी वजह मैं यह समझता हूँ कि बिहार में अंग्रेजी शिक्षित मध्यवित्त श्रेणी की उतनी हद तक उत्पत्ति नहीं हुई, इसलिये न तो वे समस्यायें थीं न उनके वे समाधान। बिहार बङ्गाल के बहुत पास ही था इसलिए अँग्रेजी राज्य के विस्तार के साथ साथ बहुत से बङ्गाली बृटिश साम्राज्यवाद के सहायक तथा गुलाम बन कर बिहार में आकर बस गये, इनकी हालत बङ्गाल की उसी श्रेणी के लोगों से अच्छी थी, इसलिए उनको राजनैतिक आन्दोलन से कोई सरोकार न था। दूसरी ओर इन्हीं लोगों की वजह से बिहार की मध्यम श्रेणी पनप न सकी, एक तो वे शिक्षा में इन बङ्गालियों से पिछड़े हुए थे, दूसरे ये बङ्गाली मँजे हुए गुलाम थे, बृटिश साम्राज्यवाद इनको एतबार करता था। गदर के तूफानी दिनों में इनकी परीक्षा हो चुकी थी, इसलिए वे ज्यादा आसानी से नौकरी में ले लिये जाते थे। अप्रासंगिक होते हुए भी यह कह देना आवश्यक है कि आज दिन बिहार में जो बङ्गाली-बिहारी समस्या है वह केवल बिहारी तथा बिहार में बसे हुए इन बङ्गालियों के अर्थात मध्यवित्त श्रेणी के आपसी झगड़े से उद्भूत है, इनमें झगड़ा सिर्फ इतना है कि बिहार के बङ्गाली कहते हैं हम खानदानी गुलाम हैं

हमें पहिले गुलामी मिलनी चाहिये, किन्तु बिहार की मध्यवित्त श्रेणी कहती है कि नहीं यह कोई वजह नहीं, हम लोगों ने भी गुलामी करने की अच्छी तालीम पाई है, हमें गुलामी पहिले मिले ! स्मरण रहे यह झगड़ा केवल नौकरियों तथा टुकड़ों का झगड़ा है, जनता से इसका कोई सम्बन्ध नहीं, किन्तु मध्यम श्रेणी के ये पढ़े लिखे गुलामी के लिये लालायित बङ्गाली और बिहारी दूसरी श्रेणियों की सहानुभूति प्राप्त करने के लिये कैसे कैसे नारे दे रहे हैं, कैसी बेशर्मी से वे बिहार और बङ्गाल की संस्कृति की कसमें खा रहे हैं यह देखने की बात है।

केनेडी हत्याकांड

बिहार की भूमि पर जो सब से पहिला क्रान्तिकारी विस्फोटन हुआ वह केनेडी हत्याकांड था किन्तु इससे बिहार निवासियों से कोई ताल्लुक नहीं था। बङ्गाल में किंग्स फोर्ड नामक एक जज थे, इनकी कलम से सैकड़ों देशभक्तों को सजा हो चुकी थी, कहा जाता है कि राजनैतिक अभियुक्त को सजा देने में ये महाशय इस्तगासे से कहीं अधिक जोश दिखलाते थे, कोई राजनैतिक मामला इनकी अदालत से नहीं छूटता था। लोगों में इन सब बातों से निराशा फैल रही थी, दल ने निश्चय किया कि इस प्रकार आंतकवाद को सिर नीचा कर सहते जाना गलत है, तदनुसार यह निश्चय हुआ कि आंतकवाद का जवाब आंतकवाद से दिया जाय। यहाँ पर एक बात समझ लेने की जरूरत है कि भारतीय क्रांतिकारियों ने आंतकवाद से कभी काम नहीं लिया, इन्होंने तो निरन्तर चलने वाला सरकारी आंतकवाद का जवाब अपनी क्षीण शक्ति के अनुसार एक आध छिटपुट हमले से देने की चेष्टा की। इस दृष्टि से वे आंतकवादी नहीं थे, बल्कि आंतकवादी थी यह सरकार, भारतीय क्रांतिकारियों को अधिक से अधिक कहा जाय तो प्रत्यातंकवादी (counter-terrorist) कहा जाय। रहा यह कि इन छिटपुट हमलों से बनता बिगड़ता क्या है, इसके उत्तर में भारतीय क्रांतिकारी आयरिश वीर टेरेन्स मैकस्विनी के,

जिसने ७२ दिन तक अनशन कर प्राण दे दिये, इस वचन को उद्धृत करते हैं:—

Any man who tells you that an act of armed resistance--even if offered by ten men only—even if offered by men armed with stones—any men who tell you that such an act of resistance is premature, imprudent or dangerous, any and every such man should be spurned and spat at, For remark you this and recollect it that somewhere and by somebody a beginning must be made and that the first act of resistance is always and must be ever premature imprudent and dangerous.

भावार्थ :—

"कोई भी व्यक्ति जो कहता है कि सशस्त्र विरोध (चाहे दस ही व्यक्ति के द्वारा किया गया हो, चाहे उनके पास पत्थर के सिवा कोई शस्त्र नहीं हो) असामयिक, अपरिणामदर्शी तथा खतरनाक है इस योग्य है कि उसका तिरस्कार किया जाय तथा उस पर थूक दिया जाय, क्योंकि किसी न किसी के द्वारा कहीं न कहीं किसी न किसी तरह विरोध शुरू होगा ही, और वह पहला विरोध हमेशा असामयिक, अपरिणामदर्शी तथा खतरनाक प्रतीत होगा।"

मैं इस विषय पर बाद को फिर आलोचना करूँगा, अभी सिर्फ क्रांतिकारियों के दृष्टिकोण को पाठकों के सन्मुख रख दिया।

खुदीराम तथा प्रफुल्ल

दल ने मिस्टर किंग्सफोर्ड को सजा देने के लिये दो नवयुवकों को तैनात किया। एक का नाम था खुदीराम बोस तथा दूसरे का नाम था प्रफुल्लकुमार चाकी। इस बीच में मिस्टर किंग्सफोर्ड का तबादला मुजफ्फरपुर हो गया था। यह निश्चित हुआ कि खुदीराम तथा प्रफुल्ल

जाकर मुजफ्फरपुर में ही मिस्टर किंग्सफोर्ड पर चढ़ाई करें, ये दोनों एक तो कम उम्र थे, खुदीराम की उम्र केवल सत्रह साल की थी, दूसरे ये मुजफ्फरपुर में नये थे, फिर भी इन्होंने हिम्मत नहीं हारी, और एक धर्मशाले में टिककर मिस्टर किंग्सफोर्ड का पता लगाने लगे। कुछ दिनों के अथक परिश्रम के बाद उनको पता लगा कि मिस्टर किंग्सफोर्ड किस रंग की गाड़ी में किधर कब घूमने निकलते हैं। उन्होंने निश्चय किया जब इसी प्रकार मिस्टर किंग्सफोर्ड घूमने निकलें तो उन पर बम डाला जाय, और इस प्रकार अपना ध्येय पूरा किया जाय। इन नौजवानों को हम नृशंस हत्यारा न समझें क्योंकि जिस समय उन्होंने निश्चय कर लिया कि वे मिस्टर किंग्सफोर्ड पर बम डालेंगे उसी समय उन्होंने यह भी समझ लिया था कि उनकी नन्हीं सी गर्दन होंगी और फाँसी की रस्सियां होंगी। नौजवानी थी, अरे अभी तो सब उमंगें विकसित भी नहीं हो पाई थीं, फूल अभी खिला नहीं था, कली के अन्दर गन्ध कैद पड़ी हुई रो रही थी कि इन्होंने तय कर लिया कि यह बिना खिले ही मुरझा जायेगी। देश की बलिवेदी को इस बलि की जरूरत थी, बस वे तैयार हो गये।

३० अप्रैल १६०८

३० अप्रैल की रात थी, कोई आठ बजे थे। एक गाड़ी सरकती हुई चली आ रही थी, हाँ इस गाड़ी का रंग वही था जो मिस्टर किंग्सफोर्ड की गाड़ी का था। खुदीराम बोस तथा प्रफुल्ल चाकी ने जो कहीं अँधेरे में क्लब के पास प्रतीक्षा कर रहे थे बड़ी सतर्कता से इस गाड़ी की ओर देखा, हां वह वही गाड़ी थी, उन्होंने अपने बम को सम्हाल लिया, और गाड़ी मार के अन्दर आते ही बम चला दिया। दुर्भाग्यवश उस गाड़ी में वे जिसे मारना चाहते थे वे नहीं थे, बल्कि दो अंग्रेज रमणियां थीं। एक श्रीमती केनेडी, एक कुमारी केनेडी, दोनों वहीं ढेर हो गईं।

खुदीराम की गिरफ्तारी

बम फेंककर ही खुदीराम भाग निकले। इधर पुलिस को खबर लगते ही सारा शहर घेर लिया गया, और तलाशियों की धूम मच गई। खुदीराम रात भर भाग कर मुजफ्फरपुर से पच्चीस मील की दूर पर वेनी पहुँचे, यहाँ सबेरे के समय भूख से परेशान हालत में एक बनिये की दूकान पर लाई चने की तलाश पर गये थे। वहां उन्होंने लोगों को कहते सुना कि मुजफ्फरपुर में दो मेमें मारी गईं हैं, और मारनेवाले भाग निकले हैं। इस बात को सुन कर कि किंग्सफोर्ड नहीं मारा गया है, और उसकी जगह पर दो मेमें मारी गईं खुदीराम को इतना आश्चर्य तथा क्षोभ हुआ कि एक चीख उसके गले से निकल पड़ी। उसके बाल अस्तव्यस्त हो रहे थे, चेहरे पर हवाइयां उड़ रही थीं, एक भयानक दुर्घटना की छाप उसके चेहरे पर थी। लोगों ने जो खुदीराम की चीख सुनी और खुदीराम के अस्तव्यस्त चेहरे की ओर देखा तो उन्हें एकाएक शक हो आया कि हो न हो यही हत्यारा है, बस लोग उसे पकड़ने को दौड़ पड़े। जनता को तो इस काम से कोई सहानुभूति नहीं थी, इसके साथ ही प्रलोभन बहुत से थे, ग़दर में एक एक अंग्रेज को जिलाने पर कैसे एक-एक ज़िला इनाम में मिला था यही बल्कि लोगों को याद थी। खुदीराम सहज में आत्मसमर्पण करने वाला नहीं था, उसके पास एक गोली से भरी पिस्तौल थी, किन्तु वह उसका नाहक़ उपयोग नहीं करना चाहता था। वह दौड़ा, उसके पीछे पीछे जनता दौड़ी। यह कितना अजीब दृश्य था, जिस जनता के राज्य लाने के लिये खुदीराम ने यह महान व्रत लिया था, वही उसको पकड़ कर साम्राज्यवाद के जल्लादों के हाथ सौंपने जा रही थी।

अन्ततक खुदीराम पकड़ लिया गया। साम्राज्यवाद के अगणित भाड़े के गुंडों से यह नन्हा सा बालक कब तक बचता? पुलिस के सिपाहियों ने उसे पकड़कर मुजफ्फरपुर भेजा दिया। अब इसके बाद

भारत में सशस्त्र क्रांति-चेष्टा का रोमांचकारी इतिहास

श्री खुदीराम बोस
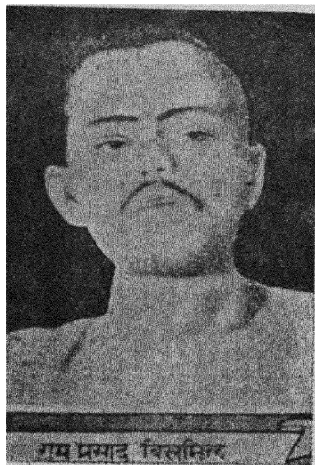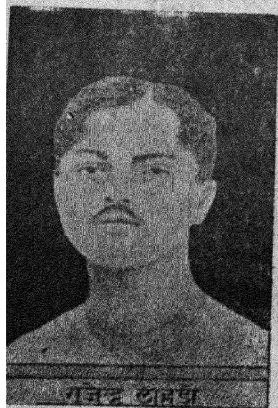
काकोरी के शहीद

का इतिहास वही है जो सब शहीदों का है, न्याय का पर्दा रचा गया, फाँसी सुनाई गई, फिर एक दिन दे दी गई।

प्रफुल्ल चाकी

खुदीराम तो वेनी पहुँचे इधर उनके साथी प्रफुल्ल चाकी समस्ती-पुर पहुँचा, किन्तु साम्राज्यवाद का जाल ऐसा सुविस्तृत है कि वहाँ भी उसे दुर्भाग्य ने आ घेरा। जिस डब्बे में प्रफुल्ल चाकी बैठा था, उसमें एक दारोगा जी भी बैठे थे। ये मुज़फ़्फ़रपुर के हत्याकांड के विषय में सुन चुके थे, इन्होंने जो प्रफुल्ल को देखा तो इनको सन्देह हुआ। दारोगा ने पहिले मुजफ्फरपुर पुलिस को तार से इत्तला दीं, फिर हुलिया मालूम कर दो तीन स्टेशन बाद उसको गिरफ़्तार करना चाहा, किन्तु प्रफुल्ल भी इसके लिये तैयार था। उसने अपनी पिस्तौल निकाली, और घोड़ा दबाकर एक गोली उस व्यक्ति को मारी जो उसे पकड़ने आ रहा था, किन्तु वार खाली गया। अब जब कि ऐसी हालत हो गई, तो प्रफुल्ल चाकी ने पिस्तौल की नली का रुख बदल दिया, और अपने को ही गोली मार दी। प्रफुल्ल चाकी वहीं मुरझा कर गिर पड़ा, दारोगा जी हाथ मलते रह गये। दारोगा जी का नाम था नन्दलाल बनर्जी। नन्दलाल बनर्जी को बहुत सम्भव है सरकार से इस खून के लिये कुछ इनाम मिला हो, किन्तु क्रान्तिकारी दल की ओर से भी उन्हें कुछ मिला। कुछ दिन बाद नन्दलाल कलकत्ते की एक सड़क पर दिनदहाड़े मार डाले गये, बंगाल के क्रान्तिकारियों ने प्रफुल्ल चाकी का तर्पण इस प्रकार नन्दलाल के शोणित से किया।

सन् १६०८ का ज़माना था, आज की तरह मोटरों पर तिरङ्गा झंडावाला युग वह नहीं था, वन्देमातरम् कहने पर कोड़ों की मार पड़ती थी, ऐसे युग में खुदीराम का यह बम—एक गुमराह लक्ष्यभ्रष्ट बम ही सही साम्राज्यवाद की आँखों में कितनी बड़ी धृष्टता थी। यों तो साम्राज्यवाद के तरकश में बहुत से अस्त्र थे, किन्तु इस अपराध के लिये केवल एक ही सजा थी, मौत, जल्लाद के हाथ की मौत।

देश में वकीलों की कमी नहीं थी, स्वयं कांग्रेस एक वकीलों की गुट थी, किन्तु खुदीराम के लिये कोई वकील नहीं मिला। केवल एक कालीदास बोस खुदीराम की ओर से पैरवी करने के लिये तैयार हुए, किन्तु खुदीराम को वकीलों की जरूरत क्या थी, उसने तो स्वीकार कर लिया कि उसी ने बम फेंका था। जज ने बोस को फाँसी की सजा दी, ११ अगस्त को खुदीराम को फाँसी दे दी गई।

यह एक दिलचस्प बात है कि जिस जनता ने नासमझीवश खुदीराम को पकड़ा दिया था, उसी जनता ने खुदीराम की फाँसी के बाद उन्हें एक शहीद की इज्जत दी, बात यह है इस बीच में जनता जान चुकी थी कि यह घूँघराले बाल वाला, बड़ी-बड़ी आँखोंवाला किशोर कौन है। खुदीराम की धुँधुआती चिता के चारों ओर एक विराट जनसमुदाय था, लोगों के सिर पर उस समय अहिंसा का भूत नहीं था, लोग जी खोलकर अपने प्यारे शहीद का अभिनन्दन कर रहे थे।

आखिर चिता भी जल चुकी, खुदीराम की देह उसमें भस्मीभूत हो चुकी, किन्तु जनता को अपने प्यारे शहीद की स्मृति प्यारी थी, वह झपटी उसकी राख के लिये। किसी ने उसकी ताबीज बनवाई, किसी ने उसको सिर से मला, स्त्रियों ने उसे अपने स्तन पर मला। एक स्वर्गीय दृश्य था, और यह क्या? हजारों आदमी एक साथ फूट फूट कर रो रहे थे, कोई आँसू पोंछता था, कोई गम्भीर बन गया था। इस सार्वजनिक शोक को मैं एक दिव्य चीज समझता हूँ। ऐतिहासिक दृष्टि से भी इसका कम महत्व नहीं है, यह बात सच है कि इन सर्वस्वत्यागी अलमस्तों ने जनता को साथ में नहीं लिया था, किन्तु इनके महान त्याग तथा फाँसी को एक खेल समझने की मनोवृत्ति ने जनता को इनकी ओर खींच लिया। लोरियों में, कहानियों में, किम्बदन्तियों में इन लोहे की रीढ़वालों का प्रवेश हो गया, सैकड़ों अखबारों के जरिये से एक दल वर्षों में जितना जनता

में प्रविष्ट नहीं हो पाता था, ये अलमस्त एक फाँसी से एक दिन के अन्दर उससे कहीं ज्यादा जनता के दिल में घर कर लेते थे। हिन्दुस्तान में सैकड़ों दल वर्षों से काम रहे हैं, जिनमें से कुछ के प्रचार कार्य का ढंग बिलकुल आधुनिक है। जहां देखों वे अपने आदमियों को सभा-सोसाइटियों में सभापति करके बुलाते है, बढ़ाते हैं। किन्तु फिर भी उनका नाम जनता तक उतना नहीं पहुँच सका, यहां पर एक सोचने की बात है। अस्तु।

लोकमान्य तिलक और खुदीराम

खुदीराम का अभिनन्दन केवल आम जनता ने ही नहीं किया, बल्कि गान्धीजी के पहिले भारत के एकमात्र समझदार सार्वजनिक नेता लोकमान्य तिलक ने स्वयं इस कांड पर दो लेख लिखे। रौलट साहब ने लिखा है कि ये लेख "केसरी" में मई और जून में प्रकाशित हुए थे तथा इनमें जनताविरोधी अफसरों को हटाने के लिये बम की प्रशंसा की गई थी। आजकल के हिंसा के भूत से डरे हुए अहिंसावादी कांग्रेसजनों को शायद यह सुनकर 'मिरगी' आजावे कि लोकमान्य को इन्हीं लेखों के कारण छै साल की सजा मिली थी।

२२ जून की मराठी 'केसरी' में जो सम्पादकीय प्रकाशित हुआ था, उसमें से कुछ हिस्सा रौलट साहब ने उद्धृत किया है, वह यों है—

"१८९७ की जुबिली रात को मिस्टर रैंड की हत्या के बाद से मुजफ्फर के इस धड़ाके तक प्रजा के हाथों से कोई भी ऐसा काम नहीं हुआ जो अफसर वर्ग के ध्यान को हमारी ओर अच्छी तरह खींचता। १८९७ की हत्याओं में और इस धड़ाके में बहुत ही प्रभेद है। साहस तथा अच्छी तरह अपने काम को अंजाम देने की दृष्टि से देखा जाय तो छप्पेकर भाइयों के काम को बंगाल के बम पार्टी के लोगों के काम से श्रेष्ठतर मानना पड़ेगा। यदि उद्देश्य तथा उपाय (बम) को देखा जाय तो बंगालवालों को श्रेष्ठतर मानना पड़ेगा। न तो छप्पेकर-बन्धुओं ने न बम फेंकनेवाले बंगालियों ने ये काम अपने ऊपर किये गये अत्याचारों के

बदलास्वरूप, वैयक्तिक झगड़े या मनमुटाव के फलस्वरूप किये। ये हत्यायें दूसरी हत्याओं से बिलकुल दूसरी तरह की हैं क्योंकि इन हत्याओं के करने वालों ने अत्यन्त उच्च भावुकता के वशवर्ती होकर किया था। यद्यपि कुछ हद तक इन दोनों क्षेत्रों में की गई हत्याओं का उद्देश्य एक था, किन्तु फिर भी मानना पड़ेगा कि बंगाली बम का उद्देश्य कुछ अधिक सूक्ष्म था। १८६७ में पूनानिवासियों को ताऊन के बहाने खूब सताया गया था, इसी अत्याचार के बदले में मिस्टर रैंड मारे गये थे, इस लिये यहीं कहा जा सकता कि यह हत्या निरवच्छिन्नरूप से(exclusively) राजनैतिक थी। यह शासन-पद्धति ही खराब है और जब तक कि एक एक अफसर को चुन चुन कर डराया न जाय तब तक पद्धति नहीं बदल सकती, इस किस्म के महत्वपूर्ण तथा विस्तृत दृष्टिकोण से छप्पेकर भाइयों ने किसी बात को नहीं देखा था। उनका दृष्टिकोण मुख्यतः ताऊन के अत्याचारों तक सीमित था। मुजफ्फरपुर वालों की बात कुछ और है, बंगभंग के कारण ही उनकी दृष्टि में यह विस्तृति संभव हुई थी, इसके अतिरिक्त पिस्तौल या तमंचा एक पुरानी चीज है, किन्तु बम पाश्चात्य विज्ञान का आधुनिक तम आविष्कार है। फिर भी एक आध बमों से किसी सरकार की सामरिक शक्ति नहीं विनष्ट होती, बम से कोई सेना नहीं खतम हो जाती न सामरिक शक्ति का कोई खास नुकसान ही होता है, बम से केवल इतना ही हो सकता है कि सरकार की दृष्टि इन अत्याचारों की ओर जाती है जो कि इन बमों को जन्म देती हैं।"

ऊपर जो कुछ उद्धृत किया गया, उस पर टीका करने की आवश्यकता नहीं, आंतकवाद से जन-क्रांति नहीं हो सकती यह तो इन लेख के लेखक भी मानते हैं, किन्तु फिलिस्तीन में होने वाले अरब आतंकवाद तथा उसके फलस्वरूप ब्रिटिश परराष्ट्र नीति के बदलते हुए रुख को देखकर कौन इतिहास का विद्यार्थी कह सकता है कि आतंकवाद बेकार जाता है!

"काल" नामक एक मराठी अखबार ने मुजफ्फरपुर की हत्या के बारे में एक लेख लिखा। इस लेख में लिखा गया था कि "लोग अब स्वराज्य के लिये कुछ भी करने के लिये तैयार हैं, और वे अब ब्रिटिश-राज्य का गुणगान नहीं करते। अब उन पर से ब्रिटिश राज का दबदबा उठ गया, यह सारा दबदबा केवल पशुशक्ति की बदौलत है यह सभी समझ गये हैं। भारतवर्ष में तथा रूस में होनेवाले बमों के प्रयोग में कुछ प्रभेद है, वह प्रभेद यह है कि रूस में बम फेंकने वालों के विरुद्ध भी एक बड़ा समूह है, किन्तु इसमें सन्देह है कि भारतवर्ष में कोई सरकार के साथ सहानुभूति करेगा। यदि ऐसा होते हुए भी रूस को 'डूमा' याने धारासभा मिल गई, तो इसमें तो शक नहीं कि भारतवर्ष को स्वराज्य ही मिल जायगा। भारतवर्ष के बम फेंकनेवालों को अराजकवादी कहना बिलकुल गलत है। यह प्रश्न तो छोड़ दिया जाय कि बम फेंकना अच्छा है या बुरा, यह तो मानना ही पड़ेगा कि भारतीय बम फेंकनेवालों का उद्देश्य अराजकता फैलाना नहीं बल्कि स्वराज्य प्राप्त करना था।"

"काल" के सम्पादक को ८ जुलाई १९०८ को मुजफ्फरपुर के बारे में लिखे गये एक लेख के कारण सजा हुई थी।

अलीपुर षड्यन्त्र और विहार

विहार में देवघर नामक एक स्थान है जहाँ बंगाली लोग स्वास्थ्य के ख्याल से बहुत आया जाया करते हैं। वारीन्द्र और अरविन्द घोष के नाना श्री राजनारायण वसु तो यहीं बसे हुए थे। वारीन्द्र की अधिकतर शिक्षा देवघर में ही हुई। राजनारायण वसु ने किसी जमाने में एक गुप्त-समिति स्वयं बनाने की चेष्टा की थी। वारीन्द्र देवघर के "स्वर्ण-संघ" (golden league) नामक एक संस्था के सदस्य थे, इस संघ का उद्देश्य विदेशी-द्रव्य वहिष्कार तथा स्वदेशी द्रव्य प्रचार था। अलीपुर षड्यन्त्र के लोगों द्वारा परिचालित "युगान्तर" का एक मुद्रक देवघर का ही था। अलीपुर षड्यंत्र के दौरान में पता

लगा कि देवघर का एक मकान जिसे "शीलेर बाड़ी" कहते हैं क्रांतिकारियों द्वारा बम बनाने तथा ऐसे ही कामों के लिये इस्तेमाल किया गया था। प्रफुल्ल चाकी का नामांकित एक अखबार भी इसी मकान से बरामद हुआ था।

नीमेज हत्या कांड

मुजफ्फरपुर हत्याकांड के बाद विहार में बहुत दिनों तक कोई क्रांतिकारी वारदात नहीं हुई, हाँ कुछ बंगाली फरार विहार में आते जाते रहे। किन्तु मालूम होता है उनका उद्देश्य संगठन करना नहीं था, बल्कि अपने को छिपाना था क्योंकि विहार में पुलिस का उपद्रव कम था।

नीमेज हत्या कांड के नाम से जो चीज मशहूर है उसको हम बहुत राजनैतिक महत्व देने के लिये तैयार नहीं हैं, फिर भी यह मामला, राजनैतिक था इसमें कोई सन्देह नहीं। शोलापुर के दो जैनी युवक मानिकचन्द और मोतीचन्द पूना में पढ़ते थे, फिर बाद को ये जयपुर के एक जैनी शिक्षक श्री अर्जुनलाल सेठी के विद्यालय में पढ़ने लगे। पढ़ने तो ये धर्मशास्त्र गये थे, किन्तु राजनीति की ओर इनकी जबरदस्त अभिरुचि थी। ये लोग यहाँ आने के पहिले ही मैजिनी का जीवन चरित्र, तिलक के लेख तथा "काल" "भोला" और "केसरी" के जोशीले लेख पढ़ चुके थे। इस विद्यालय में बिशन दत्त नामक एक मिरजापुर के सज्जन अक्सर आया करते थे, इनकी उम्र ४० साल की थी और ये लड़कों में वक्तृता भी दिया करते थे।

बिशनदत्त राजनैतिक विषयों पर बोला करते थे। कहा जाता है कि वे देशभक्ति का उपदेश देते थे। पुलिस का यहां तक कहना है कि वे 'डकैतियों से ही स्वराज्य मिलेगा' ऐसा कहते थे। कहा जाता है वे लड़कों में ही दो दो तीन तीन को एक साथ उपदेश देते थे, और उसमें यह कहते थे कि डकैतियों की इसलिये आवश्यकता है कि धन मिले और

धन की इसलिये कि उससे हथियार मोल लिये जायें और हथियारों की की इसलिये जरूरत थी कि डकैतियां की जायें। वे देश की दुर्दशा पर भी लोगों की दृष्टि आकर्षित करते थे। वे कानाईलाल दत्त की (जिसने अलीपुरी षड्यंत्र के मुखबिर को जेल के अन्दर मारा था) तारीफ करते थे। एकदिन बिशनदत्त इसी प्रकार बोल रहे थे, एक शब्द लड़कों के दिल में चुभता जाता था; एकाएक बोलते बोलते वे रुक गये फिर वे अपने श्रोताओं की की ओर देखकर बोले "अब तक तो बातें ही रहीं, क्या आप कुछ करने को तैयार हो?"

मुखबिर के बयान के अनुसार इस पर सब लोगों ने कहा "हाँ"। बस यहीं से डकैती का सूत्रपात होता है।

यह मुकदमा आरा में मिस्टर बी० एन० राय के इजलास में चला था, मिस्टर पी० सी० मानुक सरकारी वकील थे। इस्तगासे की ओर से बन्शरोपन ने बयान किया—"मोती चन्द शिवरात्रि के दो दिन बाद एक मनुष्य के साथ मठ में आया था एक रात ठहर कर वह चला गया। रविवार को मैं अपने भाई के गौने के लिये घर गया था। सन्ध्या समय लालटेन आदि लेने को मैं मठ में गया था, उस समय एक दुबले पतले अजनबी मनुष्य को मैंने मठ में देखा था। दूसरे दिन आने पर मैंने इस अजनबी को नहीं पाया। चार पांच दिन बाद फिर वही अजनबी मठ में आया। उसने कहा था कि वह ब्राह्मण है, और पञ्जाब से आया हुआ है। वह रसोइये का काम करने लगा। आठ दस दिन बाद मानिकचन्द और एक आदमी मठ में आया। उन लोगों ने महन्त को तसवीरें आदि दी थीं, तथा महन्त ने इनके भोजन आदि के प्रबन्ध के लिए कहा था। होली के दिन मैं घर जाना चाहता था, किन्तु महन्त ने छुट्टी नहीं दी। मैं नौकरी छोड़कर चला गया, सन्ध्या समय महन्त मुझे मनाने के लिए घर पर आए, बहुत समझाने तथा मजबूर किये जाने पर मैंने अपने छोटे भाई बन्शीधर को उस दिन भेज दिया। दूसरे दिन दस ग्यारह बजे दिन को मेरे चाचा सकल कहार ने कहा कि चारों

मनुष्य गायब हैं। पश्चिम के कमरे में जहाँ अजनबी रहते थे वहाँ मेरे भाई की लाश मिली। महन्त की लाश चारपाई पर मिली, उस पर एक लिहाफ पड़ा था।"

डकैती का संक्षिप्त विवरण यह है कि मोतीचन्द, मानिकचन्द, जयचन्द; और जोरावरसिंह नीमेज के लिए रवाना हो गए। इनके पास केवल लाठियाँ थीं। महन्त को तथा वंशीधर को इन्होंने मार डाला, किन्तु संदूक की चाभी न पा सके। इस सन्दूक में १७०००) रुपये थे। कहा जाता है कि इस प्रकार असफल होकर लौट आए। इस बात का प्रमाण है कि इस पर विशनदत्त बहुत रुष्ट हुए, और कहा कि तुम लोगों ने व्यर्थ की हत्यायें कीं।

१९१३ के २० मार्च को ये हत्यायें की गई थीं, किन्तु पुलिस को करीब एक वर्ष बाद इसका सुराग मिला। अर्जुनलाल जब फिर जयपुर लौटे तो वे अपने साथ एक आदमी को लेते गए जिसका नाम शिवनारायण था। शिवनारायण मुखबिर हो गया।

अन्यान्य हलचलें

बनारस के स्वनामधन्य क्रान्तिकारी श्री शचीन्द्र नाथ सान्याल ने बाँकीपुर में अपनी बनारस-समिति की शाखा खोली थी। इस समिति में काम करनेवाले श्री वंकिमचन्द्र मित्र ने बयान देते हुए कहा "विहार नेशनल कालेज में प्रविष्ट होने के बाद एक समिति बनाकर वंकिम हमें विवेकानन्द के सम्बन्ध में उपदेश दिया करता था। जो इस समिति में भर्ती होता था उससे ईश्वर तथा ब्राह्मणों के नाम यह प्रतिज्ञा ली जाती थी कि वह समिति की बातें किसी पर प्रकट नहीं करेगा। हमें यह बताया जाता था कि हम ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध जद्दोजेहद करें, और अंग्रेजों को यहाँ से निकालकर तभी दम लें। यह भी बताया जाता था कि हम आज से तथा अभी से इसकी तैयारी करें। वंकिमचन्द्र ने रघुवीर सिंह नामक एक विहारी को दल में भर्ती कर लिया, रघुवीर ने कई बार "लिबर्टी" परचे बाँटे। बाद को रघुबीर को इलाहाबाद में ११३ नम्बर

इनफैंट्री में एक मुन्शीगिरी की नौकरी मिल गई, यहीं पर उसे "लिबर्टी" परचा बाँटने के सिलसिले में दो साल की सजा हुई। शायद इस प्रकार के अपराध में सजा पाने वाले ये पहिले ही बिहारी थे।

बिहार में अनुशील

बिहार में बङ्गाल की अनुशीलन समिति ने रेवती नाग नामक एक व्यक्ति को भागलपुर अपना प्रचारक बना कर भेजा। रेवती ने किस प्रकार काम किया यह एक मुखबिर की जबानी सुन लीजिये। तेजनारायण ने बयान देते हुए 'रेवती हम को मातृभूमि की दुर्दशा की कहानियां सुनाता था। वह कहता था कि हम बिहारी छात्रगण देश के उद्धारार्थ कुछ भी नहीं कर रहे हैं तथा हमें इस सम्बन्ध में बंगाल के छात्रों से होड़ करनी चाहिये, वह बराबर मुझ से कहता था कि बिहार का जनमत न तो जोरदार है न यहाँ कोई नेता ही है। वह हम लोगों के कहता था कि हमें हमेशा मातृभूमि के लिये अपना सर्वस्व यहाँ तक कि जीवन न्यौछावर करने के लिये तैयार रहना चाहिये। वह हम से कहा करता था कि बंगाली व्यक्तिगत लाभ के लिये नहीं बल्कि दल के उद्देश्यों को पूरा करने के लिये डाके डालते हैं। वह हमें डकैतियों, तलाशियों तथा राजनैतिक सब मुकदमों के विषय में पढ़ने के लिये उत्तेजित करता था, और कहता था कि इन सब बातों को पढ़कर मुझे सोचना चाहिये कि क्या इसमें मेरा भी कुछ कर्त्तव्य है या केवल दूर खड़े होकर हम केवल इसका तमाशा ही देखें। संक्षेप में वह हमें उन्हीं कामों को करने की सलाह देता था जो कि बंगाल के अराजकवादी कर रहे थे। वह यह भी कहता था कि बंगालियों के लिये यह संभव नहीं कि वे बिहार में आकर काम करें, बिहारी लोगों को चाहिये कि वे अपना काम आप सम्हालें। बंगाली केवल इतना ही कर सकते हैं कि काम का सूत्रपात किया जावे। रेवती इन बातों को केवल अकेले में ही कहता था उसने मुझे दूसरों के सामने इन विषयों पर बात छेड़ने से मना कर दिया था।"

रेवती बाद को अनुशासन भंग करने के अपराध में अपने साथियों द्वारा मारा गया था।

एक दूसरे मुखबिर ने रेवती के बारे में यों बयान दिया "रेवती ने मुझे समझाया कि अंग्रेजों ने भारतवर्ष में राष्ट्रीयता की प्रगति तथा शिक्षा आदि में बाधा पहुँचाकर हमें पंगु बना रक्खा है। रेवती ने यह भी कहा कि अंग्रेज़ लोगों ने सब अच्छी अच्छी नौकरियाँ हथिया रक्खी हैं, और हमारी मातृभूमि के सारे धन को लूट रहे हैं। अंग्रेजों की सारी कार्रवाई का मकसद यह था कि हम हमेशा उनके गुलाम रहें। × × उसने हमसे यह भी कहा कि ३३ करोड़ में केवल ३ करोड़ को रोटी मिल रही है, और बाकी लोग भूखे रहते हैं, इसका कारण है अंग्रेज़ों की शरारत और लूटखसोट।"

आगे इस मुखबिर ने एक बहुत ही महत्वपूर्ण बात कही, केवल महात्मा गान्धी ही नहीं, उस ज़माने के ज़िम्मेदार क्रान्तिकारी भी (रेवती नाग को हम ज़िम्मेदार ही कहेंगे क्योंकि अनुशीलन द्वारा वह विहार का प्रतिनिधि बनाकर भेजा गया था) रामराज्य का स्वप्न देखा करते थे।

"रेवती मुझ से यह कहता था कि इस सरकार को भगा कर रामचन्द्र या जनक की तरह राज्य जिसमें विश्वामित्र ऐसे ऋषि मन्त्री हों, स्थापित करना चाहिये। संक्षेप में वह कहता था कि हमें ऐसी राज्यपद्धति का स्थापना करना चाहिये जिसमें न दुर्भिक्ष हो, न शोक हो, न पाप हो। उसने अपनी बातों से मुझे प्रभावित करने के लिये रामायण के श्लोक उद्धृत किये।'

रेवती नाग को कुछ युवक मिल गये थे किन्तु उन लोगों ने न कोई डकैती डाली न कोई खतरनाक काम किया।

उड़ीसा की हलचल

उड़ीसा एक बड़ा प्राँत नहीं तो एक महत्वपूर्ण प्रांत अवश्य है, उड़ीसा भाषा शायद बङ्गला के सब से करीब है, किंतु आश्चर्य की बात

यह है कि उड़ियों ने क्राँतिकारी कामों में कोई विशेष दिलचस्पी नहीं ली। फिर भी उड़ीसा का बालासोर नामक स्थान भारत के क्राँतिकारी इतिहास में अमर रहेगा, आज़ाद के कारण इलाहाबाद का अलफ्रेड पार्क, जगदीश के कारण लाहौर का शालीमार बाग और भारत के अन्य बहुत से कोने जिस कारण अमर हुए हैं, बुड़ियाबालाम का किनारा उसी कारण भारत के इतिहास में अमर रहेगा। उस छोटी सी नदी के किनारे जतीन्द्र मुकर्जी, मनोरंजन, प्रिय तथा नीरेन्द्र ने अपने गरम लोहू से जो हरफ़ बनाये हैं उन्हें कोई नहीं मिटा सकता, स्वयं महाकाल भी नहीं।

यतीन्द्रनाथ मुकर्जी

यतीन्द्र नाम से भारतवर्ष में दो शहीद हुये हैं, एक साम्राज्यवाद की गोलियों के शिकार हुए, दूसरे ने भूख में तड़पते तड़पते बृटिश साम्राज्यवाद के विरुद्ध तिल-तिल कर अपने को कुर्बान कर दिया। यतीन्द्र का जन्म तो बङ्गाल के नदिया जिले के कालाग्राम नामक गाँव में सन् १८७८ ई० में हुआ था। कम उम्र में ही वे पितृ-हीन हो गये। इसलिये उनकी माता पर ही उनके पालन का भार पड़ा। यतीन्द्र लड़कपन से ही खेलकूद में सर्वप्रथम रहते थे, इसका अर्थ यह नहीं कि वे पढ़ने लिखने में कच्चे थे। उन्होंने एफ़० ए० तक तालीम पाई थी, किंतु साइकिल चढ़ना, घोड़ा चढ़ना, कुश्ती, व्यायाम आदि में उनका मन सब से ज्यादा लगता था। ७०-७५ मील तक एक साथ साइकिल पर चले जाते थे, रात रात भर घोड़े की पीठ पर बीत जाता था। शिकार के भी वे शौकीन थे, एक बार वे एक जिंदा चीता पकड़ लाये तो देखने वाले दङ्ग रह गये। यतीन्द्र में सभी योग्यतायें थीं जिनसे एक सफल जेनरल बनता है, किंतु वे तो एक गुलाम मुल्क की मायावित्ति श्रेणी में पैदा हुये थे, फलस्वरूप उनको शर्टहैंड सीख कर एक दफ्तर में मुंशी बनना पड़ा। यह नौकरी सरकारी थी, केवल इतना ही नहीं यह तत्कालीन लाट साहब के दफ्तर की थी।

यतीन्द्र के अतिरिक्त कोई भी आदमी इसमें अपना सौभाग्य मानता किन्तु उनका मन तो कहीं और ही की उड़ानें भरने में मस्त था। नौकरी की उन्हें परवाह न थी, न फिक्र। एक बार वे ट्रेन में जा रहे थे तो गोरे सैनिकों से झगड़ा हो गया, और उन्होंने उनको पीट डाला। गोरों ने पहिले तो मुकदमा चलाया, तैश में थे ही किन्तु जब देखा कि इसमें हँसी होगी, वह एक हिन्दुस्तानी कई गोरे और सो भी युद्ध के पेशे के लोगों को मारा यह कैसे हो सकता है, बस उन्होंने मुकदमा वापस कर लिया। फिर भी साम्राज्यवाद इस बात को भुला कब सकता था, उनको नौकरी से अलग कर दिया गया। यतीन्द्र के ऐसा आदमी नौकरी के लिये पैदा नहीं हुआ था, बुड्ढिबालाम केवल जानती थी वे क्यों पैदा हुए थे।

रोटी के लिये धन्धा करना ज़रूरी था, यतीन्द्र ने ठेकेदारी कर ली। इसमें उनको अच्छी सफलता मिली।

बङ्गाल में इन दिनों क्रान्तिकारी आन्दोलन जोरों पर था। यतीन्द्र भी एक दिन इसमें शामिल हो गये, कितने दिनों से, हाय कितने वर्षों से जिस बात के लिये उनका हृदय तड़प रहा था, अब उन्होंने वह पा लिया था। अब तक यतीन्द्र मनचले थे, कभी इधर बहक जाते थे, कभी उधर किन्तु जिस प्रकार सागर को प्राप्त करके नदी के सब अल्हड़पन दूर हो जाते हैं उसी प्रकार यतीन्द्र अब एक शांत, स्थिर, धीर, गंभीर, जिम्मेदार क्रांतिकारी नेता हो गये थे। मानों सारी दुनिया की जिम्मेदारी ही उन पर एकाएक आ पड़ी हो। थी भी बहुत जिम्मेदारियां। बङ्गाल छोटे-छोटे दलों में विभक्त था, इन सब को एक सूत्र में बाँधकर एक जबर्दस्त क्रांतिकारी संगठन करना था। इसके अतिरिक्त ब्रिटिश साम्राज्यवाद के विरुद्ध जो दुनिया की शक्तियां थी उनसे भारतीय क्रांतिप्रचेष्टा के लिये सहायता प्राप्त करनी थी।

साम्राज्यवाद के विरुद्ध साम्राज्यवाद

भारत के क्रांतिकारियों ने लड़ाई के जमाने में ब्रिटिश साम्राज्यवाद

के विरुद्ध दूसरे साम्राज्यवादों की सहायता के उपयोग करने की चेष्टा की थी यह पहिले ही आ चुका है। आज भी दो साम्राज्यवादी ताकतों में युद्ध हो और उसमें ब्रिटेन एक हो तो प्रामाणिकता साबित हो जाने पर भारत क्रांतिकारी दलों को वह ताकत मदद दे सकती है यह मैं समझता हूँ। इस दृष्टि से भी रासविहारी तथा राहुल सांस्कृत्यायन जी ने जापान के सम्बन्ध में जो कुछ कहा है वह कम से कम विचार करने योग्य अवश्य है, किन्तु इन दोनों महानुभावों को स्मरण रखना चाहिये था कि विगत महायुद्ध के समय इन साम्राज्यवादी देशों के सामने सोवियट रूस का जीता जागता हौवा मौजूद नहीं था। आज एक साम्राज्यवादी ताकत दूसरी साम्राज्यवादी ताकत को तबाह करने के लिये व्यग्र जरूर है, ताकि उसे उसकी लूट हाथ लगे, किन्तु इसके साथ ही मैं समझता हूँ कि वे आपसी लड़ाई में इतने बेहोश नहीं हो जायेंगे कि वे पूँजीवाद या साम्राज्यवाद को ही चोट पहुँचावें, तथा भारतीय सोवियट के रूप में एक और जीता जागता बल्कि आँखें तरेरता हौवा अपने सन्मुख पैदा करें। श्री रासविहारी तथा श्री राहुल जी इन बीस सालों में उद्भूत इस प्रभेद को न समझने के कारण ही हमें ऐसी गलत सलाह देते दृष्टिगोचर होते हैं। संभव है इसमें और भी कारण हों। अस्तु।

पथुरियाघाटे में खुफिये का गोली से स्वागत

यतीन्द्र मुकर्जी का घर पाथुरियाघाटा में था। जैसा कि होता है इनका घर भागे हुए तथा अन्य क्रांतिकारियों का अड्डा था। यों ही बातचीत चल रही थी, किन्तु प्रायः हरेक आदमी के पास भरी पिस्तौलें थीं, जो एक मिनट के अन्दर आग बरसाने को तैयार थीं। इतने में उन क्रान्तिकारियों के झुण्ड में एक ऐसा आदमी घुस आया जिसके सम्बन्ध में लोगों को सन्देह ही नहीं निश्चय था कि वह खुफिया पुलिस का था। बस यतीन्द्र तो मेजबान थे ही, हरेक को यथायोग्य स्वागत करने का भार उन्हीं पर था, कहा जाता है उन्होंने आव देखा न ताव

पिस्तौल उठाकर उसको गोली मार दी। कम से कम मरते वक्त उसने ऐसा ही बयान दिया। जाननेवालों का कहना है कि यतीन्द्र ने स्वयं गोली नहीं मारी थी।

उसी दिन से यतीन्द्र के पीछे साम्राज्यवाद की सारी दानवी शक्ति हो गई, यतीन्द्र की जान अब जब्त हो चुकी थी, यतीन्द्र आसानी से हाथ आनेवाले जीव नहीं थे। बहुत दिनों तक साथियों सहित इधर उधर घूमते रहे, कई मामलों में उनकी तलाश थी। अन्त में पुलिस को उनके अड्डे का पता लग गया, किंतु पुलिस के दलबल सहित वहां पहुँचने के पहिले ही वे अपने साथियों सहित बारह मील दूर एक जंगल में चले गये। पुलिस ने वहां भी पता पा लिया किंतु ये भाड़े के टट्टू सहसा उनके सामने जाने का साहस नहीं कर सकते थे, इसलिये उन्होंने बड़ी लम्बी तैयारी की। चारों तरफ के गांवों में प्रचार करवा दिया कि चार पाँच डाकू जंगल में छिपे हुए हैं, इनको पकड़वाने पर बड़ी अच्छी रकम इनाम में मिलेगी। भला यह कितनी अनोखी बात थी कि जो डाकू थे, लुटेरे थे, वे ही दूसरों को डाकू बनाते थे। गांववालों ने भी उनपर एतबार कर लिया और जिसके पास जो अस्त्र था उसे लेकर वह दौड़ पड़ा? कितनी भयंकर दुख गाथा है? जिनको गुलामी रूपी महा-पातक के गार से उबारने के लिये माँ के लाल अपने सर्वस्व न्यौछावर करने पर तैयार हुए थे, वे ही अब इन्हें पकड़कर साम्राज्यवाद के खूनी हाथों में सौंपने को तैयार हो गये? इस मामले में हम केवल इन सरल ग्रामवासियों को दोष देकर चुप नहीं हो सकते, इसमें का बहुत कुछ दोष स्वयं क्रान्तिकारियों पर है। उन्होंने त्याग किया, फांसी पर चढ़े, किन्तु जनता में प्रचार क्यों नहीं किया? अस्तु। यही सारे क्रान्तिकारी आन्दोलन की दुःखगाथा है!......भविष्य के क्रान्ति-कारी इन से शिक्षा लेंगे।

घेरा शुरू

यतीन्द्रनाथ इस भाँति घिर जाने पर भी न घबड़ाये, एक तरफ

सामना हो ही गया, दोनों तरफ से गोलियां चलीं। सबसे पहिले चित्त-प्रिय गिरे, ब्रिटिश साम्राज्यवाद के पहिले शिकार होने का सौभाग्य इन पाँचों में उन्हीं का प्राप्त हुआ। जाओ चित्तप्रिय ! तुम जिस जगह पर शहीद हुए वह कभी लोगों के लिये एक महान् पवित्रस्थान होगा। यतीन्द्र का भी शरीर गोलियों से छिद चुका था, वे जानते थे कि अब वे चन्द मिनटों के ही मेहमान हैं। चित्तप्रिय को गिरते देखकर उन्हों ने समझ लिया कि यही अन्त सब का होगा, अपना तो वे जानते हो थे कि अन्तिम समय आ गया है, वे नहीं चाहते थे कि उनके बाद उनके और भी साथी मारे जयँ। अतएव उन्होंने अपने साथियों को लड़ाई रोकने के लिये कहा, किन्तु इसमें उन्होंने गलती की। उन्हों-ने शायद सोचा हो कि साम्राज्यवाद की रक्तपिपासा चित्तप्रिय तथा उनका बलिदान लेकर ही तृप्त हो जायगी, किन्तु ऐसा कहाँ हो सकता था ? साम्राज्यवाद से मनुष्यता की उम्मीद कैसे की जा सकती थी, साम्राज्यवाद के भाड़े के टट्टू भले ही द्रवित हो जायँ, ऐसा हुआ भी। जब यतीन्द्र गोलियों से छिद कर गिर पड़े तो उनके बदन से खून की धारा निकल रही थी, उनके मुँह से "पानी" शब्द निकला। मनोरंजन के शरीर से भी धारा बह रही थी, उसका भी रक्त उड़ीसा की वीरभूमि पर पर गिरकर उस रेत को लाल कर रहा था, किन्तु जब उसने अपने सेनापति को इस प्रकार गिरते देखा और पानी माँगते सुना तो वह शेरदिल अपना सबदुख भूलकर उठा और स्वयं पास की नदी से पानी लेने गया। क्या इस दृश्य से कोई दृश्य सुन्दर हो सकता है, क्या इससे बढ़कर कोई बंधुत्व के उदाहरण दुनिया के इतिहास में है ? एक साथी शहीद की नींद सो रहा है, दूसरा सिसक रहा है, तीसरा जिसके बदन से रक्त की धारा जारी है, किन्तु अभी लड़खड़ाकर चल सकता है, उठता है और पानी लाने जाता है। इस स्वर्गीय दृश्य को देखकर पुलिस वाले रो दिये, नैतिक विजय थी ! इस मुठभेड़ में पुलिस वाले विजयी हुए, किन्तु जब वे अपने द्वारा हराये हुए इन पाँचों क्रान्ति-

कारियों के सामने आते हैं तो वे रो देते हैं। एक पुलिस अफसर मनोरंजन को रोककर स्वयं पानी लेने गया। आखिर वह हिन्दुस्तानी ही था, एक क्षण के लिये उसे जोश आ गया, किन्तु साम्राज्यवाद तो एक पद्धति है, उसमें भला दया की गुंजाइश कहाँ है? वह तो ऐसे मौकों पर और भी क्रूर हो जाती है। इस क्रूरता का नाम ब्रिटिश न्याय है।

यतीन्द्र शहीद हुये, अन्य को फाँसी

यतीन्द्र मुकर्जी को उठा कर कटक के अस्पताल ले जाया गया, वहीं पर उनकी मृत्यु हुई। मनोरंजन और नीरेन्द्र को फाँसी दे दी गई, ज्योतिष पागल हो गये थे, इसलिये पागलखाने भेज दिये गये, वहीं वे वर्षों के बाद मर गये। कैसा सुन्दर पुरस्कार था, इन परम देशभक्तों की कैसी परिणति हुई? फिर भी जो लोग ब्रिटिश साम्राज्य-वाद से उदारता की आशा रखते हैं धिक्कार है उन पर, ऐसे गुलामों की अन्धता पर शर्म आती है।

पहिले ही कहा जा चुका है कि जर्मनी आदि ब्रिटिश साम्राज्य के विरुद्ध शक्तियों से भारत की स्वाधीनता के लिये सहायता प्राप्त करने के षड्यन्त्र में यतीन्द्र का बहुत बड़ा हाथ था। १२ फरवरी १९१४ को गार्डन रीच में जो मोटर डकैती हुई उसके नेता भी यतीन्द्र मुकर्जी थे, मोटर डकैती के वे विशेषज्ञ समझे जाते थे। उन्होंने कई लाख रुपया इस प्रकार क्रांतिकारियों के खजाने में दिया। इसके अतिरिक्त कई एक खून में भी यतीन्द्र ने भाग लिया था ऐसा समझा जाता है। इन्हीं सब गुणों के कारण यतीन्द्र एक बहुत ही खतरनाक क्रांतिकारी समझे जाते थे, अतएव उनकी हत्या से ब्रिटिश सिंहासन का एक काँटा दूर हुआ। जिस दिन यतीन्द्र मुकर्जी मरे, उस दिन ब्रिटिश साम्राज्यवाद ने आराम की एक गहरी साँस ली, आह एक खतरनाक दुश्मन मरा, किन्तु ब्रिटिश साम्राज्यवाद की यह हिमाकत थी। शहीदों का वंश कभी निर्बंश नहीं होता, वह तो हमेशा हरा भरा रहता है। मैजिनी के वचन

(Ideas ripen quickly when nourished by the blood of martyrs) शहीदों के खून से सींचे जाने पर भाव जल्दी परिपक्व होते हैं।' कितना सच्चा है, आज यह स्पष्ट है कि हिन्दुस्तान से अँग्रेजी राज्य की अर्थी जल्दी निकलेगी।

बर्मा और सिंगापुर में क्रान्तिकारी लहरें

बर्मा में अंग्रेजी राज्य के विस्तार के साथ साथ काफी हिन्दुस्तानी जाकर नाना प्रकार से बस गये थे। बर्मा को साम्राज्यवाद के चंगुल में लाने के घृणित कार्य में हिन्दुस्तानियों का काफी हिस्सा था, केवल बर्मा में ही नहीं सारे दूर-तथा मध्य-पूर्व में ब्रिटिश साम्राज्यवाद ने जहां जहां अपना मनहूस हाथ फैलाया, वहां वहां हिन्दुस्तानियों का हिस्सा बहुत ही घृणित था। बर्मा की स्वाधीनता हरी जाने के बाद बर्मा के कुछ सर्दारों ने फिर से अपना राज्य वापस करने के लिये षड्यन्त्र वगैरह किये, किन्तु वे कुचल दिये गये। भारतवर्ष के क्रान्तिकारी जो जर्मनी आदि शक्ति से ब्रिटिश सत्ता के विरुद्ध मदद प्राप्त करते थे, वह दूरपूर्व के जर्मन कन्सल-जेनरल के जरिये से करते थे, इसमें उन्हें बर्मा-निवासी भारतीयों से बहुत सहायता मिली। बर्मा में तीन तरीके की क्रान्तिकारी क्रियायें हुईं, एक जिसका सम्बन्ध जर्मनी वगैरह से था किन्तु जिसका रास्ता सामुद्रिक था, दूसरा श्याम वगैरह के जरिये से जो काम हुआ और जिसका सम्बन्ध गदर दल से था, तीसरा हिन्दुस्तानी फौजों को भड़काना। शिडिशन कमेटी की रिपोर्ट के अनुसार फौजों को भड़काने की बड़ी संगठित चेष्टा की गई।

अली अहमद सिद्दीकी

तुर्की के साथ इटली का जो युद्ध हुआ था, उस समय भारतीय मुसलमानों की ओर से युद्ध में जखमी लोगों की सेवा के लिये एक मिशन भेजा गया था। यह मिशन उसी किस्म का था जैसा अभी हाल में कांग्रेस ने चीन में भेजा है, सिर्फ फरक इतना है, और यह बहुत बड़ा फरक है कि कांग्रेस का मिशन मानवता के नाम पर गया हुआ मिशन है और वह एक सर्व इस्लामी ख्याल से भेजा हुआ मिशन था। अली अहमद नामक एक नौजवान इस मिशन में घर से छिपा कर गये थे। काम ऐसा पड़ गया कि अली अहमद को चार महीने तक लगातार अनवर पाशा के साथ रहने का मौका मिला। इस दौरान में उनके विचार-जगत पर अनवर की आपबीती का बड़ा प्रभाव पड़ा। सभी, बड़े आदमियों की तरह अनवर को आप बीती सुनाने का मर्ज था, उन कहानियों से अली अहमद को मालूम हुआ कि अंग्रेज राज-नीतिज्ञ कैसे मक्कार और खूँख्वार हैं। साथ ही उन्होंने यह भी सुना कि नौजवान तुर्क दल की कैसे उत्पत्ति हुई, तथा कैसे वह धीरे धीरे पनपी और अन्त में अब्दुल हमीद की तरह मनचले सुलतान को निकालकर अधिकार प्राप्त किया गया।

इन बातों को सुनकर अली अहमद को जोश आता था, किंतु ज्योंही वे हिन्दुस्तान की ओर उसकी गिरी हुई हालत की बात सोचते थे त्योंही उनको अपार दुःख होता था और वे अँग्रेजों को कोसते थे। बाद को जब इस मिशन का काम खतम हो गया, तो अली अहमद आदि कुछ भारतीयों ने कहा कि उन्हें तुर्की भ्रमण करने की इजाजत दी जाय। भला इसमें क्या अड़चन हो सकती थी। बड़ी धूमधाम से इन्हें तुर्की घुमाया गया। बस इस प्रकार जो कुछ कसर थी वह भी जाती रही। अली अहमद एक क्रान्तिकारी हो गये।

तुर्की-इतालियन युद्ध के समय अबू सैयद नाम का एक सख्स रंगून से मिश्र और मिश्र से तुर्की गया। कहा जाता है कि इसी अबू सैयद

के अनुरोध के अनुसार तरुण तुर्क दल का एक नेता तौफीकवे १६१३ में रंगून भेजा गया। यह तौफीक के रंगून के एक मुसलमान व्यापारी अहमद मुल्लादाऊद को तुर्की का कौंसल बना गये। लड़ाई के समय यही मुल्लादाऊद रंगून के तुर्की कौंसल के रूप में कायम रहे।

बल्कान युद्ध खतम हो जाने के बाद अलीअहमद देश में लौट आये, किन्तु एक व्यक्ति जो कि इतने दिनों तक स्वाधीन देश के स्वाधीन वातावरण में रह चुका था, जिसके चारों तरफ मशीनगनें चटकती थीं, फौजें आती और जाती थीं एक सनसनी सी हमेशा बनी रहती थी, उसे भला हिन्दुस्तानी की गुलामी की जिन्दगी क्यों पसन्द आती। उन्होंने गार्हस्थ्य जीवन पर लात मार कर बीबी के सब गहने बेंच डाले और रंगून का रास्ता लिया जो तरुण तुर्कदल का एक केन्द्र था और जहां से सर्व-इस्लामी प्रचारकार्य होता रहा। यों तो दिखाने के लिये वे रंगून व्यापार करने गये थे। इन दिनों फहमअली नामक एक व्यक्ति तरुण तुकदल का प्रतिनिधि होकर आये थे। फहम अली के नेतृत्व में अर्थात तरुण तुर्क दल की देखरेख में बर्मा में क्रांतिकारी षड़यन्त्र शुरू हुआ और मुसलमानों से चन्दा माँगकर काम चलने लगा। तरुण तुर्क दल के नेतृत्व में यह जो षड़यन्त्र हो रहा था इसको हम राष्ट्रीय नहीं कह सकते, क्योंकि यह 'चीनों अरब हमारा, सारा जहां हमारा; मुस्लिम हैं हम वतन है सारा जहां हमारा" इसी आदर्श से परिचालित होता था, जो एक गलत, मूर्खतापूर्ण तथा प्रतिक्रियावादी आदर्श था। अवश्य यह लोग भी ब्रिटिश साम्राज्य के विरोधी थे, किन्तु यह लोग जो स्वप्न देख रहे थे वह इस्लाम का साम्राज्य था। ये लोग चाहते थे कि इस्लाम का चाँद और सितारावाला झन्डा सारी दुनिया में लहराये। असल में धर्म की आड़ में यह तुर्की साम्राज्यवाद छिपा था। अस्तु।

इस सम्बन्ध में तुर्की से बहुत सा साहित्य भी भारतवर्ष में आया। मई १६१४ में कुस्तुन्तुनिया से "जहान-इ-इस्लाम" नाम से एक अख-

बार निकला। यह अरबी, तुर्की और हिन्दुस्तानी में छपता था। पहिले तो यह खुल्लम-खुल्ला लाहौर तथा कलकत्ते में आता था, किन्तु ईसाइयों के विरुद्ध होने के कारण सी-कस्टम ऐक्ट के अनुसार हिन्दुस्तान में इसका आना रोक दिया गया। अबू सैयद नाम के जिस व्यक्ति का पहिले उल्लेख किया गया है, वही इसके उर्दू हिस्से को तैयार करते थे।

गदर दल भी

इसी जमाने में गदर दल ने भी अपना काम बर्मा में शुरू कर दिया था। दोनों षड़यन्त्र एक साथ काम करने लगे। यह बहुत ही अच्छा हुआ, क्योंकि सर्व इस्लामवाद का जो जहर तरुण तुर्क दल के कार्यक्रम में था वह गदर दल के ऐसे भयङ्कर रूप से विशुद्ध राजनैतिक दल के संस्पर्श से दूर हो गया। होते होते यहाँ तक हो गया कि जहान-इ-इस्लाम का मुख्य सम्पादकीय लाला हरदयाल लिखने लगे। इसके अतिरिक्त मिश्र के फरीदवे तथा मनसूर अरीफत इसमें ब्रिटिश साम्राज्यवाद के विरुद्ध बड़े जोरदार लेख लिखने लगे। २० नवम्बर १९१४ को अनवर पाशा की एक वक्तृता का जिकर इसमें था, जिसमें उन्होंने बताया था "अब हिंदुस्तान में इनकलाब का एलान होना चाहिये, अँग्रेजों की मैगजीनें लूट ली जायँ, उनके हथियार छीन लिये जायँ और वे उन्हीं से मारे जायँ। हिन्दुस्तानियों की संख्या ३२ करोड़ है और अँग्रेजों की संख्या ज्यादा से ज्यादा २ लाख हैं, उनकी हत्या कर डाली जाय, उनकी फौज है नहीं, स्वेज नहर को तुर्क जल्दी ही बन्द कर देंगे, जो अपने देश की आजादी के लिए लड़ेगा मरेगा वह तो अमर हो जायगा। हिन्दू और मुसलमान भाई भाई हैं, और ये पतित अँग्रेज उनके दुश्मन हैं। मुसलमानों को चाहिये कि अँग्रेजों के विरुद्ध जेहाद का एलान करें और अंग्रेजों को मार कर गाजी हो जायँ। उनको चाहिये कि वे हिन्दुस्तान को आजाद करें।"

लाला हरदयाल तुर्की में

कहा जाता है कि सितम्बर १९१४ में लाला हरदयाल तुर्की में गये,

अबू सैयद के यहां ठहरे और तुर्क नेताओं से मिले, इसके बाद से सर्व इस्लामवाद की तरह राजनैतिक विचारों का प्रचार कम होने लगा।

बेलूची फौज में ग़दर

नवम्बर १६१४ में १३० नंबर बेलूची फौज मेजी गई। इन को यहाँ भेजने का कारण यह था कि बम्बई में इन्होंने अपने एक अफसर की हत्या कर डाली थी, इसलिये सजा के तौर पर ये यहां भेजे गये थे। यहां आते ही उनमें "गदर" नामक पत्र फैलाया गया और बकायदा प्रचार कार्य किया गया, जिसका नतीजा यह हुआ कि १६१५ तक ये गदर करने को तैयार हो गये, किन्तु गदर करने के पहिले ही २१ जनवरी को ये लोग दबा दिये गये और २०० षड्यन्त्रकारियों को सजायें हुई।

सिंगापुर में ग़दर का आयोजन

२८ दिसम्बर १९१४ को सिंगापुर के एक गुजराती मुसलमान कासिम मनसूर का उसके बेटा के नाम रंगून में लिखा हुआ एक पत्र पकड़ा गया, जिसमें यह लिखा था कि एक फौज गदर करने के लिए तैयार है। उसमें तुर्की कौन्सल से यह अपील की गई थी कि एक लड़ाकू जहाज़ सिंगापुर में भेजा जाय तो सब काम बन जाय। इस पत्र के पकड़े जाने का नतीजा यह हुआ कि Malay State guides नाम की इस फौज का दूर स्थान पर तबादला कर दिया गया, किन्तु इससे सिंगापुर में गदर न रुक सका। इसी समय बैंकक से रंगून में सोहनलाल पाठक तथा हसन नामक गदर दल के दो व्यक्ति आये और उन्होंने रंगून को अपना अड्डा बनाया। इन दोनों ने १६ डफरिन स्ट्रीट में एक मकान भाड़े पर लिया, और ३४० नम्बर का पोस्टबाक्स चिट्ठी पत्री के लिये भाड़े पर ले लिया। हम यहाँ सोहनलाल के इतिहास का अनुसरण करेंगे।

सोहनलाल पाठक

सोहनलाल सैनफ्रेंसिस्को से गदर पार्टी का दूत बनाकर भेजे गये थे। वे विशेषकर फौज़ों को क्रान्ति की वाणी सुनाने में ही लगे रहे।

एक दिन जब कि वे इसी प्रकार तोपखाने के पलटन के अपनी वाणी सुना रहे थे और कह रहे थे कि "भाइयो क्यों फजूल के लिए इन अंगरेजों के लिए जान दोगे, यदि मरना ही है तो देश के लिए मरो। तुम्हारी भुजाओं के बल से तुम्हें आज़ादी मिले, यह अच्छा है या यह कि तुम अंगरेजों के लिए मर जाओ यह अच्छा है" इत्यादि, तब एक जमादार उन्हें बैठे-बैठे ताड़ रहा था। इस जमादार पर उनकी बातों का कोई असर नहीं हो रहा था, वह तो केवल उन्हें पकड़ाने की फिक्र में था। यह एक देशद्रोही, कृतघ्न पशु था। सिपाहियों के बीच में सोहनलाल बेखटके विचरते थे, उनसे उनको कोई डर न था फिर सोहनलाल को डर ही क्या था, क्या उन्होंने अपना सर्वस्व अपने आदर्श के लिए अर्पण नहीं कर दिया था, फिर डर किस बात का होता? किन्तु वह जमादार, और उसकी क्रूर आखें! सोहनलाल जब बोल चुके, तो सब सिपाही चले गये, किन्तु वह जमादार उनके और करीब आ गया। सोहनलाल ने सोचा जमादार कोई भेद की बात बताने आया है, वे बोले "बोलो'। बड़ी देर तक दोनों एक दूसरे को आँखों से वजन करते रहे, जमादार की आँखों में खून था, वह महापापी थर थर काँप रहा था। एकाएक उसने सोहन लाल के एक हाथ को पकड़ लिया और भर्राई हुई आवाज में कहा—"साहब के पास चलो।" सोहनलाल तो भारतीय क्रान्ति का सुख-स्वप्न देख रहे थे, एकाएक वे चौंक पड़े, किन्तु उन्होंने न तो हाथ छुड़ाने की कोशिश की, न भागने की कोशिश की। फिर वे भागते क्यों। जमादार उनसे तगड़ा जरूर था किन्तु निहत्था था, उनकी जेब में तीन अटोमैटिक पिस्तौल और २७० कार्तूस थे, चाहते तो उस बदमाश को उसके पाप की सजा दे देते और उसकी लाश की छाती पर बैठ कर कहते "चलो, चलें, चलते क्यों नहीं।" किन्तु सोहनलाल उस समय किसी और ही सतह पर थे, वे बोले "क्यों तुम हमें पकड़ाओगे? तुम? तुम? जरा सोचो तो सही तुम क्या कर रहे हो, भाई होकर भाई को पकड़ा दोगे? कैसे भाई हो? क्या गुलामी

में ही तुम्हें मजा आता है" किन्तु उस पशु-प्रकृति जमादार पर कोई असर न हुआ, वह उनका हाथ पकड़ कर खींचने लगा।

सोहनलाल ने इतने पर भी बायाँ हाथ जेब में नहीं डाला। उनकी पिस्तौलें आग से भरी हुई उनके इशारे की प्रतीक्षा कर रही थी, किन्तु सोहनलाल ने जेब में हाथ न डाला। इस विश्वासघात से शायद उनका मन खिन्न हो गया हो, शायद वे अपनी परीक्षा ले रहे थे। एक बार उनका बांया हाथ जेब की ओर गया भी किन्तु......। वह लौट आया। एक भाई को क्या मारें।

सोहनलाल गिरफ्तार हो गए

उनके पास तलाशी ली जाने पर जहान-इ-इस्लाम की एक प्रति मिली जिसमें हरदयाल का एक लेख था, कुछ फतवे थे जिसमें मुसलमानों से अँग्रेजों के विरुद्ध लड़ने को कहा गया था, बम का एक बहुत ही अच्छा नुस्खा था और गदर-पत्रिका का एक अंक था।

सोहनलाल जेल में गये जरूर, किन्तु जेल के न हो सकें। वहां उन्होंने जेल के किसी भी नियम को मानने से इनकार किया। जेल के अधिकारी जब जेल देखने आते थे तो वे उनसे एक भद्रपुरुष की भाँति मिलते थे किन्तु यह नहीं कि उनकी खुशामद करें। वे कहते थे जब हम अँग्रेजी सल्तनत को ही नहीं मानते तो उनकी जेल के कानून को ही क्यों मानने लगे। जब 'बड़े साहब' वगैरह आते थे वे उठ खड़े नहीं होते थे। जब बर्मा के लाट साहब आने वाले हुए तो जेलर ने उनसे कहा कि कम से कम उनकी ताजीम में तो खड़े हो जाइयेगा; किन्तु वे राजी नहीं हुए। हाँ, उनका यह कायदा था कि जब कोई खड़े खड़े उनसे बातें करता था तो वे भी खड़े हो जाते थे। अब लाट साहब के सामने वे खड़े नजर आवें इसके लिये जेलर ने यह जाल रचा कि वह लाट साहब के पहिले स्वयं आकर खड़े खड़े उनसे बातें करने लगा। इस प्रकार लाट साहब की इज्जत बच गई।

फाँसी या मांफी

लाट साहब ने दो घंटे तक सोहनलाल से बातचीत की। उन्होंने कहा यदि तुम माफी माँगो तो तुम्हारी फाँसी मैं अपनी कलम से रद्द कर दूँ इस पर सोहनलाल हँसे, यह हँसी वह हँसी थी जिसको केवल शहीद लोग ही हँस सकते हैं। वे बोले 'महाशय यह अच्छी रही कि मैं आप से माफी माँगूं। माफी तो आप को मुझ से माँगनी चाहिये, क्योंकि जो कुछ जोरो-जुल्म है वह तो सब आपकी ओर से हुआ है, और हो रहा है। मुल्क हमारा है, आप उस पर राज्य कर रहे हैं, उसे हम आजाद करना चाहते हैं, आप उसमें रोड़े अटकाते हैं। अब उलटा मुझ ही से माफी माँगने को कहा जा रहा है। यह खूब रहा। **लाट साहब ! भलमन्साहत का इन्साफ का तकाजा तो यह है कि आप मुझ से माफी माँगे।** क्या इस कथन में कुछ झूठ था किन्तु न्याय की बातें साम्राज्यवाद के एक एजेन्ट को क्यों भाती ? केवल ये बातें बातें ही नहीं थीं, इन बातों को कहने के लिये कहने वालों को दाम देना पड़ा था और वह दाम भी कैसा अपने जीवन का दाम। वीरता की यह पराकाष्ठा थी।

फाँसी के दिन की अदा

फाँसी का सब सामान तैयार था, यह प्लेटफार्म के भाषण पर का मौका नहीं था कि जोशीली बातें कही और तालियाँ पट पट बज गईं। मां का एक लाड़ला सोहनलाल फांसी के तख्ते के ऊपर खड़ा था, जल्लाद एक इशारे पर गले में रस्सा डालने को को तैयार था, उसके बाद एक इशारे पर तख्ता पैर के नीचे से हटाने को दूसरा आदमी तैयार था, यह कोई नाटक नहीं था, एक सत्य घटना थी—निर्मम, भयानक, क्रूर सत्य। साम्राज्यवाद की सब तैयारी सम्पूर्ण थी। बाहर फौज खड़ी थी। सोहनलाल इस भीड़ में अकेला था, भारतवर्ष में यहाँ से एक हजार मील की दूरी पर

उसका जन्म हुआ था, जन्म भर वह क्रान्ति की मशाल हाथ में लेकर भटकता रहा, कितने उसके साथी थे, किन्तु आज वह अकेला था। अपने स्वप्न में वह विभोर खड़ा था, क्या उसे पता था कि उसकी हत्या होने जा रही थी। शायद पता था, किन्तु उसके चेहरे पर अरे एक बल भी तो नहीं था।

अपने नजदीक वे शायद अमर थे, उनका सिर ऊँचा था, छाती तनी हुई थीं, क्यों न होता यह एक क्रांतिकारी था। जल्लाद चारों ओर देख रहा था, यह देरी क्यों ? साहब हुक्म क्यों नहीं देते। सभी लोग आश्चर्य में थे, इस दृश्य को जल्दी खतम क्यों नहीं किया जाता ? इतने में वहां जो सब से बड़े राजपुरुष थे वे एक कदम आगे बढ़े, और पुकारा "सोहनलाल !"

सोहनलाल अपने स्वप्न से चौंक पड़े, वे बोले—"कहिये।"

"अब भी यदि तुम जबान से माफी मांगो तो मुझे यह अधिकार है कि मैं फाँसी को रद्द कर दूँ। सोचो।"

सोहनलाल यों तो बड़ी शान्त प्रकृति के थे, किन्तु शहादत के समय ऐसी अजीब बात सुन कर उनका चेहरा तमतमा गया, आंखों से मानो खून निकलना ही चाहता था, वे बोले "गुस्ताख अंग्रेज जो माफी मांगना ही है तो तुम्हें हमसे माफी माँगनी चाहिये न कि मुझे तुम से।" इस पर अंग्रेज ने फिर समझाया कि व्यर्थ जान गँवाने से लाभ नहीं, तो वे जरा ठिठके और पूछा कि अच्छा यदि वे माफी माँगें तो क्या वे फौरन छोड़ दिए जायेंगे। इस पर उस अंग्रेज ने कहा यह अधिकार उसे प्राप्त नहीं है, तब उन्होंने जल्दी से अपने हाथ से गले में फन्दा डाल दिया, जब लोगों को ठीक तरह से होश आया तो उन्होंने देखा कि सोहनलाल फाँसी पर झूल चुके हैं।

आज तक किसी क्रान्तिकारी को इस प्रकार फाँसी के तख्ते पर प्रलोभन नहीं दिया गया, सोहनलाल की शहादत का इतिहास इस दृष्टि से शहीदों में विशिष्टता रखता है।

दूसरे क्रान्तिकारी

मुजतबा हुसैन नाम के एक क्रान्तिकारी गदर पार्टी की ओर से रँगून भेजे गए थे। ये महाशय जौनपुर के रहने वाले थे, मामूली काम से विदेश गए थे, वहीं गदर पार्टी के सदस्य हो गये थे। मुजतबा हुसैन कानपुर के कोर्ट ऑफ वार्डस में नौकर थे। वहाँ से वे मनीला गए, फिर सिंगापुर में गदर में मदद दी, जब वहाँ गदर असफल हो गया तो वे वहाँ से भाग निकले। बाद को वे शायद चीन में गिरफ़्तार हुए, और उन्हें मान्डले षड्यन्त्र में पहिले फाँसी फिर कालेपानी हुआ। १७ साल जेल में रहने के बाद वे अब छूटे हैं, किन्तु उनपर अब भी रोक है।

श्री अलीअहमदसिद्दीकी को भी इसी मुकद्दमे में कालेपानी की सजा हुई थी।

बकरीद में बकरे के बदले अँग्रेज़

रंगून के मुसलमानों ने यह तय किया था कि १९१५ के बकरीद के दिन गदर किया जाय। कहा जाता है कि तैयारी कम होने की वजह से यह तारीख हटाकर २५ दिसम्बर कर दी गई। बकरीद के दिन कहा जाता है कि यह तय था कि बकरों के बदले अंग्रेजों की कुर्बानी करने के लिये कहा गया था। Pyawbwe नामक स्थान में डिनामाइट, रिवालवर आदि चीजें बरामद हुई। इस पर सरकार ने जिन पर भी शक हुआ उन्हें गिरफ्तार किया,

मान्डले में कई षड्यन्त्र चले। इस प्रकार सब आन्दोलन संगीनों से दबा दिया गया।

सिंगापुर में ग़दर

सिंगापुर में इस जमाने में दो हिन्दुस्तानी रेजिमेन्ट तैनात थे। एक के साथ मुसलमान तरुण तुर्क दल का सम्बन्ध था। पहिले ही बताया जा चुका है कि किस प्रकार उसका भंडा फूट जाने से उस रेजिमेन्ट का तबादला कर दिया गया। फिर भी दूसरे रजिमेन्ट में

समसुच गदर हो गया। यद्यपि सिंगापुर के गदर के साथ पंजाब के गदर का कोई बाहरी सम्बन्ध नहीं था, किन्तु फिर भी १९१५ की २१ फरवरी में क्रान्ति का दिन ठीक हुआ था। पञ्जाब में इस २१ तारीख को जो हुआ वह पहिले ही आ चुका है, किन्तु सिंगापुर में उस दिन गदर हो ही गया। इस गदर के कराने में सुप्रसिद्ध क्रान्तिकारी हमीरपुर राठ के श्री परमानन्द का हाथ बड़ा जबर्दस्त था, उनकी ओजस्विनी वक्तृता ने उस दिन बड़ा काम किया था। हमारे राष्ट्र के बड़े बड़े नेता इस घटना को नहीं जानते, किन्तु लगातार सात दिन तक सिंगापुर पर इन गदर वालों का अधिकार था और वहाँ आजाद हिंद सरकार का राज्य था। अफसोस कि सिंगापुर भारत के अन्दर नहीं था, नहीं तो क्रान्ति की यह चिनगारी सारे भारत में फैल जाती और उस अग्नि में ब्रिटिश साम्राज्य दग्ध हो जाता। बड़ी मुश्किल से रूसी, जापानी अंग्रेज़ी जंगी जहाज़ों की सहायता से यह गदर दबाया गया इन सात दिनों के आरम्भ में गोरी फौज और हिन्दुस्तानी फौजों में जहाँ जहाँ मुठभेड़ हुई वहाँ वहाँ हिन्दुस्तानियों ने गोरों को बुरी तरह हराया। जब रूसी, जापानी और अंगरेजी जहाज़ी बेड़े इस प्रकार आ गये तो भी दो दिन तक हिन्दुस्तानी फौज उनसे बड़ी बहादुरी से लड़ती रही, किन्तु इतनी बड़ी फौज के साथ वे कब तक लड़ते? वे धीरे धीरे इधर उधर जंगलों में भाग निकले।

सिंगापुर का सबक

सिंगापुर का सबक यह है कि क्रान्तिकारीगण बड़ी आसानी से हिन्दुस्तानी फौजों से गदर करा सकते हैं। आगे के क्रान्तिकारी इस बात को याद रक्खेंगे। किन्तु साथ ही साथ वे याद रक्खें कि जनता के सक्रिय सहयोग के बिना कोई क्रान्ति सफल नहीं हो सकती और यदि सफल भी हो जाय तो वह जनता के हक में नहीं होगी। न उस क्रान्ति से जनता के दुख दूर होंगे न राष्ट्र की बागडोर उनके हाथ में आयेगी। फिर जोशीले नारे देकर फौजों से गदर करा देना कहां तक

उचित होगा तथा कहाँ तक खतरनाक होगा यह विचारणीय है। सिंगापुर के इस विद्रोह के विषय में अंग्रेजी अखबारों में केवल इतना छप गया कि एक दङ्गा हुआ था जो दबा दिया गया और परिस्थिति काबू में है।

मद्रास में क्रांतिकारी आन्दोलन

और प्रान्तों के साथ तुलनात्मक दृष्टि से देखा जाय तो मद्रास का प्रान्त बहुत ही शान्त रहा है। आज भी वहाँ उग्रवादियों की दाल गलती नहीं दिखाई पड़ती। सिडीशन कमेटी की रिपोर्ट में दिखलाया गया है कि मद्रास में राजद्रोह की भावनाओं का सूत्रपात विपिन चन्द्र-पाल नामक प्रख्यात बङ्गाली नेता के दौरे से हुआ, उन्होंने विशेषकर स्वदेशी, स्वराज्य तथा बायकाट पर भाषण दिये। इसमें संदेह नहीं कि विपिन बाबू एक बहुत बड़े वक्ता थे, किन्तु यह कहना कि उन्हीं की वक्तृताओं के कारण वहाँ पर आन्दोलन का सूत्रपात हुआ गलत होगा। कहा जाता है कि राजमहेन्द्री में उन्हीं के जाने के फलस्वरूप सरकारी कालेज में लड़कों की एक हड़ताल हुई। २ मई को विपिन बाबू ने जो वक्तृता दी थी, बताया जाता है कि उसमें उन्होंने बतलाया था कि अँग्रेजों की यह चाल है कि वे इस देश में अपने को जनप्रिय बनावें किन्तु हमारा यह कर्तव्य है कि हम सरकार की इस माया को चलने न दें, इस चाल को व्यर्थ कर देने में ही हमारे आन्दोलन की भलाई है।

१०८ अंग्रेजों की कुर्बानी की योजना

कहा जाता है कि विपिनचन्द्र के पीछे एक मदरासी सज्जन बम बनाना सीखने के पीछे पड़ गए थे। वे कहते थे कि हमें विदेशों में जाकर बम बनाना सीखना चाहिए, क्योंकि बम ऐसी चीज है जिससे

अखिल रूसके जार भी थर थर काँपते थे। वे यह भी कहते थे किकिसी अमावस्या की रात्रि को एक योजना बनाई जाय जिसमें १०८ अँग्रेजों की कुरबानी की जाय। कहा जाता है कि विपिनपाल के दौरे के बाद मदरास में एक राजद्रोह की लहर दौड़ गई। सुब्रह्मन्यशिव तथा चिदम्बरम पिल्ले को राजद्रोहात्मक वक्तृताओं के सम्बन्ध में सजायें दी गईं। इन वक्तृताओं में से एक का सम्बन्ध विपिन चन्द्रपाल से था, उस वक्तृता मे विपिन बाबू को स्वराज्य का सिंह बताया गया था। ६ मार्च को चिदम्बरम पिल्ले ने एक वक्तृता तिनेवेली नामक स्थान में दी जिसमें विपिन चन्द्र की तारीफ की गई थी और लोगों से कहा गया था कि वे सब विदेशी वस्तुओं का बायकाट करे। यह भी बताया गया था कि ऐसा करने पर ३ माह के अन्दर स्वराज्य मिल जायगा। पुलिस की रिपोर्ट के अनुसार सरकारी जायदाद को भी इस अवसर पर नुकसान पहुँचाया गया और करीब करीब हर एक सरकारी इमारत पर ईटें पत्थर फेंके गए। कई जगह पर आग भी लगा दी गई।

१७ मार्च १६०८ को बताया जाता है कि कृष्णस्वामी नामक एक व्यक्ति ने कोयम्बटूर के करूर नामक स्थान में एक वक्तृता दी जिसमें बतलाया कि जब टिबटिकोरिन के लोगों ने इतना उत्साह दिखलाया कि सरकारी इमारतों तक पर विदेशी होने के कारण हमला कर दिया तो क्या वजह है कि करूर में भी ऐसा न हो। कहा जाता है कि उसने यह भी कहा कि यहाँ पर एक देशी फौज है जिसके लोगों को बहुत कम तनखाह मिलती है। फिर क्या वजह है कि वे स्वदेशी आन्दोलन के लिये अपनी मातृभूमि के सहायतार्थ अंग्रेजों के खिलाफ बगावत नहीं करते।

चिदम्बरम पिल्ले की गिरफ्तारी के सम्बन्ध में स्वराज नामक एक तेलगू साप्ताहिक ने लिखा "अरे फिरंगी! निष्ठुर बाघ! तुमने एक साथ तीन भलेमानुस भारतीयों को ग्रस लिया और सो भी बिना कारण। तुमने स्वय जो कानून बनाये, तुम उन्हें भी तो मानते नहीं जान पड़ते।

भय से व्याकुल हो के तुम ने न मालूम क्या क्या शरारतें की हैं, न मालूम तुम्हारे ख्याल कहाँ हैं। तुमने स्वयं अपना भंडाफोड़ कर दिया है क्यों कि तुम मान चुके हो कि भारत में राष्ट्रीयता की हवा उठते ही तुम्हारी सारी जड़ हिल चुकी है"

वंची ऐयर

ऐसे ही बहुत से जोशीले राष्ट्रीय साहित्य का उद्भव हुआ, किन्तु यह केवल साहित्य में ही न रहा बल्कि कार्य क्षेत्र में भी यह विद्रोह फूट निकला। नीलकंठ ब्रह्मचारी नाम का एक व्यक्ति शंकर कृष्ण ऐयर के साथ सारे मदरास प्रान्त का दौरा कर रहा था, और लोगों से स्वदेशी धारण करने तथा स्वराज्य के लिये युद्ध क्षेत्र में उतर पड़ने के निमित्त कहता था। जून १९ ९ में शंकर कृष्ण ने नीलकंठ को वंची ऐयर नामक एक व्यक्ति का परिचय कराया। दिसम्बर १९१० में वी० वी० एस ऐयर नामक एक व्यक्ति कर्मक्षेत्र में आया। व्यक्ति इंगलैंड में भी रह चुका था, और विनायक सावरकर तथा श्यामजी कृष्ण वर्मा से उसकी काफी घनिष्टता थी। यह व्यक्ति आकर पांडिचेरी में ठहरा। ९ जनवरी १९११ को वंची ने ३ माह की छुट्टी ली और पांडिचेरी गया। वहाँ वह पिस्तौल चलाना सीखता रहा। बाद को टिनेवेली षड् यन्त्र के गवाहों से पता लगा कि वंचि लोगों से कहा करता था कि अंग्रेजों को मारने से ही स्वराज्य मिलेगा, वह यह भी कहता था कि यह पवित्र काम उस जिले के मजिस्ट्रेट मिस्टर ऐश को मार कर के ही शुरू किया जाय। वंची यह भी कहा करता था जरूरत पड़ने पर पांडि-चेरी से अस्त्र-मिल सकते हैं।

टिनेवेली षड्यन्त्र के दौरान में जो तलाशियाँ ली गईं उनमें दो परचे मिले जिनके सम्बन्ध में यह लिखा गया था कि वे फिरंगी हत्यारे प्रेस में छपे हैं। एक परचे का नाम था "आर्यों को सन्देश" जिसमें कहा गया था "ईश्वर के नाम पर प्रतिज्ञा करो कि तुम अपने देश से

फिरंगी पाप को दूर करोगे, और स्वराज्य कायम करोगे। यह प्रतिज्ञा करो कि जब तक भारतवर्ष में फिरंगियों का राज्य है तब तक अपने जीवन को व्यर्थ समझोगे। जैसे तुम कुत्ते को मारते हो उसी प्रकार तुम फिरंगी का वध करो, तुम यदि छुरी पावो तो उसी से मारो, यदि कुछ भी न मिले तो ईश्वर के दिये हाथ से ही उसको मारो।"

दूसरे परचे का नाम था "अभिनव भारत समाज में प्रवेश के नियम," इस नाम से भी जाहिर होता है कि सावरकर का प्रभाव इस षड्यन्त्र पर था।

मिस्टर ऐश की हत्या ?

१७ जून १९११ को वंची ऐयर ने टिनेवेली के जिला मजिस्ट्रेट को एक रेल के जकशन पर गोली से मार दिया। जिस समय वंची ऐयर ने मजिस्ट्रेट को मारा था उस समय शंकरकृष्ण भी आस ही पास था। वंची ऐयर के जेब में तामिल में लिखा हुआ एक कागज मिला, जिसमें यह लिखा था कि प्रत्येक भारतीय स्वराज्य तथा सनातन धर्म को प्रतिष्ठित करने के लिये अंग्रेजों को यहाँ से निकालना चाहता है। उस परचे में यह भी लिखा था कि जिस देश पर राम, कृष्ण, अर्जुन, शिवा जी, गुरुगोविन्द आदि का राज्य था उसी पर एक गोमांस भक्षी जार्ज पचम का राज्य है, यह कितनी शर्म की बात है ? इस परचे में यह भी लिखा था कि तीन हजार मदरासी इस प्रतिज्ञा को कर चुके हैं अर्थात् उन्होंने जार्ज पंचम को मारने की प्रतिज्ञा की है।

पैरिस के क्रान्तिकारियों के साथ सम्बन्ध

मादाम कामा नामक एक क्रान्ति कारिणी पैरिस से एक अखबार निकालती थी, इस अखबार का नाम बन्देमातरम था। श्रीमती कामा सावरकर के तथा श्याम जी कृष्ण वर्मा के सहयोग काम में करने वाली क्रान्ति कारिणी थी। कहा जाता है कि बन्देमातरम के १९११ की मई संख्या में ऐसी बात थी जिससे आभास मिलता था कि ऐसी एक वारदात होने वाली है। इस लेख का उपसंहार यों किया गया था "सभा

में, बंगले में रेल के स्टेशन पर, गाड़ी पर जहाँ भी मौका मिले अंग्रेज़ों का बध किया जाय, इसमें आफिसर तथा साधारण अंग्रेजों में कोई भेद भाव न किया जाय। नाना साहब ने इस रहस्य को समझा था और अब हमारे बंगाली दोस्त भी इस बात को कुछ कुछ समझने लगे हैं। जो लोग ऐसे प्रयत्न करते हैं उनकी प्रचेष्टायें जययुक्त हो तथा उनके अस्त्र विजयी हों। अब हम अँग्रेजों से ये कह सकते हैं Dont shout till you are out of the wood.

जुलाई १९११ में लिखते हुये श्रीमती कामा ने यह लिखा कि हाल में जो हत्यायें हुई हैं, भगवत गीता से उनका समर्थन होता है। उन्होंने लिखा जब कि हिन्दुस्तान के कुछ गुलाम लंडन की सड़कों पर सीना फुला कर घूम रहे हैं और राजकीय सरकस में जार्ज पंचम के सामने दुनियाँ को दिखाकर सिजदा कर रहे हैं, उस समय हमारे दो नौजवानों ने टिनेवेली में मैमनसिंह ने अपने साहस-पूर्ण कार्यों द्वारा यह प्रमाणित कर दिया कि भारतवर्ष सो नहीं रहा है।" टिनेवेली की हत्या का पहिले ही वर्णन हो चुका है, दारोगा राजकुमार राय भी इसी जमाने में मैमन-सिंह में अपने घर से लौटते समय गोली से मार दिये गये थे।

सीडीशन कमेटी की रिपोर्ट के अनुसार मदरास प्रान्त में जो कुछ भी हुआ वह बाहर के लोंगो के कारण ही हुआ, अर्थात् उन्होंने बिपिन चन्द्रपाल तथा पेरिस और पाँडिचेरी के क्रांतिकारियों को ही यहाँ की बातों के लिये जिम्मेदार ठहराया। बात भी कुछ हद तक सच है। मद-रास प्रान्त कान्तिकारियों के लिए ऊसर साबित हुआ।

मध्य प्रान्त का क्रान्तिकारी जद्दोजेहद

जहाँ तक क्रांतिकारी आंदोलन का सम्बन्ध है, मध्य प्रांत बहुत पिछड़ा हुआ रहा। १९०७ में नागपुर में कांग्रेस का अधिवेशन होने वाला था, किंतु कांग्रेस के नरम और गरम दल में झगड़ा यहाँ तक पहुँच गया था कि, वहाँ से कांग्रेस का अधिवेशन हटा कर सूरत में कर देना पड़ा। नागपुर में गरम दल वालों का जोर था, स्थानीय अखबार सरकार की समालोचना में चूकते नहीं थे, लोकमान्य तिलक की केसरी के अनुकरण पर १९०७ की पहली मई से हिन्दी केसरी नाम से एक अखबार निकलने लगा। "देश सेवक" नाम का दूसरा राष्ट्रीय अखबार भी इसी युग में निकलता था, छात्रों में बड़ी बेचैनी थी, वह बेचैनी इतनी बड़ी हुई थी कि चीफ कमिश्नर ने पुलिस के आई० जी० के २२ अक्टोबर १९०७ के पत्र में लिखा, "जिस प्रकार से पुलिस नागपुर के छात्रों की उद्दंडता का मुकाबला कर रही है, वह मुझे बहुत नरम जान पड़ता है, यदि इसी प्रकार होता रहा तो नागपुर से सभी जिम्मेदार सार्वजनिक व्यक्ति भाग जायँगे। भविष्य के लिए मैंने यह निश्चय कर लिया है कि इस प्रकार की उद्दंदता दबाई जाय, मैंने कमिश्नर को लिखा है कि वे तमाम प्रधान शिक्षकों तथा कालिज के अध्यक्षों की एक सभा बुलावें, जिसमें इस बात पर वादविवाद हो कि किस प्रकार से अनुशासन कायम किया जा सकता है। मैं चाहता हूँ कि उद्दंड छात्रों के साथ पुलिस सख्ती से पेश आवे और उन्हें गिरफ्तार करे, तभी हम छात्रों में अनुशासन कायम करने में सफल होंगे। जिस प्रकार की घटनायें कि आज नागपुर में हो रही हैं उससे बड़ी बदनामी होती है और वह बन्द हो जानी चाहिये।"

अरविन्द घोष का आगमन

सूरत कांग्रेस जाते हुये अरविन्द घोष २२ दिसम्बर को नागपुर आये और इन्होंने स्वदेशी और बहिष्कार का समर्थन करते हुए वक्तृता दी, कांग्रेस से लौटते हुए भी वे नागपुर में उतरे, और उन्होंने फिर इन्हीं विषयों पर वक्तृता दी। इसके अतिरिक्त सूरत में जो तिलक तथा गरमदल वालों का नीति तथा ढङ्ग था उसका भी उन्होंने समर्थन किया। उन्होंने कहा, बङ्गाली और मराठे भाई-भाई हैं और उनको एक दूसरे के दुख में शामिल होना चाहिये। इस समय बंगाल में स्वदेशी और बहिष्कार का जोर है, महाराष्ट्र में भी ऐसा ही होना चाहिये। उन्होंने यह भी कहा—बंगाली बड़े जोरों से तकलीफ उठा रहे हैं, मराठों को भी ऐसा ही करना चाहिए।

खुदीराम और मध्यप्रान्त

बंगाल में जो तुमुल आन्दोलन चल रहा था उसका प्रभाव मध्य प्रान्त पर भी पड़ा, "देश सेवक" नामक जिस अखबार का पहिले उल्लेख किया जा चुका है, उसमें कई गरम लेख निकले। यदि रौलट साहब पर विश्वास किया जाय तो इस अखबार में एक लेख निकला था जिसमें कहा गया कि भारतीयों की सबसे बड़ी त्रुटि यह है कि वे बम बनाना नहीं जानते। इस अखबार में छपा था "अंग्रेजों के साथ इतने सालों रहने के बाद हम इतने गुलाम हो गए हैं कि छोटी-छोटी सी बात को देख कर ताज्जुब में आ जाते हैं। शिमला से लेकर सिंहल तक लोग कुछ बङ्गालियों ने जो दो तीन गोरों को यमपुर भेज दिया है इस पर आश्चर्य प्रकट करते हैं, किन्तु बम बनाना इतना आसान है कि प्रत्येक व्यक्ति इसे बना सकता है। प्रत्येक व्यक्ति का यह अधिकार है कि वह अस्त्र-शस्त्र का व्यवहार करे या बम बनावे। यदि मनुष्य के द्वारा बनाये हुये कानून हमें इस बात से रोकते हैं तो मजबूरन हमें उसे मानना भले ही पड़े, किन्तु हमें

उस पर आश्चर्य करने की कोई जरूरत नहीं है। यदि यह बात सच है कि खुदीराम के लिये बम कलकत्ते में ही बने थे, तो हमें बड़ी खुशी है। यह तो बहुत ही अच्छी बात है कि कोई भी किसी प्रकार का अपराध न करे, किन्तु जब हमें मजबूरी से अपराध करना पड़ता है तो उसके लिए हम सरकार को ही जिम्मेदार ठहराते हैं जो कि इस प्रकार हमें हथियार तक रखने की इजाजत नहीं देती।"

खुदीराम की अद्भुत प्रकार से निन्दा

इसके साथ ही इस अखबार ने खुदीराम की निन्दा भी की। उसने लिखा "खुदीराम बसू ने जो मिस्टर किंग्सफोड की जान लेने की कोशिश की वह कोई अच्छा काम नहीं था और उसका अनुकरण नहीं करना चाहिये। हम खुदीराम बसु के कृत्य की निन्दा करते हैं, किन्तु साथ ही हम सरकार से यह अनुरोध करते हैं कि वह हमें खुल्लमखुल्ला बम बनाने का अधिकार दे। कानून तोड़ कर बम बनाना निंदनीय है, और नौकरशाही के पिट्ठुओं को मारने से हमारी जाति का पुनरुद्धार नहीं हो सकता। पूर्ण स्वाधीनता प्राप्त करने के लिये यह अवश्यक नहीं है कि हम नौकरशाही के पिट्ठुओं की गुप्त हत्या करें। हमारे बंगाली दोस्तों ने इस बात को याद नहीं रक्खा इसका हमें दुख है, इसके साथ ही हम मिस्टर किंग्सफोड को बधाई देते हैं कि वे इस हमले से बच गये। फिर भी हम यह साफ कर देना चाहते हैं कि मिस्टर किंग्सफोड ने मजिस्ट्रेट की हैसियत से जो देश भक्तों को सजायें दी वह न्याय का गला घोटना था, तथा उनकी सारी कारवाई शैतानी की थी।"

"देश सेवक" के इस लेख का यदि विश्लेषण किया जाय तो यह मालूम होगा कि लेखक ने इसमें बहुत सी बातें तो इस लिये लिख दी कि कहीं वह कानून के पंजे में न आवे। यह लेख १६०८ के ११ मई के अंक में प्रकाशित हुआ था।

"हिंदी केसरी का मत"

१६ मई की हिन्दी केसरी ने लिखा था कि युगान्तर के सम्पादक

पर मुकदमा चल रहा है, किंतु इससे क्या, युगान्तर तो बराबर जारी है। मानिक तल्ला में बम पाये जाने के सिलसिले में इसमें लिखा था कि यह तो भारत में क्रांति करने का प्रयास है। "क्या यह कहा जा सकता है कि यदि हम डकैत, चोर, गठकटे, तथा लुटेरों के खिलाफ विद्रोह करें तो वह कोई अपराध है? अंग्रेज हिन्दुस्तान के बादशाह नहीं हैं इसलिये वे लुटेरों की श्रेणी में आते हैं।'

लोकमान्य का जन्म-दिवस

१८ जुलाई को लोकमान्य का जन्म दिवस पड़ता था, उस दिन कुछ झगड़े इधर उधर हो गये। लोकमान्य के प्रति सहानुभूति प्रकट करने के लिये जो सभा बुलाई गई थी उसको सरकार ने बन्द कर दिया। ६ व्यक्तियों को इसी दिन के सम्बन्ध में सजायें हुईं, कुछ अखबारों के सम्पादकों पर मुकदमे चले, तथा प्रान्तीय सरकार की तरफ से जिले वालों को हिदायत की गई कि चलते फिरते वक्ताओं पर रोक टोक की जाय।

मल्का की मूर्ति पर हमला

बंगाल की घटनाओं से मध्य प्रान्त पर कोई ऐसा प्रभाव इस समय नहीं पड़ा जिससे कि कोई अफसर आदि मारा गया हो, किन्तु फिर भी इतना तो हो ही गया कि १९०८ में मल्का विक्टोरिया की मूर्ति के हिस्सों को लोगों ने तोड़ा तथा उसके मुँह में कोलतार लगाया गया। इसके अतिरिक्त कोई हमले आदि नहीं हुए।

नलिनी मोहन मुकर्जी

१९१५ में जिस समय उत्तर भारत में रासविहारी एक विराट क्रांति का आयोजन कर रहे थे उसी के सिलसिले में एक युवक नलिनी मोहन मुकर्जी जबलपुर की फौज को गदर के लिये तैयार करने के लिये भेजे गये, किन्तु नलिनी को कोई सफलता नहीं मिली, बाद को नलिनी मोहन को बनारस षड्यन्त्र में सजा दी गई थी। इस सिलसिले में हम बनारस षड्यन्त्र का थोड़ा सा वर्णन करेंगे।

बनारस षड्यन्त्र और मध्य प्रान्त

जैसे नलिनी मोहन को जबलपुर का चार्ज दिया गया था, उसी प्रकार श्री दामोदर स्वरूप सेठ को प्रयाग केन्द्र सौंपा गया था। विभूति और प्रियनाड को बनारस छावनी का काम सौंपा गया था। रासबिहारी स्वयं सचीन्द्र नाथ सान्याल तथा पिंगले लाहौर, दिल्ली, मेरठ, आदि में काम करने वाले थे। मनीलाल तथा विनायक राव कापले बम लाने के लिये बंगाल भेजे गये। विल्पव की तारीख २१ निर्दिष्ट हुई थी, किन्तु इस तारीख को बदल कर १६ फरवरी कर दिया गया था। बनारस में काम करने वालों के इस परिवर्तन का पता नहीं लगा, और वे यह देखते रहे कि तार कब कहता है ताकि पता लगे कि क्रांति हो गई। जैसा कि पहिले बताया जा चुका है यह प्रयत्न असफल रहा। और लोग पकड़े गये। बनारस षड्यन्त्र में विभूति मुखबिर हो गया। इन सबके ऊपर भारत रक्षा कानून के अनुसार मुकदमा चला और शचीन्द्र बाबू को आजन्म काले पानी का दंड दिया गया। रासबिहारी पुलिस के हाथ न लग सके, शचीन्द्र और गिरजा बाबू जाकर उन्हें जहाज पर चढ़ा आये।

इस मुकदमे की तलाशी में बहुत से अस्त्र शस्त्र तथा पर्चे मिले। सब समेत १० आदमियों की सजायें हुई, शचीन्द्र बाबू इसके नेता माने गये। इस षड्यन्त्र में कोई डकैती या हत्या नहीं थी, किन्तु इससे भी जो खतरनाक बात है फौजों को भड़काना, वह इसका मुख्य अभियोग था।

नलिनी मोहन से बाद को नलिनी कान्त घोष भी जबलपूर गये। यह नलिनी कान्त वही व्यक्ति है जिसकी बाद को आसाम की गौहाटी में गिरफ्तारी हुई। नलिनी के अतिरिक्त विनायक राव कापले भी जबलपुर गये और वहाँ उन्होंने फरारी के लिये जगह प्राप्त करने की तथा एक शाखा खोलने की चेष्टा की। इन्होंने ७ आदमियों को अपने दल में भरती किया, इसमें दो छात्र, दो शिक्षक, एक वकील, एक

मुन्शी, तथा एक दरजी था। बाद को ये सातों गिरफ्तार कर लिये गये, किन्तु इसमें से एक छात्र तथा दरजी छोड़ दिया गया। और पाँच व्यक्तियों को नजरबन्द कर विनायक राव स्वयं प्रान्त से चले गये। और वहीं पर उनके किसी साथी ने उनको गोली लखनऊ में मार दी। कहा जाता है इसका कारण यह था कि विनायक के ऊपर दल का संदेह था कि वह चरित्र भ्रष्ट हो गया है तथा दल का रुपया खा गया है, इसी हत्या के सम्बन्ध में सुशीलचन्द्र लहड़ी एम० ए० की फाँसी हुई।

मुसलमान क्रान्तिकारी दल

हिन्दू, मुसलमान, अंगरेज

भारतवर्ष का साम्राज्य मुसलमान शासकों के हाथ से अंग्रेजों के हाथ में आया, इसलिये होना तो यह चाहिये था कि मुसलमानों में और अंग्रेजों में चिर शत्रुता होती, और मुसलमान अंग्रेजी साम्राज्य के विरुद्ध बारबार विद्रोह तथा षड्यन्त्र करते, किन्तु हुआ ठीक इसके विपरीत। इसके कई कारण बताये जाते हैं, एक उसमें से यह है कि मुगल तथा पठान साम्राज्य के युग में मुसलमानों ने हिन्दुओं पर बहुत कुछ ज्यादती की, इसलिए वे समझते थे कि हिन्दुओं का राज्य हुआ तो कहीं वे बदला न लेने लगें, यह स्वाभाविक है कि इस कारण वे हिन्दू-राज्य पर अंग्रेजी राज्य को तरजीह दें।

मैं इस कारण को ठीक नहीं समझता, वस्तुस्थिति यह है कि जब ब्रिटिश साम्राज्यवाद भारतवर्ष में आया तो उसे अपने लिए एक मित्र की आवश्यकता पड़ी। वर्गों में तो उसने पहिले राजाओं तथा नवाबों को अपनाया, किन्तु इससे काम न चला, क्योंकि जनता में फूट इस प्रकार के विभाजन से न कराई जा सकी, जनता तो इन राजाओं को

अपने से हमेशा अलग समझती ही थी। ब्रिटिश साम्राज्यवाद ने इसलिए दूसरा रास्ता ढूँढ़ा, और वह रास्ता यह था कि किसी एक खास धर्म के लोगों को नौकरी आदि में तरजीह दी जाय जिससे कि हमेशा इनमें आपस में लातजूता होता रहे। शुरू शुरू में तो अंग्रेजों ने हिन्दुओं को अपनाया, तथा हिन्दुओं ने अर्थात् हिन्दू विशेषकर बंगाली मध्यम श्रेणी ने अंग्रेजी राज्य तथा उसकी शिक्षा आदि को अपनाया, इसका फल इस श्रेणी के हक में बहुत अच्छा हुआ अर्थात् इस श्रेणी को नौकरियाँ आदि मिलीं। नतीजा यह हुआ कि यह श्रेणी अपने को ब्रिटिश साम्राज्यवाद की साझेदार समझने लगी, किन्तु नौकरियों की एक हद होती है। जिस समय ब्रिटिश साम्राज्यवाद भारतवर्ष में नित्य नई नई विजय प्राप्त कर रहा था, तथा नये नये विभाग खोल कर अपने नागपाश से भारतवर्ष की गुलामी को और पुख्ता कर रहा था, उस समय नौकरियाँ बढ़ती थीं, सरकार मध्यवित्त श्रेणी को खुश कर सकती थी; किन्तु जब नौकरियों का बढ़ना बन्द हो गया, और उधर मध्यम श्रेणी का संख्या बढ़ने लगी, केवल इतना ही नहीं उसका हौसला और माँगें बढ़ने लगीं, तब सरकार को बड़ी परेशानी का सामना करना पड़ा। धीरे धीरे इस श्रेणी में असन्तोष बढ़ने लगा। यह श्रेणी यों ही बहुत अग्रसर और शिक्षित थी, साथ ही साथ यह ब्रिटिश साम्राज्यवाद के हथकंडों से परिचित थी, इसका हौसला भी बढ़ा हुआ था, अतएव यह जब बिगड़ खड़ा हुआ तो ब्रिटिश साम्राज्यवाद को को बहुत बुरा मालूम हुआ, क्योंकि इस विद्रोह को उसने एक प्रकार से नमकहरामी के तरीके पर लिया।

मुसलमान मध्यम श्रेणी

जब मुसलमान मध्यम श्रेणी ने शिक्षा तथा शासन को अपनाने से हिन्दू मध्यम श्रेणी को जो फायदे हुए उनको देखा, तो वह भी इस क्षेत्र में आगे बढ़ी। बहुत दिनों तक तो मुसलमान मध्यम श्रेणी खोये हुये साम्राज्य को लौटा पाने का स्वप्न देख रही थी, इसलिये उसने

शुरू शुरू में अँग्रेज़ी शिक्षा तथा शासन को नहीं अपनाया, किन्तु जब यह स्वप्न भङ्ग हो चुका, तब नौकरियों के लिये वह भी दौड़ने लगी। भारतीय मुसलमानों में इस प्रकार के झुकाव के कारण अलीगढ़ विश्व-विद्यालय तथा मुस्लिम लीग ऐसी संस्थाओं की उत्पत्ति हुई। इस झुकाव के फलस्वरूप मुसलमानों में राजभक्ति की एक लहर सी दौड़ गई, मुस्लिम लीग के उद्देश्यों में एक यह भी था "मुसलमानाने हिन्द के दिल में ब्रिटिश गवर्नमेंट की निस्बत वफादाराना ख्यालात पैदा करना, और हुकूमत की कार्रवाई के मुताल्लिक जो गलतफहमी पैदा हो जाय, उस को रफा करना।"

मुसलमान मध्यम श्रेणी चूंकि राजभक्ति के क्षेत्र में देर में आई इसलिये वह हिन्दू मध्यम श्रेणी से कहीं अधिक खैरख्वाही दिखाने लगी। ब्रिटिश साम्राज्यवाद ने मुसलमानों के इस नये झुकाव को खूब अपनाया. और धीरे धीरे हिन्दू मध्यम श्रेणी की जगह पर मुस्लिम मध्यम श्रेणी सरकार की सुहागिन हो गई। ब्रिटिश साम्राज्यवाद की चाल सफल हो गई, दोनों सम्प्रदायों में फूट का एक अच्छा सिलसिला निकल आया। ब्रिटिश साम्राज्यवाद को भी मुस्लिम मध्यम श्रेणी को अपनाने में फायदा था, क्योंकि अल्प संख्यक सम्प्रदाय के साथ दोस्ती करने में ही फायदा रहता है, अधिक संख्या के साथ रियायत करने पर शोषण किसका होता!

वंगभङ्ग और मुसलमान मध्यम श्रेणी

वङ्ग भङ्ग एक तरह से भारतवर्ष का सब से पहिला व्यापक आन्दोलन था, किन्तु इसमें मुख्यतः बङ्गाली हिन्दुओं ने भाग लिया, मुसलमान मध्यम श्रेणी इसके विरुद्ध थी। १६०६ के मुस्लिम लीग के अधिवेशन में एक प्रस्ताव इस आशय का पास हुआ "तकसीमें बङ्गाल मुसलमानों के लिये निहायत मुफीद है, इसके खिलाफ शोरिश और बायकाट की तहरीकें बिलकुल बेजा और मजमूम हैं।" यह चर्चा केवल एक ही अधिवेशन में नहीं आई, बल्कि बाद को जब वंग भंग रद्द कर

दिया गया, तब भी इसकी निंदा की गई। मार्च १९१२ को मुस्लिम लीग का वार्षिक अधिवेशन ढाके में नवाब सलीमुल्ला खां के सभापतित्व में हुआ। नवाब साहब ने अपने अभिभाषण में बंग भंग को रद्द करने की निन्दा की और हिज हाईनेस सर आगा खाँ पर कड़े शब्दों में आपत्ति की कि वह सारे मुस्लिम जनमत का विरोध होते हुए भी वंगभंग की मनसूखी को मुसलमानों के लिये अच्छी समझते हैं। इसी के बाबत उस ज़माने में मौलाना शिवली ने लिखा "हिज़ हाईनेस सर आगा खाँ को हम ज़रूर बदगुमानी की नजर से देखते हैं; इसलिये नहीं कि उनके किसी व्यक्तिगत कार्य से हमें घृणा है, बल्कि हम उनसे इस लिये नाराज हैं कि वह तकसीमें बंगाल की मन्सूखी और ढाका युनिवर्सिटी का मुसलमानाने बंगाल के हक में मुफीद समझते हैं, और इस की कोई माकूल बजह बयान नहीं करते, ताहम मुसलमानों को गवर्नमेन्ट का शुक्रिया अदा करने की हिदायत फरमाते हैं।"

सर्वइस्लामवाद

इस प्रकार देखा गया कि मुस्लिम मध्यवित्त श्रेणी का रवैया शुरू से ही कुछ और था, किन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि ब्रिटिश साम्राज्यवाद से वे बराबर खुश रहे। वंगभंग को वे भले ही अपने लिये अच्छा समझती किन्तु ब्रिटिश साम्राज्यवाद की हुई बहुत सी अन्तर्राष्ट्रीय बातें उसे बिलकुल नागवार गुजरती थीं। बात यह है कि हिन्दुस्तान के बाहर भी मुसलमान थे, यहाँ के पढ़े-लिखे मुसलमान उनसे सहानुभूति रखते थे और यदि भारत के बाहर की मुसलमान ताकतों के विरुद्ध ब्रिटिश साम्राज्यवाद से कोई बात सरजद होती तो इनको ठेस लगती, और वे ब्रिटिश साम्राज्य से अपनी खैरख्वाही की प्रतीज्ञा भूलकर असंतुष्ट हो जाते। यहाँ के पढ़े-लिखे मुसलमानों में यह सर्व इस्लामी भावना इतनी जोरदार थी कि श्री शचीन्द्रनाथ जी सान्याल ने अपनी पुस्तक में तो यहाँ तक लिख डाला "मुसलमानों के साथ मिलकर हमारी यह धारणा हो गई है कि हमारे देश के मुसलमान

तुर्की, अरब, ईरान या काबुल की ओर जितनी ध्यान रखते हैं, उतना भारत की ओर नहीं रखते। वे तुर्की के गौरव से अपने को जितना गौरवान्वित समझते हैं, भारतवासी या हिन्दुओं के गौरव से उतना गौरवान्वित नहीं समझते × × × मुसलमान भारतवर्ष को हिन्दुओं की तरह प्यार नहीं करते।"

शचीन बाबू की ये बातें केवल आंशिक रूप से ही सत्य हैं, वे यदि मुसलमान शब्द की जगह मध्यम श्रेणी तथा उच्च श्रेणी का मुसलमान लिख दें तो मुझे उनकी बातें मान लेने में ज्यादा हिचकिचाहट न हो, मैं तो समझता हूँ। एक ग्रामीण मुसलमान भारतवर्ष को उतना ही प्यार करता है, जितना एक ग्रामीण हिन्दू। मैंने हज से लौटे हुए बहुत से अनपढ़ मुसलमानों से बहुत अंतरंग रूप से बातचीत की है, यह पूछे जाने पर कि जब वे अरब में थे तो कैसा मालूम होता था तो वे हमेशा कह देते थे कि साहब वतन की बात और ही है। मुस्लिम मध्य श्रेणी तथा ब्रिटिश साम्राज्यवाद के प्रचारकार्य के फल स्वरूप संकुचित भावनायें बहुत कुछ मुस्लिम जनता में फैल गई हैं, यह मैं मानता हूँ।

अन्तर्राष्ट्रीय इस्लामी जगत की घटनायें

क्रिमीयन युद्ध के समय से ही भारतीय पढ़े लिखे मुसलमान तुर्की के साथ हमदर्दी रखने लगे थे। इटली और तुर्की में युद्ध से बल्कान प्रायद्वीप की इधर की घटनाओं से यह हमदर्दी और भी दृढ़ हो गई थी। ईरान को जिस प्रकार जार ने, तथा ब्रिटिश सरकार ने ईरान की राय के बगैर तथा एक तरह से उसे पराधीन बनाकर अपने अपने प्रभावकेन्द्रों में बाँट लिया था, उससे भी मुसलमान जगत् काफी असन्तुष्ट हुआ था। फिर बल्कान उपद्वीप के बखेड़ों में तुर्की जब अकेला पड़ गया तो मुसलमान जगत में ब्रिटेन की निष्पक्षता को बहुत शिकायत की गई, क्योंकि कई बार ब्रिटेन तुर्की की तरफदारी कर चुका था। यह शिकायतें इसलिए हुईं कि भोले भाले मुसलमान यह नहीं समझते थे कि ब्रिटिश साम्राज्यवाद ने जो तुर्की को मदद दी थी, वह

तुर्की की भलाई के लिए नहीं बल्कि अपने हक में Balance of Pawer यानी शक्ति का भारसाम्य कायम करने के लिए। बहुत से लोगों ने तो साफ कहा कि ब्रिटेन किसी के तरफ भी नहीं है। वह तो अपना ही मतलब हल करना चाहता है। कुछ मुस्लिम मध्यम श्रेणी के अखबारों ने तो यहाँ तक कहा कि यदि ब्रिटिश साम्राज्यवाद का यही रवैया रहा तो एशिया यूरोप कहीं भी इस्लाम की ताकत नहीं रहेगी। भारत के बाहर की इस्लाम दुनिया ने इस बात का इतना प्रचार किया कि कुछ लोग ब्रिटेन को खास कर इस्लाम की आशाओं पर पानी फेरनेवाला समझने लगे। हम पहिले ही वर्णन कर चुके हैं कि सर्व इस्लामवाद के अपने जमाने के सब से बड़े हामी अनवर पाशा ब्रिटेन के सम्बन्ध में क्या ख्याल रखते थे।

महायुद्ध का समय

महायुद्ध में रणक्षेत्र में जर्मनों का पक्ष लेकर तुर्की के प्रवेश करते ही हिन्दुस्तान के मुसलमानों में एक बिजली सी दौड़ गई। सरकार ने भी इस बात को महसूस कर लिया कि भारत में इस युद्ध घोषणा के विकट परिणाम हो सकते हैं। ब्रिटिश सरकार की ओर से फौरन यह एलान किया गया "ब्रिटेन तुर्की से लड़ना नहीं चाहता है, तुर्की तो व्यर्थ ही जर्मनी के इशारे पर इस युद्ध में कूद पड़ा। सरकार फिर भी वादा करती है कि वह किसी भी हालत में अरब के तीर्थों तथा इराक के मजारों पर हमला नहीं करेगी, किन्तु वह चाहती है कि हिन्दुस्तान के मक्कायात्री सुरक्षित रहें।" इसके साथ ही सरकार के इशारे पर निजाम ने एक पत्र प्रकाशित कराया, जिसका उद्देश्य मुस्लिम जनता को शांत करना था, किन्तु सब लोग सरकार के इस चकमे में नहीं आये, असन्तोष बढ़ता ही गया।

मुजाहिदीन

उत्तर पश्चिम सीमान्त प्रदेश में एक फिरका है जिसको मुजाहिदीन कहते हैं। इन मुजाहिदीन के उपनिवेश को स्थापित करने वाले राय

बरैली जिले के एक मुसलमान सैयद अहमद शाह थे। ये बहुत ही कट्टर वहाबी थे। संक्षेप में वहाबी उन लोगों को कहते हैं जो अरब के १८ वीं सदी के एक सुधारक अब्दुल वहाब के अनुयायी है, ये लोग कुरान की शाब्दिक व्याख्या को मानते हैं, और कुरान के जो और माने लिखे गये हैं न उन्हें मानते हैं, न मुल्लाओं को मानते हैं। सैयद अहमद वहाबी मत अवलम्बन करने के अनन्तर १८२२ में मक्का गया, और वहाँ से लौटकर सन् १८२४ में इधर उधर घूम कर अपने चेलों की संख्या बढ़ाता रहा। अन्त में वे पेशावर के पास पहुँचे, और एक उपनिवेश की स्थापना की। इस उपनिवेश का इतिहास बड़ा विचित्र है। असल में इस उपनिवेश को स्थापित कर सैयद अहमद ने चाहा था कि पंजाब के सिक्ख राज के विरुद्ध जेहाद की घोषणा की जाय, किन्तु यह जेहाद कुछ सफल नहीं रहा। कुछ भी हो यह उपनिवेश रह गया, और इसमें बसने वाले कट्टरपन के लिये मशहूर हो गये, इसके रहने वाले भारतवर्ष को अपने रहने के अयोग्य समझते हैं क्योंकि यह दारुल हरब हैं, अर्थात् ऐसा देश है जहाँ पर मुसलमानों का राज्य नहीं हैं। ये लोग हमेशा जेहाद प्रचार करते रहे हैं, और इनको भारतवर्ष के कट्टर मुसलमानों से बराबर कुछ न कुछ सहायता मिलती रही है। गदर के जमाने में ये लोग गदर करने वालों के साथ मिल गये, और यह कोशिश की कि सीमाप्रान्त पर आक्रमण किया जाय, किन्तु इनको यह चेष्टा सफल नहीं हुई। सन् १५ में इन लोगों में ब्रिटिश फौज के खिलाफ लड़ाई की, जिसके फलस्वरूप रुस्तम और शब्कदर नामक स्थानों में लड़ाइयाँ हुईं। शब्कदर की लड़ाई के बाद देखा गया कि उनमें से १५ जो कि काले कपड़े पहने हुए थे रणक्षेत्र में मरे पड़े हुये थे, इन लोगों की वजह से ब्रिटिश सरकार को काफ़ी परेशानी रही हैं।

मुहाज़िरीन

सन् १५ में लाहौर के १५ छात्रों ने अपना कालिज छोड़ दिया

और जाकर मुजाहिदीन में मिल गये। यहाँ से ये काबुल गये, किन्तु काबुल की सरकार ने इन्हें सन्देह पर गिरफ्तार कर लिया। बाद को जब इन लोगों ने सबूत दिया कि यह ब्रिटिश खुफिया नहीं है, तब ये छोड़े गये, किन्तु फिर भी इन पर बराबर निगरानी बनी रही। दो तो भारत लौट आये। तीन रूस के ज़ार शाही सरकार द्वारा गिरफ्तार कर लिये गये, और अंग्रेजों के हाथ सौंप दिये गये। इन लोगों ने सरकार से माफी माँगी और इसलिये ये माफ कर दिये गये। इन १५ आदमियों को उनके प्रशंसक लोग मुहाजिरीन कहते हैं, इसका मतलब यह है कि ये लोग रसूले इस्लाम का अनुकरण कर अपने घर से भाग गये थे। सिडीशन कमेटी की रिपोर्ट में रौलट साहब लिखते हैं कि उन्होंने इनमें से दो के बयान पढ़े। एक ने यह बतलाया था कि उसने जो कुछ भी किया वह एक पुस्तिका के प्रभाव में आकर किया जिसमें यह लिखा था कि तुरकी के सुलतान को यह डर है कि ब्रिटिश साम्राज्यवाद मक्का और मदीना पर हमला करेगा, इसलिये सब मुसलमानों का कर्तव्य है कि वे इस काफिर शासित मुल्क को छोड़ कर इसलामी देशों में चले जाँय और वहाँ से सब गैर मुसलमानों के विरुद्ध जेहाद की घोषणा करें। दूसरे छात्र को इस वजह से जोश आया था कि उसने सुलतान के एक एलान को पढ़ा था, और एक ब्रिटिश अखबार में एक तस्वीर देखी थी जो मुसलमानी भावों को ठेस पहुँचाती थी। जो कुछ भी हो इसमें कोई सन्देह नहीं कि इन छात्रों का असतोष कोई गहरा नहीं था, इसलिये जो कुछ भी इन्होंने किया उसमें एक नौजवानी के जोश के अलावा कोई बात नहीं थी इसीलिये उन लोनों ने जो कुछ भी किया उसमें कोई गहराई न आ सकी, न वे किसी प्रकार कुछ कर ही सके।

१६१७ की जनवरी में पता लगा कि पूर्व बंगाल के रंगपूर और ढाका के जिलों से ८ मुसलमान नौजवान जाकर मुजाहिदीन में मिल गये, १६१७ के मार्च में दो बंगाली मुसलमान सीमा प्रान्त में गिरफ-

तार हुये, जिनके पास ८ हजार रुपये पाये गये, ये रुपये इसी मुजाहिदीन उपनिवेश में गुप्त रूप से भेजे जा रहे थे। ये दो नौजवान कुछ दिनों तक मुजाहिदीन के उपनिवेश में रह चुके थे, और वहाँ रहने के बाद अपने जिलों में चन्दा इक्कट्ठा करने गये थे।

केवल यह कहना कि सारा सीमाप्रान्त का झगड़ा इन्हीं कट्टर पंथियों का उठाया हुआ था, गलत होगा, क्योंकि सीमा प्रान्त में ब्रिटिश नीति से काफी असंतोष था। सरकार की बराबर सीमा प्रान्त के बारे में यही नीति रही कि धीरे धीरे आगे बढ़ा जाय, जिसको अंग्रेजी में peaceful penetration की नीति कहते हैं। वे लोग नहीं चाहते थे कि गुलाम हों, और इसलिए सरकार के आक्रमण के विरूद्ध हर तरीके से लड़ने के लिये तैयार रहते थे।

रेशमी चिट्ठियों का षड्यंत्र

सन् १९१६ में सरकार को यह पता लगा कि भारतवर्ष के अन्दर एक विराट षड्यंत्र इस उद्देश्य से हो रहा है कि ब्रिटिश शासन का तखता उलट दिया जाय। यह षड्यंत्र मुसलमानों का ही षड्यंत्र था। योजना यह थी कि सीमान्त प्रदेश से भारतवर्ष पर मुसलमानों का हमला होगा, और उसके साथ ही यहाँ मुसलमान विद्रोह में उठ खड़े होंगे। यह एक मजे की बात है कि इस प्रकार भारत में ब्रिटिश शासन को उलटने के षड्यंत्र में केवल मुसलमानों से ही उम्मीद की गई कि वे विद्रोह करेंगे। बात यह है कि यह आन्दोलन राजनैतिक होने पर भी इसका दृष्टिकोण धार्मिक याने सर्व इस्लामी था, इसलिये यह आन्दोलन ही बहुत कुछ गलत था।

१९१५ के अगस्त में मौलवी ओबेदुल्ला सिंधी तीन साथियों के साथ अर्थात ओबेदुल्ला, फतह मुहम्मद और मुहम्मद अली के साथ सरहद पार कर गये। ओबेदुल्ला का पूर्व परिचय यह है कि वे पहिले सिक्ख थे, बाद को मुसलमान हो गये, और देवबन्द के मुसलिम विद्यापीठ में मौलवी होने की तालीम पा चुके थे। वहाँ पर ओवेदुल्ला ने अपने विचारों को

अपने सहपाठियों के सामने रखा, ये विचार कुछ सुलझे हुये तो नहीं थे किन्तु इन विचारों में तड़पन थी, आग थी और ब्रिटेन के विरुद्ध विद्वेष था। ये विचार बहुत से सहपाठियों को पसन्द आये, यहाँ तक कि मौलाना महमूद हुसेन जो कि इस दरसगाह के सब से बड़े अध्यापक थे, उनके प्रभाव में आ गए। ओबेदुल्ला की योजना कुछ इस प्रकार थी कि मौलवियों के जरिये से भारत भर में सर्वइस्लामवाद तथा ब्रिटिश विद्वेष का प्रचार किया जाय, और इस प्रकार एक वातावरण पैदा किया जाय जिसमें अँग्रेजों के विरुद्ध विद्रोह सफल हो सके। किन्तु उनकी इस योजना को संस्था के मैनेजर तथा कमेटी ने पसन्द न किया, और उन्हें तथा उनके कुछ खास साथियों को निकाल बाहर किया। इस प्रकार ओबेदुल्ला की यह योजना जिस रूप में वे चाहते थे, उस रूप में कार्यरूप में परिणत न हो सकी, किन्तु ओबेदुल्ला इससे दबने वाला आदमी नहीं था।

मौलाना महमूद हुसेन उस संस्था में रह ही गये थे, इसलिये ओबेदुल्ला बराबर उनसे मिलता रहा, केवल यही नहीं सीमाप्रांत के बाहर के लोग भी आ आकर मिलते जुलते रहे। १६१५ के १८ सितम्बर को मौलाना महमूद हुसेन भारतवर्ष के बाहर चले गये, किन्तु वे ओबेदुल्ला की तरह उत्तर से न जाकर समुद्र मार्ग से हेजाज गये।

बाहर जाकर ओबेदुल्ला मौलाना तथा उनके साथी बराबर यह कोशिश करते रहे कि मुसलमान स्वतंत्र राष्ट्र भारतवर्ष पर हमला करें, और उसके साथ ही साथ हिन्दुस्तान में एक विद्रोह हो। भारत के बाहर जाने के पहले ओबेदुल्ला ने दिल्ली में एक मकतब खोला था जिसका उद्देश्य इन्हीं सब बातों का प्रचार करना था। ओबेदुल्ला ने पहिले तो मुजाहिद्दीन से भेंट की, फिर वह काबुल गया। वहाँ पर उसने तुरकी और जर्मनी के एलचियों से भेंट की, और उनसे अपना उद्देश्य बतलाया। लड़ाई का जमाना था, इसलिये ब्रिटिश साम्राज्य के विरुद्ध युद्ध करने वाले देशों के इन एलचियों ने उन्हें काफ़ी उत्साह दिया।

इसी बीच में मौलवी मुहम्मद मियाँ अंसारी भी आकर वहाँ मिल गये। यह भी देवबन्द के थे, और मौलाना महमूद हुसेन के साथ अरब गये थे। सन् १६ में मौलाना को हिजाज के तुर्की सामरिक गवर्नर गालिब पाशा के हाथ का लिखा हुआ एक जेहाद का एलान प्राप्त हुआ। रास्ते में सब जगह महमूद मियाँ इस एलान की प्रतियों को भारतवर्ष तथा सीमा-प्रांत में खूब बाँटते रहे।

राजा महेन्द्र प्रताप

ओवेदुल्ला ने विद्रोह के बाद क्या होगा इसके विषय में एक योजना बनाई थी, इस योजना के अनुसार राजा महेन्द्र प्रताप स्वतन्त्र भारत के राष्ट्रपति होनेवाले थे। राजा महेन्द्र प्रताप अलीगढ़ जिले के एक समृद्ध ताल्लुकेदार तथा प्रेम महाविद्यालय के संस्थापक थे। १६१४ के अन्त में यह इटली आदि देशों के भ्रमण के लिये निकले थे, जेनेवा में इनसे लाला हरदयाल से भेंट हो गई, और वे उनके साथ बर्लिन जाकर भारतीय क्रांतिकारी दल में सम्मिलित हो गये।

ओवेदुल्ला ने राजा महेन्द्र प्रताप को योजना में राष्ट्रपति का पद दिया था, इससे स्पष्ट है कि उन्होंने जिन सर्व इस्लामी भावनाओं से प्रेरित होकर इस क्रांति के आयोजन का बीड़ा उठाया था, वे भावनायें अब शिथिल हो गई थीं क्योंकि बिदेश में जाने के बाद उन्होंने देखा था कि वे ही क्रांति के आयोजन के लिए काम नहीं कर रहे हैं। इस समय स्वीटजर्लैंड के जुरिख नामक नगर में एक अन्तर्राष्ट्रीय भारत पक्षीय कमेटी (International Pro-India Committee) थी, इसके सभापति श्री चम्पक रमन पिल्ले थे। लाला हरदयाल, तारकनाथ दास, बर्कतुल्ला, हेरम्बलाल गुप्त, वीरेन्द्र चट्टोपाध्याय आदि इसमें हर तरीके से काम कर रहे थे। केवल यूरोप में ही नहीं बल्कि अमरीका में भी यह चहल-पहल जारी थी।

देशभक्त शूफी अम्बाप्रसाद भी ईरान में अपना काम कर रहे थे। वे मुरादाबाद जिले के रहने वाले थे, उनका दाहिना हाथ जन्म से ही

कटा था, इस पर वे कहा करते थे "अरे भाई सन् ५७ में मैंने अंग्रेजों के खिलाफ लड़ाई की थी, हाथ उसी में कट गया, फिर से जन्म हुआ, किन्तु हाथ कन्धे का कटा रहा गया।"

विशेषकर आप एक बहुत अच्छे लेखक थे। हमेशा उनकी लेखनी ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध आग उगला करती थी। सन् १८६७ में आपको राजविद्रोह के अपराध में डेढ़ साल की सजा हुई। १८६६ में आपने देखा कि ब्रिटिश सरकार की नीति रियासतों की तरफ से कुछ खराब है, बस आपने सरकार की अपनी लेखनी से खबर लेनी शुरू कर दी, इस पर आपकी सारी जायदाद जप्त कर ली गई, और फिर आपको दो साल की सजा दी गई। फिर छूटे, तब सरदार अजीत सिंह के साथ काम करते रहे। जब १६०७ में पञ्जाब में तूफानी जमाना आया और सरकार घबड़ा गई, उस समय सरदार अजीत सिंह के भाई सरदार किसन सिंह और महेता आनन्द किशोर के साथ आप नैपाल भाग गये, वहाँ से पकड़ कर लाहौर लाये गये। फिर एक किताब लिखी, जो जप्त हो गई। इस प्रकार परेशान होकर के सूफी जी सरदार अजीत सिंह और ज़ियाउलहक ईरान भाग गये, वहाँ ये लोग बराबर काम करते रहे।

सूफी जी ने एक अखबार 'आबे' हयात नाम से निकाला, और वहाँ के राष्ट्रीय आन्दोलन में भाग लेने लगे। सन् १६१५ में जिस समय ईरान में अंग्रेजों ने अपना रंग जमाना चाहा, उस समय सूफी जी शीराज़ में थे। शीराज़ पर अंग्रेज़ों ने घेरा डाल रखा था, लड़ाई हुई और उसमें सूफीजी बायें हाथ से ही लड़ते रहे, लड़ाई हुई और किन्तु अन्त में पकड़े गये। फौज़ी अदालत में उनको गोली से उड़ा देने की सजा हुई, किन्तु जब दूसरे दिन गोली से उड़ाने के लिए उनकी कोठरी खोली गई तो देखा गया कि वे पहिले ही प्राण तज चुके हैं। सूफीजी ने ईरान में अपने को इतना जनप्रिय बना लिया था कि उन्हें लोग आका़ सूफी कहते थे, मरने के बाद उनकी

कब्र बनाईं गई, और अब भी ईरान के लोग वहाँ बड़ी श्रद्धा से हर साल जाते हैं।

हमने इस जगह पर सूफी जी के विषय में इसलिये लिखा कि हम दिखाना चाहते थे कि कैसी कैसी बातों की वजह से ओबेदुल्ला ऐसे व्यक्तियों के विचारों में परिवर्तन या यों कहिये प्रौढ़ता आई थी। फिर इसके अतिरिक्त बाहर के मुसलमानों ने भी इस बात पर जोर दिया कि हिन्दू और मुसलमान मिलकर क्रान्ति का प्रयास करें तभी वह सफल हो सकता है।

बरक्तुल्ला

ओबेदुल्ला की योजना के अनुसार वे स्वयं एक मंत्री होने वाले थे। बर्कतुल्ला प्रधान मंत्री होने वाले थे। बर्कतुल्ला बर्लिन होकर काबुल आये थे और गदर पार्टी के सदस्य थे। वे भूपाल रियासत के रहनेवाले थे, विदेशों में खूब घूम चुके थे। कुछ दिनों तक वे जापान के टोकियो विश्वविद्यालय में हिन्दुस्तानी के अध्यापक थे। वहाँ वे एक अखबार का संपादन भी करते थे जिसका नाम (The Islamic fraternity) था, यह अखबार बाद को जापानी सरकार द्वारा बन्द कर दिया गया। मालूम होता है ब्रिटिश सरकार के अनुरोध पर ही जापानी सरकार ने ऐसा किया था। टोंकियो विश्वविद्यालय के अध्यापक पद से अलग कर दिये जाने पर वे दिन रात गदर दल का कार्य करने लगे।

जार के पास चिट्ठी

काबुल स्थित भारतीय मुसलमान अपने कार्य को बड़ी तत्परता के साथ करते रहे, तथा अस्थायी सरकार Provisional government की ओर से बराबर चिट्ठियाँ भेजी गईं। कुछ चिट्ठियाँ तो रूसी तुर्किस्तान और रूस के जार को भेजी गईं, जिसमें उनसे यह अनुरोध किया गया था कि वे इङ्गलैंड के साथ अपनी दोस्ती को खत्म

कर दें, और अपनी सारी शक्ति लगा कर भारत में अंग्रेजी राज को उखाड़ने में लगा दें। जो चिट्ठी रूस के जार को भेजी गई थी, वह सोने की तश्तरी पर थी। इन चिट्ठियों पर राजा महेन्द्र प्रताप के दस्तखत थे, क्योंकि वे ही इस षड्यन्त्र के अनुसार भावी राष्ट्रपति थे। इस भारतीय अस्थायी सरकार ने तुर्की सरकार से भी मित्रता स्थापित करनी चाही, तदनुसार ओवेदुल्ला ने मौलाना महमूद हुसेन को इसके लिये लिखा। यह चिट्ठी सिंध हैदराबाद के शेख अबदुल रहीम के पास एक दूसरी चिट्ठी जो कि मुहम्मद मियाँ अन्सारी को लिखी गई थी के साथ भेजी गई। शेख अबदुल रहीम को यह लिखा गया था वे इन चिट्ठियों को किसी विश्वासपात्र हजयात्री के हाथ भेज दें और मक्का में महमूद हसन को पहुँचा दें। ये चिट्ठियाँ पीले रेशम पर बहुत साफ तरीके से लिखी गई थीं। इन चिट्ठियों में अब तक की हुई सब कार्रवाइयों का उल्लेख था, यानी गालिब नामा, भारतीय अस्थायी सरकार तथा खदाई फौज का उल्लेख था। महमूद हुसेन के ऊपर यह भार था कि वे ये सब खबरें तुर्की सरकार को पहुँचा दें। ओवेदुल्ला की चिट्ठी में खुदाई फौज का भी विवरण था। इस फौज का केन्द्र स्थल मदीना होने वाला था, तथा महमूद हुसेन इसके प्रधान सेनापति होने वाले थे। कुस्तुन्तुनियाँ, तेहरान, काबुल आदि जगहों पर इसकी शाखायें होने वाली थीं, ओवेदुल्ला काबुल केन्द्र के स्वयं सेनापति होने वाले थे। लाहौर के छात्रों में एक मेजर जनरल, एक कर्नल और ६ लेफ्टिनेटेन्ट कर्नल होने वाले थे।

यह चिट्ठियाँ सरकार के हाथ लग गईं, और सरकार ने तदनुसार यह चेष्टा की कि यह सब आन्दोलन पनप न सके।

१९१६ में मौलाना महमूद हसन चार साथियों के साथ ब्रिटिश साम्राज्यवाद के खूँखार पंजों में फँस गये, और नजरबन्द कर दिये गये, गालिब पाशा भी पकड़ लिये गये।

क्रान्तिकारी समितियों का संगठन तथा नीति

क्रांतिकारी समितियाँ गुप्त समितियाँ होती थीं, यह तो सभी जानते हैं। किन्तु इनका संगठन किस भाँति होता था इसके सम्बन्ध में लोगों को स्पष्ट धारणायें नहीं हैं। मैं इसके पहिले लिख चुका हूँ कि हिन्दुस्तान में एक ही साथ कई कई समितियाँ काम करती थीं, किन्तु ये किस प्रकार सहयोग से काम करती थीं यह भी समझना आवश्यक है। इन समितियों में बङ्गाल की अनुशीलन समिति प्रमुख थी, इसके नेता श्री पुलिनदास न केवल एक कट्टर अनुशासन के मानने मनाने वाले सुदक्ष नेता थे, बल्कि एक अच्छे लाठी, तलवार, बल्लम, बन्दूक चलाने वाले भी थे। बङ्गाल की समितियों में अनुशीलन का अनुशासन सब से जबर्दस्त था, इसकी प्रतिज्ञायें चार प्रकार की थी।

(१) प्राथमिक प्रतिज्ञा (आद्य)
(२) अन्त्य प्रतिज्ञा
(३) प्रथम विशेष प्रतिज्ञा
(४) द्वितीय विशेष प्रतिज्ञा

प्रतिज्ञायें बड़ी कठिन थीं, प्राथमिक प्रतिज्ञा में यह भी बातें कहनी पड़ती थी।

(क) मैं कभी भी इस समिति से अलग न हूँगा।
(ख) मैं हमेशा समिति के नियमों के अधीन रहूँगा।
(ग) मैं नेताओं का हुक्म बिना कुछ कहे मानूँगा।
(घ) मैं नेता से कुछ भी नहीं छिपाऊँगा, उसके निकट सत्य के सिवा कुछ न बोलूँगा।

अन्य प्रतिज्ञा में ये बातें भी थीं।

(क) मैं समिति का कोई भी अंतरंग मामला किसी से नहीं खोलूँगा न उन पर व्यर्थ की बहस करूँगा।

(ख) मैं परिचालक को बिना बताये कहीं बाहर न जाऊँगा। मैं हर समय कहाँ हूँ इसका परिचालक को इत्तला देता रहूँगा। यदि दल के खिलाफ किसी षड्यन्त्र के होने का पता लगा तो मैं फौरन परिचालक को इत्तला दूँगा।

(ग) परिचालक की आज्ञा पाने पर मैं जहाँ भी जिस परिस्थिति में हूँ फौरन लौट आऊँगा।

(घ मैं उन बातों को जिनकी कि दल से शिक्षा पाऊँगा लोगों पर न खुलने दूँगा।

प्रथम विशेष प्रतिज्ञा यों थी:—

ओ३म् बन्दे मातरम्।

ईश्वर, पिता, माता, गुरु, नेता तथा सर्वशक्तिमान के नाम यह प्रतिज्ञा करता हूँ कि (१) मैं इस समिति से तब तक अलग न हूँगा जब तक कि इसका उद्देश्य पूर्ण न हो जाय। मैं पिता, माता, भाई, बहिन, घर, गृहस्थी किसी के बन्धन से नहीं बँधूँगा, और मैं कोई भी बहाना न बताकर दल का काम परिचालक की आज्ञा के अनुसार करूँगा। मैं वाचालता तथा जल्दबाजी छोड़ दल के हरेक काम को ध्यान से करूँगा।

(ख) यदि मैं किसी प्रकार इस प्रतिज्ञा को तोड़ूँ तो ब्राह्मण, पिता, माता तथा प्रत्येक देश के देशभक्तों का अभिशाप मुझे भस्म में परिणत करदे।

द्वितीय विशेष प्रतिज्ञा यों थीं—

ओ३म् बन्दे मातरम्।

१. ईश्वर, अग्नि, माता, गुरु तथा नेता को गवाह मानकर मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि मैं दल की उन्नति के लिए हरेक काम को करूँगा,

इसके लिये यदि जरूरत हुई तो प्राण तथा जो कुछ मेरे पास है सब का बलिदान कर दूँगा। मैं सभी आज्ञाओं को मानूंगा, तथा उन सभी के विरुद्ध काम करूँगा जो हमारे दल के विरुद्ध हैं, और उनको जहाँ तक हो नुकसान पहुँचाऊँगा ?

२. मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि दल की भीतरी बातों को लेकर किसी से तर्क नहीं करूँगा, और जो दल के सदस्य भी हैं उनसे बिला ज़रूरत नाम या परिचय भी न पूछूँगा।

यदि मैं इस प्रतिज्ञा से च्युत हो जाऊँ तो ब्राह्मण, माता तथा प्रत्येक देश के देशभक्तों के कोप से मैं विनाश को प्राप्त हो जाऊँ।

सदस्य किस प्रकार भर्ती किये जाते थे यह मुखबिरों ने बतलाया है। प्रियनाथ आचार्य नामक (बारिसाल षड्यंत्र) एक मुखबिर ने अदालत में बयान देते हुए कहा था "दुर्गा पूजा की छुट्टी के दिनों में महालया दिवस को रमेश, मैं, और कुछ आदमी रामना सिद्धेश्वरी की काली बाड़ी में पुलिनदास द्वारा दीक्षित किये गये थे। हमारी संख्या कोई १० या १२ थी। हम लोग पहिले ही प्राथमिक अन्त्य तथा विशेष प्रतिज्ञायें कह चुके थे। कोई पुरोहित उपस्थित नहीं था किन्तु सारी कार्रवाई कालीमाई की प्रतिमूर्ति के सामने सुबह ८ बजे की गई। पुलिनदास ने देवी के सामने यज्ञ तथा दूसरी पूजायें कीं। प्रतिज्ञायें, जो कि छपी हुई थीं हमें पढ़ कर सुना दी गई, हम सब लोगों ने कहा कि हाँ, हम इन प्रतिज्ञाओं को लेना चाहते हैं। काली के सामने सिर पर तलवार तथा गीता रख कर तथा बायाँ घुटना टेक दिया। इस आसन को प्रत्यालिढ़ आसन कहते हैं। कहते हैं कि शेर इसी आसन से अपने शिकार पर कूदता है।"

मालूम होता है हर हालत में एक ही तरह से भर्ती नहीं होता था, क्योंकि कोमिल्ला के एक लड़के ने गवाही देते हुए यह कहा कि काली-पूजा के दिन वह घर से पूर्ण नामक सदस्य के द्वारा बुलाया गया। "पूर्ण की आज्ञा के अनुसार मैंने तथा दूसरों ने दिन भर उपवास किया।

रात आने पर पूर्ण हम चारों को मरघटा में ले गया। वहाँ पर पूर्ण ने पहिले से ही काली की मूर्ति मँगा रक्खी थी, इस काली मूर्ति के चरणों के पास दो रिवालवर रक्खे हुए थे। हम लोगों से काली मूर्ति छूने को कहा गया, और समिति के प्रतिविश्वस्त रहने की प्रतिज्ञा कराई गई, यहीं पर हमें समिति के नाम भी दिये गये।"

तलाशियों में जो परचे आदि मिले उससे पता चलता है कि १६०८ के पहिले के क्रान्तिकारी भी किसी बात को बड़े पैमाने पर ही सोचते थे। जिस जगह पर अब तक समिति नहीं है वहाँ किस प्रकार समिति खोली जाय, से लेकर सभी संगठन-सम्बन्धी बातों पर इस परचों में चर्चा की गई है। षड्यन्त्र के नेताओं का उद्देश्य एक भारतव्यापी षड्यन्त्र करना और ब्रिटिश साम्राज्य के तख्ते को तबाह करना था न कि छोटे छोटे गुट बनाकर तमाशा करना। तलाशी में मिले हुए हर पर्चे में हम देखते हैं कि सदस्यों के चरित्र पर बहुत जोर दिया गया है। नेता का हुकुम मानना तथा उससे कुछ न छिपाना एक अनिवार्य बात थी। गांवों की मर्दुमशुमारी, पैदावार तथा स्थानीय अन्य ज्ञातव्य बातों के सम्बन्ध में आँकड़ों के संग्रह करने के लिये गंभीर चेष्टा की गई थी इसका प्रमाण मिला है। सच बात तो यह है कि इन आँकड़ों के संग्रह के लिये दल की ओर से छपे हुए फार्म तलाशियों में निकले हैं। (सिडिशन कमेटी की रिपोर्ट पृ० ६६ इस हालत इन क्रान्तिकारियों को केवल आतंकवादी कहना झूठ है।

१६०६ के दूसरे सितम्बर को १५ जोराबागान स्ट्रीट कलकत्ता में तलाशी हुई, दूसरी चीजों के साथ वहाँ दो परचे मिले। एक का नाम था "सामान्य सिद्धान्त।" हम इस परचे का वह हिस्सा जो सिडिशन रिपोर्ट में है उद्धृत करते हैं:—

"सामान्य सिद्धान्त"

रूस के क्रान्तिकारी अन्दोलन के इतिहास से पता चलता है कि जो लोग जनता को एक क्रान्तिकारी विद्रोह के लिये तैयार कर रहे हैं

वे इन सामान्य सिद्धान्तों को अपनी आँख के सामने रक्खे हैं—

(क) देश के क्रान्तिकारी शक्तियों का एक ठोस संगठन तथा दल की शक्तियों का ऐसी जगह पर विशेष जोर देना जहाँ उसकी सब से बड़ी जरूरत है।

(ख) दल के विभागों का बहुत बारीकी से विभाजन याने एक विभाग में काम करने वाला आदमी को न जाने, किसी भी हालत में एक आदमी दो विभाग का नियन्त्रण न करे।

(ग) खास करके सामरिक तथा आतंकवादी विभागों के लोगों में कड़ा से कड़ा अनुशासन हो यहां तक कि बहुत त्यागी सदस्य भी इससे बरी न हों।

(घ) बातें बहुत ही गुप्त रक्खी जायँ, जिसको जिस बात की जानने की बहुत जरूरत नहीं वह उसे न जाने, किसी विषय में बातचीत दो सदस्यों में उतनी ही हद तक हो जितनी की सख्त जरूरत हो।

(ङ) इशारों का तथा गुप्तलिपि का प्रयोग।

(च) दल एकदम से सब काम में हाथ न डाल दे अर्थात् धीरे धीरे पुख्तगी के साथ आगे बढ़ते जाय। (१) पहिले तो पढ़े लिखे लोगों में एक केन्द्र की सृष्टि की जाय। (२) फिर जनता में भावनाओं का प्रचार किया जाय। (३) फिर सामरिक तथा आतंकवादी विभाग का संगठन किया जाय। (४) फिर सब एक साथ आन्दोलन। (५) फिर विद्रोह।

यह परचा बहुत लम्बा था, सिडिशन कमेटी की रिपोर्ट में इसका केवल सार दिया गया है, किन्तु इस परचे में यह भी था कि दल के उद्देश्य की पूर्ति के लिये डकैतियों तथा गुप्तहत्यायें भी की जायेंगी। डकैतियों के सम्बन्ध में यह बतलाया गया था कि यह तो उन धनियों से टैक्स वसूल करना है। बाद को इसे forced contribution याने दल के लिये जबर्दस्ती चन्दा वसूल करना बतया जाता था।

स्मरण रहे कि १६०६ में मिले हुए एक परचे में यह सब बातें थीं।

ज़िला का संगठन, कुछ नियम

जिला संगठन के कुछ नियम ये थे—

(क) एक छोटे केन्द्र का काम उस केन्द्र के नेता की देख रेख में चलाया जायगा। संस्था के कार्यक्रम को पांचवार पढ़ने के बाद ही वह काम में हाथ डालेगा।

(ख) एक छोटे केन्द्र का नेता फिर अपने केन्द्र को भी कई केन्द्रों में बाँट देगा, यह बँटाई जिले की सरकारी बंटाई के अनुसार होगी।

(ग) यदि कोई जिला केन्द्र के परिचालक को यह मालूम हो कि दूसरे दल के पास हथियार हैं और उसे ऐसा मालूम दे कि उनका गलत इस्तेमाल हो सकता है तो वह उच्च अधिकारी की आज्ञा प्राप्त कर जल्दी से जल्दी किसी भी तरह उन हथियारों को हथिया ले। यह काम इस प्रकार से हो कि दूसरे उसे भाप न पायें।

(घ) अपने नायक के हुकुम के सिवा कोई किसी किस्म का गुप्त पत्र कहीं न भेजेगा।

(ङ) जिन सदस्यों के पास हथियार तथा दल के कागजपत्र रक्खे जायँ वे किसी खतरनाक काम में भाग न लें या किसी ऐसे स्थान में न जायँ जहाँ खतरे की संभावना हो।

"भवानी मन्दिर" पर्चा

१९०७ में 'भवानी मन्दिर' नाम का एक पर्चा बँटा था, इसमें क्रांतिकारियों के उपाय तथा उद्देश्यों पर रोशनी डाली गई थी। कई दृष्टि से यह एक महत्वपूर्ण पर्चा था, इसमें धर्म तथा राष्ट्रीयता के नाम पर अपील की गई थी। माननीय रौलट साहब के अनुसार "इस पर्चे में काली की शक्ति तथा भवानी नाम से प्रशंसा की गई थी, और राजनैतिक स्वाधीनता के लिये शक्ति की उपासना करने को कहा गया था। जापान की सफलता का रहस्य इस बात में बतलाया गया है

कि धर्म से शक्ति मिली है, इसी नींव पर कहा गया है कि भारत-वासी भी शक्ति की पूजा करें। 'भवानी-मन्दिर' में यह भी कहा गया था कि एक भवानी का मन्दिर बनाया जो आधुनिक शहरों की गन्दी आबहवा से दूर किसी एकान्त स्थान में हो, जहाँ की वातावरण शक्ति तथा ओज से ओतप्रोत हो। इस पर्चे में एक राजनैतिक सम्प्रदाय की स्थापना की बात कही गई थी, किन्तु सम्प्रदाय के लोगों के लिए यह आवश्यक नहीं था कि सभी सन्यासी हों। अधिकतर तो इनमें से ब्रह्मचर्याश्रम के होने वाले थे, किन्तु कार्य पूर्ण होने के बाद ये गृहस्थ हो सकते थे। कार्य क्या था यह साफ नहीं था, किन्तु भारत-माता को परतन्त्रता की जंजीरों से छुड़ाना ही काम था। वे सभी धार्मिक, सामाजिक, राजनैतिक नियम दे दिये गये थे जिनके द्वारा नया सम्प्रदाय परिचालित होता। सारांश यह था कि राजनैतिक संन्यासियों का एक नया गिरोह स्थापित होने वाला था, जो क्रान्तिकारी कामों के लिये तैयारी करते। मालूम होता है कि इसकी केन्द्रीय बात अर्थात् राजनैतिक संन्यासियों की बात वंकिमचन्द्र के 'आनन्द-मठ' से लिया गया था। आनन्द-मठ एक ऐतिहासिक उपन्यास है जो १७७४ के संन्यासी विद्रोह के आधार पर बना है।

अनेक समितियाँ

बंगाल में शुरू से ही क्रांतिकारियों के बहुत से दल थे, इन दलों में सिद्धान्त या तरीकों का कोई विशेष प्रभेद नहीं था। एक तरह से ये सब प्रभेद लीडरी की चाह से हुए थे, किन्तु इस प्रकार अलग-अलग दल का होना कई मामलों में बड़ा हितकर साबित हुआ, क्योंकि एक दल का यदि कोई महत्वपूर्ण व्यक्ति भी मुखबिर हो गया तो वह केवल अपने ही दल के व्यक्तियों को पकड़ा सकता था। इस प्रकार गुप्त दल होने की वजह से जो बात एक महान् बुराई थी वह भलाई साबित हो गई। फिर भी इन सब दलों में काफी हद तक सहयोग रहता

था, महायुद्ध के समय रडा कम्पनी से एक साथ जो पचास पिस्तौलें चुराई गईं थीं वे बाद को विभिन्न दलों के सदस्यों के पास से बरामद होती रहीं, इस ख्याल से देखा जाय तो इन दलों में बड़ा गहिरा सहयोग था।

प्राक-असहयोग युग का परिशिष्ट

अब हम करीब करीब असहयोग के पहिले के युग की सब घटनाओं की तथा धाराओं का वर्णन कर चुके, कुछ बातें फिर भी छूट गई होंगी। बात यह है कि क्रान्तिकारी आन्दोलन एक अत्यन्त व्यापक आन्दोलन रहा है यद्यपि बहुत कुछ वह केवल मध्य वित्त श्रेणी में ही फैला हुआ था। इस सम्बन्ध में बहुत सी हत्यायें हुई बहुत से डाके डाले गये बहुत से लोगों को फाँसियाँ तथा कालेपानी की सजायें हुई, बहुत से षड्यन्त्र हुये जिनका विस्तार अमेरिका, योरप तथा एशिया में था, फिर यह किस प्रकार हो सकता है। कि एक चार पाँच सौ पन्ने की पुस्तक में सब बातों का वर्णन आ जाय। न तो किसी लेखक को ही आशा करनी चाहिये कि वह सब कुछ लिख डालेगा, न किसी पाठक को ही आशा करनी चाहिये कि सब घटनायें एक पुस्तक में मिल जायगी। मैंने क्रांतिकारी आंदोलन में जो बड़ी बड़ी धारायें हैं उन्हीं को पकड़ने की कोशिश की है तथा यह कोशिश की है कि सब धाराओं के साथ न्याय किया जावे। मैंने विशेषकर क्रांतिकारियों के क्या विचार थे, तथा उनमें किस प्रकार शनैः शनैः परिवर्तन या विकाश हुआ है यह दिखलाने की चेष्टा की है। केवल कुछ हत्या तथा डाकों का इतिहास लिखना मेरा उद्देश्य नहीं था। मैं तो क्रान्तिकारी आन्दोलन को भारत की सारी सामाजिक विशेषकर आर्थिक अवस्था की ही एक कड़ी समझता हूँ उसी के

अनुसार मैंने यह सारी कहानी लिखी है। मैं समझता हूँ इसी प्रकार के इतिहास की इस समय जरूरत थी।

क्रांतिकारी आन्दोलन असफल रहा या सफल ?

प्राक असहयोग युग का क्रान्तिकारी आन्दोलन कोई मजाक नहीं था। सच कहा जाय तो उसका जाल बाद के क्रांतिकारी आंदोलन से कम विस्तृत नहीं था, किन्तु फिर भी जो यह व्यर्थ हुआ इनके बहुत से कारण थे। सब से बड़ा कारण तो यह था कि क्रांतिकारियों ने जनता में करीब करीब काम नहीं किया किन्तु इसके साथ ही साथ मानना पड़ेगा कि उस जमाने में जिस माने में आज जनता में काम करना सम्भव है उस माने में जनता में काम करना सम्भव नहीं था। यह भी यहाँ पर साफ कर देना चाहिये कि क्रांतिकारी आंदोलन बिलकुल ही असफल रहा ऐसा कहना इतिहास की अनभिज्ञता जाहिर करना होगा। यों तो असहयोग तथा सत्याग्रह आंदोलन भी असफल रहे क्योंकि इन आंदोलनों का जो उद्देश्य था वह पूर्ण न हो सका, किंतु क्या यह कहा जा सकता है कि ये आंदोलन बिलकुल व्यर्थ रहे ? क्या यह बात सच नहीं है कि हम आगे बढ़े हैं, तथा दिन ब दिन हमारी चेतना बढ़ती जा रही है ? इसी प्रकार क्रांतिकारी आंदोलन भी अपनी दृश्यमान व्यर्थता के वावजूद हमारे राष्ट्रीय आंदोलन पर एक गहरी छाप छोड़ता गया है। सन् २१ तक जितने भी सुधार सरकार की ओर से दिये गये हैं, वे केवल क्रांतिकारियों की जद्दोजेहद की वजह से दिये गये हैं। सबसे पहिले पूर्ण स्वतंत्रता का नारा देने वाले यह क्रांतिकारी ही हैं, कांग्रेस जब एक लिबरल फेडरेशन या उससे भी गये गुजरे रूप में थी उस समय इन क्रांतिकारियों ने न केवल पूर्ण स्वतन्त्रता को ही अपना उद्देष्य करार दिया, बल्कि उसके लिये लड़ाइयां लड़ी, षड्यंत्र किये, घर फूँका, जेल गये, और फाँसियाँ खाईं। केवल त्याग की दृष्टि से ही नहीं बल्कि विचार जगत में भी इन क्रांतिकारियों ने राष्ट्रीय प्रगति को आगे बढ़ाया और उसके लिये जो कुछ भी कुरबानियों की जरूरत पड़ी

यह की। एक जमाना था जब कि भारतवर्ष का क्षितिज बिलकुल अंधकार मय था, कहीं भी रोशनी की एक भी रौप्य रेखा नहीं थी, उस समय इन क्रांतिकारियों ने अपने शरीर को मसाल बना कर थोड़ी देर के लिये ही सही एक प्रकाश की सृष्टि की।······

बाद को कैसे इसी आंदोलन से रौलट रिपोर्ट की सृष्टि हुई उससे रौलट एक्ट बना, और उसी के विरोध में हमारा आंदोलन एक नई धारा की ओर गया यह हम बाद को वर्णन करेंगे। यहां पर हम केवल नलिनी बाक्ची नामक एक क्रांतिकारी के आत्मोत्सर्ग का पवित्र वर्णन कर इस अध्याय को समाप्त करते हैं।

नलिनी बाक्ची

नलिनी बाक्ची का इतिहास समय की दृष्टि से प्राक असहयोग युग की एक तरह से अन्तिम घटना है। नलिनी बाक्ची में ही आकर जैसे प्राक असहयोग युग का क्रांतिकारी आंदोलन अपने सर्वोच्च सोपान पर आ गया, नलिनी बाक्ची बहुत अच्छे लड़के थे यानी पढ़ने लिखने में बड़े तेज थे, और उनके घर वालों को कभी यह डर नहीं था कि वे किसी दिन एक क्रान्तिकारी होंगे।

१६१६ में क्रान्तिकारी दल में वीरभूम निवासी नलिनी को विहार में क्रान्ति का प्रचार करने के लिये भागलपूर कालेज में पढ़ने के लिये भेजा गया, किन्तु शीघ्र ही पुलिस को उनका पता लग गया, और उन्हें पढ़ना छोड़ कर फरार हो जाना पड़ा। बात यह है कि इस प्रकार पुलिस की नजरों पर चढ़ जाने से यह डर था कि बिना सबूत के भी वे नजरबन्द कर लिये जायँगे, इसलिये उन्होंने यह सोचा कि इससे अच्छा तो यही है कि डुबकी लगा कर काम किया जाय। तजनुसार वे बिहार के शहर शहर में बिहारी बन कर घूमने लगे, किन्तु बकरे की माँ कब तक खैर मनावे, साम्राज्यवाद के पास असंख्य भाड़े के टट्टू थे, पुलिस की फिर उन पर नजर पड़ गई। अब की उन्होंने विहार छोड़ कर बंगाल जाने में ही अपनी भलाई

समझी, केवल बंगाल में ही नहीं उस समय सारे हिन्दुस्तान में मेला उखड़ चुका था; चारों ओर साम्राज्यवाद का दमनचक्र बड़े जोर से घूम रहा था, कुछ थोड़े से क्रांतिकारी पुराने दीये को हाथ में लेकर चारों तरफ की तुमुल आँधी से उसको बचा कर आगे बढ़ने की चेष्टा कर रहे थे, किन्तु पथ काँटों से भरा हुआ था, सैकड़ों रोड़े थे, अपने ही साथी पीछे से टाँग पकड़ कर घसीट रहे थे और घसीट रहे थे उस खंदक में जहाँ वे खुद गिर चुके थे, स्वयं चलने वालों का अङ्ग-अङ्ग ढीला हो रहा था, और पुराने साथियों की जो कि फाँसी के तख्तों पर चढ़ चुके थे, याद उनको भीतर कुरेद रही थी। फिर भी कुछ लोग चले जा रहे थे, चले जा रहे थे, चले जा रहे थे। ये हमारे राष्ट्र के अग्रदूत थे। नलिनी भी जाकर उनमें शामिल हो गये।

बङ्गाल में उस वक्त रहना बहुत ही कठिन हो रहा था, इसलिये दल ने यह निश्चय किया कि इन को तथा ऐसे ही लोगों को हटा कर आसाम के किसी अज्ञात स्थान में राष्ट्र के धरोहर की भांति सुरक्षित रखा जाय, क्योंकि इनमें से एक-एक आदमी तप कर सोना हो चुका था, और एक-एक चाभी के रूप में थे जिनसे कि एक-एक प्रान्त का क्रांतिकारी आंदोलन खोला जा सकता था। इसलिये आसाम के गौहाटी नामक स्थान में नलिनी बाक्ची के अतिरिक्त नलिनी घोष, नरेन्द्र बनर्जी आदि कई आदमी डट गये। ये लोग सोते समय भी अपने पास भरी हुई पिस्तौलें रखते थे, ये लोग समझते थे कि या तो वातावरण कुछ ठंडा होने पर यह लौट कर फिर से क्रांति यज्ञ में ऋत्विक् का काम करेंगे, और या तो फिर सन्मुख युद्ध में प्राणों की आहुति देंगे।

कलकत्ते की पुलिस ने किसी गिरफ्तार व्यक्ति से पता पाकर ६ जनवरी सन् १९१७ को इस मकान को घेर लिया। क्रांतिकारियों की यह टुकड़ी नहीं घिरी, बल्कि उनकी यह बची खुची आशा ही घिर गई। जो व्यक्ति उस समय पहरे पर था उसने सबको चुपके से यह खबर दी कि पुलिस आ गई है। सब लोगों ने अपनी भरी हुई पिस्तौलें

उठालीं बाहर निकल पड़े, और एक दम से उन्होंने पुलिस के ऊपर गोली चलानी शुरू कर दी। पुलिस इसके लिये तैयार न थी, और इसके फल स्वरूप वे तितर बितर हो गई। इस घबड़ाहट का फायदा उठा कर क्रांतिकारी पहाड़ में भाग गये, शाम तक पहाड़ भी घेर लिया गया और दोनों तरफ से खूब गोलियाँ चलीं। बहुत से क्रांतिकारी घायल हो गये, और पुलिस के पंजे में फंस गये, किन्तु फिर भी दो व्यक्ति किसी प्रकार पुलिस की आँख बचा कर भाग निकले।

इनमें से एक नलिनी बाक्ची थे, नलिनी बाक्ची किसी प्रकार चलते रेंगते बिना खाये इधर उधर चक्कर काटते रहे, इसी बीच में एक पहाड़ी कीड़ा उनके सारे बदन पर चिपक गया जिससे उन्हें बहुत कष्ट हुआ, फिर भी उन्होंने आशा न छोड़ी और आसाम की पुलिस की आँख बचा कर विहार पहुँचे। बिहार की पुलिस उन्हें पहचानती थी, इसलिये बिहार में रहना भी उनके लिए कठिन था। इन्हीं सब बातों को सोचकर वे बंगाल को चल पड़े, किन्तु वहाँ भी कोई साथी न मिला, तब वह किले के मैदान में जाकर सो रहे। इस पर भी छुटकारा नहीं मिला, उनके बदन पर चेचक निकल आया। चेचक निकलने से उनका बुरा हाल हो गया, बिना खाये कई दिन हो चुके थे और इस पर तकलीफें। भारत की आज़ादी दिलाने वाला कालेज का होनहार छात्र, क्रान्तिकारी दल का एक नेता, एक भिखारी की भाँति सड़क पर पड़ा था, न कोई उसकी सेवा करने वाला था न कोई उसकी बात पूँछने वाला था।

ऐसे समय में एक परिचित क्रान्तिकारी ने उसको देख लिया और उसको घर पर ले गया। चेचक से मुँह भी ढक गया, आँखें बन्द हो गई, जीभ भी बेकार हो गई, तीन दिन तक बोली भी बन्द रही, न कोई सेवा के लिये था, न कोई दवा ही दी गई। यदि मर जाते तो कफन के लिए न पैसा था, न कोई अर्थी को उठा ले जाने वाला ही था। यह एक क्रांतिकारी का जीवन था।

नलिनी इससे नहीं मरे।

नलिनी अच्छे हो गये, और फिर उन्होंने क्रान्ति के उस टिमटिमाते दीपक को, जिसका तेल समाप्त हो चुका था, बत्ती जल चुकी थी अपने हाथ में लिया और फिर से संगठन करना प्रारम्भ किया। वह ढाका में जाकर रहने लगे, उनके साथ एक और व्यक्ति रहता था इसका नाम तारिणी मजुमदार था। १९१८ इस्वी के १५ जून को सवेरे पुलिस ने आकर फिर एक बार उनके मकान को घेर लिया, दोनों तरफ से फिर गोलियाँ चलीं। तारिणी मजुमदार वहीं पर शहीद की गति प्राप्त हो गये। गोली खाकर भी नलिनी भाग निकलना चाहते थे कि पुलिस की एक गोली और लगी और वह वहीं पर गिर पड़े। पुलिस ने उनको इस पर गिरफ़्तार कर लिया और अस्पताल ले गयी। जीने की कोई आशा नहीं थी। शरीर यों ही बहुत दुर्बल था, तिस पर रक्त बहुत जा चुका था। पुलिस बार बार उनसे पूछ रही थी कि तुम्हारा नाम क्या है, एक साधारण व्यक्ति होता तो नाम बता देता क्योंकि अब इसमें क्या हानि थी, किन्तु साम्राज्यवाद के विरुद्ध लड़ने वाला यह बीर योद्धा लड़कर ही सुखी रहा, सारी जिन्दगी इसने इस राक्षसी शक्ति के विरुद्ध लड़ाई ही की, लड़ने में ही उसको तृप्ति थी, नाम का वह भूखा नहीं था। उसने अन्त तक पुलिस की बातों का उत्तर नहीं दिया और बार बार पूछे जाने पर सिर्फ इतना ही कहा "मुझे परेशान मत करो, शान्ति से मरने दो।

(Don't disturb me please, let me die peacefully)

यह एक क्रान्तिकारी की मृत्यु की कहानी है।

अब हम प्राक् असहयोग युग की कहानी को समाप्त करते हैं, किंतु ऐसा करते हुये हमें बड़ा दुख होता है, क्योंकि हमें ऐसा मालूम देता है जैसे हमारा इन शहीदों के साथ जिनका हमने वर्णन पिछले पृष्ठों में किया है चिर बिछोह होता है। आशा करता हूँ कि जब तक हमारा इतिहास रहेगा, तब तक ये अत्यन्त श्रद्धापूर्वक याद किये जाँयगे, हमें

पूर्ण विश्वास है कि जब आज के बड़े बड़े नेताओं को जमाना भुला देगा, और कोई भी इस बात को एतवार करने को तैयार नहीं होगा कि किसी जमाने में इन जुगुनुओं की इतनी आवभगत थी, उस जमाने में भी ये वीर और शहीद याद किये जाँयगे। इतना ही नहीं, इनसे सम्बन्ध रखने वाली हर एक चीज को आने वाली संतानें श्रद्धा और आदर की दृष्टि से देखेंगी।

असहयोग का युग

भारत का क्रान्तिकारी आन्दोलन बहुत कुछ शान्त हो चुका था, किन्तु इसके साथ ही एक दूसरे आन्दोलन की सूचना हो रही थी, जो कि ब्रिटिश साम्राज्य को एक दफे बड़े जोरों से हिला देने वाला था। ब्रिटिश साम्राज्यवाद की नीति दुरंगी थी, एक हाथ से वह दमन करता है, और दूसरे हाथ से वह सुधारों का प्रलोभन दिखाता है। बहुत पिछले इतिहास में जाने की आवश्यकता नहीं है, किन्तु गत बीस सालों में यह नीति वार वार खेली गई है। ऐसा ही एक जमाना सन १९१८ का था। एक तरफ तो सरकार ने १० दिसम्बर १९१७ को एक कमेटी बैठाई, जिसके अध्यक्ष माननीय जस्टिस एस० ए० टी रौलट हुए, और दूसरी तरफ सरकार सुधार देने की चर्चा करने लगी।

रौलट कमेटी

रौलट कमेटी के निम्न लिखित सदस्य थे।

१. माननीय सर वेसिल स्काट (बम्बई के चीफ जस्टिस).

२. माननीय दीवान बहादुर कुमार स्वामी शास्त्री (जज मद्रास हाई कोर्ट)

३. माननीय सर वर्नें लावेट (युक्तप्रान्त के बोर्ड आफ रेवेन्यू के मेम्बर)

४. मि० प्रभात चन्द्र मित्र (वकील, हाई कोर्ट कलकत्ता)

इस कमेटी को मुकर्रर करते वक्त इसका उद्देश्य बतलाया गया था कि (क) भारत में क्रान्तिकारी आन्दोलन से सम्बन्ध रखने वाले षड्यन्त्रों का प्रकार तथा विस्तार का पता लगाना और (ख) इन षड्यन्त्रों को दबाने में जो दिक्कतें पेश आईं, उनका दिग्दर्शन कराना तथा ऐसी बातें बताना जिससे कि कानून बनाकर इन्हें दबाया जा सके।

इसी के अनुसार रौलट कमेटी ने दो सौ छब्बीस पन्ने की एक सुबृहत् रिपोर्ट तैय्यार की। इसमें भारतीय पुलीस को जितनी बातें मालूम थीं, करीब करीब सभी बातें आ गईं। रिपोर्ट में अजीब अजीब बातों के लिये सिफारिश की गई। एक तो भारतवासियों की स्वाधीनता यों ही कम थी, तिस पर उसमें और भी कमी की गई। यह समझना भूल है कि इस कमेटी की रिपोर्ट से केवल क्रान्तिकारी आन्दोलन को ही धक्का पहुँचता था, इस कमेटी का नाम सिडीशन कमेटी था। इसी से जाहिर है कि सब प्रकार के राजनैतिक आन्दोलन का राजद्रोह या सिडीशन कह कर दबाना इसका उद्देश्य था। इसकी सिफारिशों से भी यही बात जाहिर होती है। खैरियत यह है कि उस जमाने में हिंसा अहिंसा का कोई बखेड़ा खड़ा नहीं था, सारा राष्ट्रीय आन्दोलन ही एक चीज समझा जाता था। सरकार भी ऐसा समझती थी, जनता भी ऐसा समझती थी, पुलिस का भी यही ख्याल था। सारी सिडीशन कमेटी की रिपोर्ट को पढ़ जाइये, आप को यह मिलेगा कि माननीय सदस्यों ने लोकमान्य तिलक तथा चाफेकर और विपिनचन्द्र पाल तथा खुदीराम को एक ही बाँट से तौला है, और हमेशा उसको एक ही दृष्टि से देखा तथा उनके लिये एक ही दवा की तजवीज की है। सच्ची बात तो यह है कि उन्होंने एक को दूसरे का पूरक समझा है।

रौलट कमेटी की सिफारिशें

इस कमेटी ने जो सिफारिशें की थी उसमें कई तरह की बातें थीं। इसमें सरकार को जिस वक्त भी चाहे जिस किसी को नजरबन्द करने का,

गिरफ्तार करने का, तलाशी लेने का तथा जमानता माँगने का हक दिया गया था। एक तरह से पुलिस के हाथ में सारे अधिकार सौंप दिये गये थे; और अदालत की कार्रवाई में भी काफी फरक कर दिया गया था। ऐसी ऐसी सिफारिशें की गई थी जिससे अभियुक्त को जल्दी से से तथा अयथेष्ट सबूत पर सजा दी जा सके। इस रिपोर्ट के प्रकाशित होते ही सारे देश में इसका विरोध हुआ। कांग्रेस ने इस रिपोर्ट के प्रकाशित होते ही, यह कह कर विरोध किया कि भारतीयों के मौलिक अधिकारों पर यह रिपोर्ट कुठाराघात करती है, तथा जन-मत की स्वास्थ्यकर वृद्धि मे बाधा पहुँचाती है। महात्मा गाँधी ने, जो कि सत्याग्रह के प्रवर्तक तथा विशेषज्ञ थे, यह घोषणा की कि यदि यह बिल कानून रूप में पास हो गया, तो सारे देश में सत्याग्रह का तूफान खड़ा कर दिया जायगा।

देशव्यापी हड़ताल

इसी सिलसिले में देशव्यापी हड़ताल का आयोजन हुआ और इसके लिये ३० मार्च १९१९ की तारीख तय हुई। इस बीच में यकायक तारीख बदलकर ६ अप्रैल कर दी गई, किन्तु दिल्ली में इसकी सूचना ठीक समय पर न पहुँची, इससे वहाँ पर हड़ताल और जुलूस वकायदा निकला। स्वामी श्रद्धानन्द जी जलूस का नेतृत्व कर रहे थे, कुछ गुस्ताख गोरों ने उनको गोली से मार देने की धमकी दी, इस पर उन्होंने अपनी छाती खोल दी, और इस प्रकार वह धमकी देने वाला ठण्डा पड़ गया। दिल्ली के रेलवे स्टेशन पर मामला इससे कहीं संगीन हो गया। गोलियाँ चली, पाँच मरे, और कोई बीस आदमी घायल हुए। सरकार इस बढ़ती हुई जागृति को कुचल डालना चाहती थी, उसको यह सहन नहीं हो रहा था कि जनता इस प्रकार उसकी बातों की अवज्ञा करने पर तुली रहे। इस आंदोलन की सबसे अच्छी बात यह थी कि हिन्दू मुसलमानों में बड़ा मेल था। १९१९ के इण्डिया बुक में भी इस बात पर आश्चर्य प्रकट किया गया है कि किस प्रकार

हिन्दू और मुसलमानों में इतना मेल हो गया। हिन्दुओं ने खुले आम मुसलमानों के हाथ से पानी पिया, और हिन्दू नेताओं ने मस्जिदों के अन्दर जा जाकर वक्तृताएँ दी। बात यह थी कि खलीफतुलइस्लाम के साथ ब्रिटिश साम्राज्यवाद ने जो व्यवहार किया था उससे भारतीय मुसलमान बहुत नाराज थे, हिन्दुओं की उनसे पूरी सहानुभूति थी।

१९१९ की कांग्रेस पंजाब के अमृतसर में होने वाली थी, डाक्टर किचलू और सत्यपाल उसके लिये उद्योग कर रहे थे। इतने में उनको गिरफ्तार कर, किसी अज्ञात स्थान में भेज दिया गया, जनता इस पर एकत्रित होकर मैजिस्ट्रेट के पास जाना चाहती थी कि वह इसी बीच ही में रोक दी गई। इस पर, कहते हैं, ढेले फेंके गये। इसी सिलसिले में नेशनल बैंक का गोरा मैनेजर मारा गया, सब समेत पाँच गोरे उस दिन मरे और कई इमारतों में आग लगा दी गई। जनता बहुत ही उत्तेजित थी गुजरानवाला तथा कसूर में भी काफी गड़बड़ी हो गई। महात्मा गाँधी ८ अप्रैल को ही डाक्टर सत्यपाल के निमन्त्रण पर पंजाब के लिये रवाना हो चुके थे, किंतु उन पर नोटिस तामील की गई, और जब उन्होंने उसे मानने से इनकार किया तो उन्हें पलबल नामक एक स्टेशन पर गिरफ्तार कर बम्बई वापस भेज दिया गया।

जलियानवाला हत्याकांड

१३ अप्रैल को हिन्दू नया साल पड़ता था, उस दिन अमृतसर के जलियानवाला बाग में एक सभा होने वीली थी। जलियानवाला एक ऐसा स्थान है, जिसके चारों तरफ दीवारें हैं, केवल एक तरफ से एक पतला रास्ता है और, वह भी इतना पतला कि उसके अन्दर से एक गाड़ी भी नहीं जा सकती। सभा बिल्कुल शान्तिपूर्वक हो रही थी, बीस हजार व्यक्ति उपस्थित थे जिसमें मर्द, औरत और बच्चे भी थे।

जनरल डायर की जादूगरी

हंसराज नामक एक व्यक्ति की वक्तृता हो रही थी कि इतने में जनरल डायर पचास गोरे और एक सौ सिपाहियों को लेकर वहाँ आये

और गोली चलाना शुरू कर दिया। जनरल डायर ने हन्टर कमीशन के सामने जो बयान दिया, उसके अनुसार उन्होंने पहले लोगों को तितर बितर होने को कहा, फिर दो तीन मिनट के अन्दर गोली चलाई। यदि यह बात सच भी मानी जाय तो भी बीस हजार आदमी दो मिनट में उस तङ्ग रास्ते से बाहर नहीं निकल सकते थे। यदि यह भी माना जाय कि जनरल डायर के हुक्म को बावजूद जनता ने उठने से इन्कार किया तो भी यह समझ में नहीं आता कि कौन सी जरूरत या विपत्ति ऐसी आ पड़ी कि जिससे इस तरह से एक हजार आदमियों को बात की बात में भून डाला गया। इस घटना के लिये केवल जनरल डायर के सिर पर दोष थोपना गलत होगा, क्योंकि ब्रिटिश साम्राज्यवाद ने योजना बनाकर यह सारी बातें की थीं ऐसा ही मैं समझता हूँ। बात यह है कि पंजाब से ही ब्रिटिश साम्राज्यवाद को सब से अच्छे जवान मिलते हैं, इसलिये स्वाभाविक तौर पर सरकार यह नहीं चाहती थी कि इस प्रान्त में हर प्रकार बदअमनी फैले। इस सम्बन्ध में सरकार Nip in the bud) पनपने से पहले नोच डालने वाली नीति बरतना चाहती थी। जनरल डायर तो साम्राज्यवाद के एक भाड़े के आदमी मात्र थे। जनरल डायर तब तक गोली चलाते रहे जब तक कि उनका सारा सरंजाम खतम न हो गया, और इस बात को उन्होंने अकड़ के साथ कमीशन के सामने कहा। क्यों न कहते उन्हें किसी प्रकार का कोई डर तो था ही नहीं। सोलह सौ गोलियाँ चलाई गई। सरकार की रिपोर्ट के अनुसार चार सौ व्यक्ति मरे और एक हजार दो हजार के बीच में घायल हुए, किन्तु यह झूठ है इससे दुगने व्यक्ति मरे और घायल हुये। कांग्रेस की ओर से बैठाये हुए कमीशन ने यही रिपोर्ट दी।

जनरल डायर की रक्त-लोलुपता इसी से तृप्त नहीं हुई, बल्कि उन्होंने अमृतसर के पानी तथा बिजली को भी बन्द करा दिया। रास्ते में चलने वालों को पकड़ पकड़ कर बेंत लगवाया गया, लोगों के छाती

के बल रेंगवाया गया, साइकिलें छीन ली गईं, दुकानों की चीजों के भाव सिपाहियों की आज्ञा के अनुसार होते थे, शहर को विभिन्न भागों में टिकटी बाँधकर बेंत लगाने का दृश्य सवेरे से शाम तक होता रहा, मार्शल्ला के अनुसार सैकड़ों आदमियों को जेलखाना भेद दिया गया।

सरकार का समर्थन

जैसा कि मैंने पहले ही लिखा है जनरल डायर के जोश में आ जाने ही से यह हत्याकांड नहीं हुआ, इसका प्रमाण यह है कि इसके बाद शीघ्र सर माइकल ओड़ायर ने जो, कि पंजाब के गवर्नर थे, एक तार जनरल डायर को भेजा—

"Your action correct Lieuteuant Governor approves" "तुम्हारी कार्यवाही ठीक है, लेफ्टिनेन्ट गवर्नर समर्थन करते हैं।"

इसी प्रकार पंजाब के अन्य स्थानों में भी भयङ्कर अत्याचार हुए, जिनके वर्णन पढ़ते हुए रोंगटे खड़े हो जाते हैं। कहीं कहीं पर तो बम भी वर्षाये गए। बहुत सी जगहों पर यह नियम बनाया गया कि हर एक हिन्दुस्तानी हर एक गोरे को सलाम करें। कहीं-कहीं एक हिन्दू और एक मुसलमान को एक साथ बाँध कर जुलूस निकाला गया, सरकार का मतलब हिन्दू मुसलमान एकता की हँसी उड़ाना था। कसूर में जो साहब इन्चार्ज थे उन्होंने एक प्रकान्ड पिंजड़ा बनाया, जिसमें १५० आदमी सार्वजनिक रूप से बन्दरों की तरह बन्द रहते थे। कर्नल जानसन साहब ने एक बरात पार्टी को पकड़वा कर सब को बेंत लगवाये। कहीं-कहीं भले आदमियों को रण्डियों के सामने बेंत लगवाये गए। राह चलनेवालों से कुलियों का काम लिया गया। एक हुक्म यह भी था कि स्कूल के लड़के दिन में आकर तीन बार ब्रिटिश झंडे की सलामी करें, बच्चों से प्रतिज्ञा कराई गई कि वे कभी कोई अपराध नहीं करेंगे तथा उनसे पश्चाताप कराया गया। लाला हरकिशनलाल

के चालीस लाख रुपये जब्त कर लिए गए, तथा उन्हें कालेपानी की सजा हुई। इन अत्याचारों का कहाँ तक वर्णन किया जावे।

महात्मा जी का मत

महात्माजी ने जब यह सब बातें सुनीं तो उन्होंने कहा कि भद्र अवज्ञा का प्रारम्भ कर उन्होंने हिमालय के समान गलती की है क्योंकि लोग सच्चे भद्र अवज्ञाकारी नहीं थे। १६१६ की कांग्रेस का अधिवेशन पंडित मोतीलाल की अध्यक्षता में अमृतसर में हुआ, इसमें पञ्जाब के हत्याकांड की बहुत निन्दा की गई। कांग्रेस ने पञ्जाब के हत्याकांड के विषय में एक कमेटी बैठाई, इसके सदस्य महात्मा गांधी, मोतीलाल नेहरू, सी० आर० दास, अब्बास तैयबजी, फजलुलहक और मि० के० सन्तानम् हुए। बाद को पंडित मोतीलाल की जगह पर मि० जयकर इसके सदस्य हुए।

मान्टेग्यू चेम्सफोर्ड सुधार

जिस समय रौलट रिपोर्ट प्रकाशित हुई थी उसी के करीब मान्टेग्यू चेम्सफोर्ड रिपोर्ट भी प्रकाशित हुई, किन्तु उससे कुछ नरम दलवालों ही को संतोष हुआ। एक मजे की बात यह है कि अब तक के भारतवर्ष के गरम दल के सार्वजनिक नेता लोकमान्य तिलक जब इसी बीच में सर वालनटाईन चिरोल से मुकदमा लड़ने के लिये विलायत गये थे, उस समय उन्होंने कुछ इस किस्म की बातें कही थीं जिससे यह ध्वनि निकलती थी कि जो कुछ भी मिला है वे उसे ले लेंगे और बाकी के लिये लड़ेंगे, किन्तु बम्बई में उतरते ही उन्होंने कह दिया कि सुधार बिल्कुल नाकाफी हैं। फिर भी उन्होंने बादशाह को एक बधाई का तार भेजा और Responsive cooperation के लिये तैयारी दिखलाई। कांग्रेस में इस सुधार को लेकर काफी झगड़ा हुआ। मालवीयजी और गांधी जी ने यह कहा कि सरकार के साथ उसी हद तक सहयोग किया जाय जिस हद तक सरकार करे। सी० आर० दास इस

योजना के बिल्कुल विरुद्ध थे, और उन्होंने एक प्रस्ताव मान्टेग्यू चेम्स-फोर्ड योजना को अस्वीकार करते हुए रक्खा, गांधी जी ने इस पर एक संशोधन रक्खा जिससे मूल प्रस्ताव बहुत नरम हो जाता था। अंत में एक ऐसा प्रस्ताव बनाया गया जो दोनों को मंजूर हो। मजे की बात यह है कि गाँधीजी अमृतसर में सहयोग के पक्ष में थे और सी० आर० दास असहयोग के पक्ष में थे।

असहयोग का तूफान

सन् १६२० में लाला लाजपतराय के सभापतित्व में कलकत्ते में कांग्रेस का एक विशेष अधिवेशन हुआ। इसमें देशबन्धु चित्तरंजन दास, मालवीयजी, विहिनचन्द्र पाल, आदि पुराने नेताओं के विरोध होते हुए भी असहयोग का प्रस्ताव पास हो गया। दिसम्बर १६२० में कांग्रेस का नियमित अधिवेशन नागपुर में चक्रवर्ती विजय राघवाचार्य के सभापतित्व में हुआ, इसमें स्वयं देशबन्धु दास ने, जिन्होंने कलकत्ता के अधिवेशन में असहयोग का ख़ूब विरोध किया था, असहयोग के प्रस्ताव को रक्खा और यह भारी बहुमत से पास हो गया।

१६२१

१६२१ में असहयोग आन्दोलन शुरू कर दिया गया, गांधी जी ने एक करोड़ सदस्य, एक करोड़ रुपया, विदेशी वस्त्रों का जलाना आदि कई एक कार्य क्रम देश के सामने रक्खे। और यह कहा कि यदि यह पूर्ण हो गये तो ३१ दिसम्बर आधी रात तक स्वराज्य मिलेगा। कुछ भी हो देश में बड़ा जोश पैदा हुआ। इसके पहले ही बहुत से क्रांतिकारी छूट चुके थे, वे इस आन्दोलन को देखने लगे, और एक तरह से अपने काम को स्थगित कर दिया। एक ऐसी धारणा लोगों में है कि छूटे क्रान्तिकारी असहयोग आन्दोलन में कूद पड़े, ऐसा कई पुस्तकों में भी देखने में आया, किन्तु यह बात गलत जान पड़ती है, क्योंकि मैं जब अपने जाने हुए सन् १६१९ के पहले के क्रान्तिकारियों
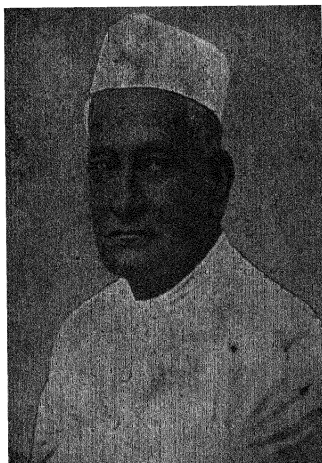
पं॰ मोतीलाल नेहरू

भारत में सशस्त्र क्रांति-चेष्टा का रोमांचकारी इतिहास

चित्तरञ्जन दास

के विषय में सोचता हूँ तो पाता हूँ कि उनमें से कोई भी असहयोग आन्दोलन में जेल नहीं गये, एकाध इसके अपवाद हो सकते हैं, किन्तु इससे नियम ही प्रमाणित होता है।

चौरी चौरा

असहयोग आन्दोलन चल रहा था, बहुत से लोग जेल में ठूँस दिये गये, इतने में १२ फरवरी १६२२ को गोरखपुर के निकट चौरी चौरा में एक ऐसी घटना हो गई जिससे सारा आंदोलन ही महात्मा जी द्वारा बन्द कर दिया गया। घटना यह थी कि एक भीड़ ने थाने में आग लगा दी, जिसके फलस्वरूप २१ सिपाही तथा दारोगा जल मरे। महात्मा गाँधी ने इस पर आम लोगों में अहिंसा के भाव की कमी देखकर इस आन्दोलन को स्थगित कर दिया। १३ मार्च को महात्मा जी भी गिरफ्तार कर लिये गये, एक आश्चर्य की बात यह है कि जब तक आन्दोलन जोरों से चलता रहा और गाँधी जी खुल्लमखुल्ला तौर से उसका नेतृत्व कर रहे थे, उस समय उनको किसी ने नहीं पकड़ा, किन्तु ज्योंही उन्होंने इस आंदोलन को बन्द कर दिया, त्योंहीं सरकार ने उनको पकड़ लिया। यह कोई आकस्मिक घटना नहीं थी, क्योंकि गाँधी जी जिस समय आन्दोलन चला रहे थे, उस समय वे तैंतीस करोड़ थे, किन्तु जिस समय उन्होने आन्दोलन स्थगित कर दिया, और लोगों की बढ़ती हुई उमंगों पर पानी डाल दिया, उनको एक खामख्याली के नाम पर निरुत्साह कर दिया, उस समय वे एक हो गये।

संसार में उस समय क्रान्तिकारी शक्तियाँ प्रबल हो रही थीं, भारतवर्ष में भी उसकी अभिव्यक्ति हो रही थी, इस हालत में अहिंसा के बहाने से इस आंदोलन को रोक कर गाँधी जी ने वाकई हिमालय के समान गलती की। यह बात सच है कि गाँधी जी ही वे भगीरथ हैं जो हमारे राष्ट्रीय आन्दोलन को मध्यवित्त तथा उच्च श्रेणी के स्वर्ग से उतार लाकर जनता के मर्त्य में ले आये। गाँधी

जी की हमारे राष्ट्रीय आन्दोलन को यह बहुत बड़ी देन है, जिसकी जितनी भी प्रशंसा की जाय थोड़ी है; किन्तु उसके जो तर्क गत परिणाम हैं उस तक वे जाने में असमर्थ रहे हैं। यही बराबर उनकी राजनीति की हिमालय के समान गलती रही है। महात्मा जी बहुत ही पक्के राजनीतिज्ञ हैं, उनकी राजनीतिज्ञता में यदि कोइ खामी है तो यह है कि उनके कुछ खामख्याल हैं। वे जब गलतियाँ करते हैं इन्हीं की यानी सत्य और अहिंसा की सनक की बदौलत करते हैं। यह बात सच है कि बाद के युग में गाँधी जी अधिक मुक्त हो गये, शोलापुर के कांड से भी उन्होंने अपने सत्याग्रह आन्दोलन को स्थगित नहीं किया, वह इसका प्रमाण है कि महात्माजी ने असहयोग आन्दोलन को ऐसे समय में बन्द कर कितनी बड़ी गलती की उनके आन्दोलन बन्द करने से जो प्रतिक्रिया हुई उससे जाहिर है कि उनकी गलती खतरनाक थी।

प्रतिक्रिया का दौरदौरा

वही स्वामी श्रद्धानन्द जिन्होंने ब्रिटिश साम्राज्यवाद की बन्दूक के सामने अपना सिंह सा सीना तान दिया था, अब शुद्धि-संगठन में लग गये। एक ध्यानयोग्य बात इस सम्बन्ध में यह है कि मुस्लिम लीग का सन् १९२१ में कोई अधिवेशन नहीं हुआ, बात यह है मुस्लिम जनता dircet action चाहती थी और ये उच्च तथा मध्यम श्रेणी के नेता जेल जाने या तकलीफ उठाने के लिये तैयार नहीं थे। सन् १९२२ में लखनऊ में इसका अधिवेशन बुलाया गया तो कोरम ही पूरा न हुआ, किन्तु असहयोग के स्थगित होते ही यह फिर पनपा और खूब पनपा। तब लीग तनजीम ने जोर पकड़ा, कौन्सिल-प्रवेश की चर्चा बढ़ी, याने वही सब बातें हुई जो मध्यम श्रेणी के आन्दोलन की विशेषता है। थोड़े दिन के लिये जो आशा की वत्ती जल उठी थी वह बुझ सी गई, जो क्रान्तिकारी अब तक चुप बैठे थे वे आगे बढ़े, और फिर से बम आदि बनना, सङ्गठन करना, दल बनना शुरू हो गया। उस समय देश

के सामने कोई कार्यक्रम नहीं था, करते न तो वे क्या करते। सत्य अहिंसा के नाम पर या किसी ख्याल के ऊपर हाथ धर कर बैठना उनके वश में नहीं था।

क्रान्तिकारियों की पिस्तालें फिर तन गईं

असहयोग के ठप्प हो जाने से देश में जो प्रतिक्रिया का दौरदौरा हुआ, उसके दलदल में सभी फँस गए। कुछ सम्प्रदायवादी हो गये, कुछ सुधार और विधानवादी; किन्तु भारत के कुछ नौजवानों ने इस प्रकार प्रतिक्रिया के अन्दर आना अस्वीकार किया। बिखरे हुए क्रांतिकारी दल फिर से संगठित किये जाने लगे, कुछ पुराने क्रांतिकारी नेता पस्त हो चुके थे, उनकी जगह नये नेता आये, इन नयों में जोश था, बलबला था, बिलबिलाहट थी, उमङ्ग थी, किन्तु उनमें परिपक्वकता नहीं आई थी। कुछ पुराने नेता भी सङ्गठन करने लगे, किन्तु सम्हल सम्हल कर। उत्तर भारत में श्री शचीन्द्रनाथ सान्याल तथा बङ्गाल में अनुशीलन समिति संगठन करने लगी। उत्तर भारत के आन्दोलन की हम अगले अध्याय में विस्तृत आलोचना करेंगे, किन्तु इस बीच में जो छिटफुट घटनायें हुईं, उनका यहाँ उल्लेख करेंगे।

शंखारी टोला—डाक लूट

३ अगस्त १९२३ को कुछ क्रांतिकारियों ने शंखारी टोला पोस्ट आफिस पर हमला कर दिया। उनका उद्देश्य संगठन के लिये रुपये प्राप्त करना था, किन्तु वे वहां जाकर इस प्रकार घबड़ा गये कि पोस्ट-मास्टर को मार कर चल दिये। इस सम्बन्ध में नरेन्द्र नामक एक

विवाहित युवक को गिरफ्तार किया गया, उसने सब तो नहीं किन्तु कुछ बातें अदालत के सामने कबूल दीं, फिर भी जज ने उसे फाँसी की सजा दी, हाँ हाईकोर्ट ने उसकी सजा काले पानी की कर दी। यह काम किसी सुसङ्गठित दल का नहीं था, बल्कि यों ही कुछ युवकों के दिल में जोश आया, और उन्होंने कर डाला, फिर इससे जमाने की ढाल का पता लगता है। इसी सम्बन्ध में सरकार ने एक षड्यंत्र चलाने की कोशिश की किन्तु वह असफल रही, तब सरकार ने १८१८ के तीसरे रेगूलेशन के अनुसार उन व्यक्तियों को नजरबन्द कर लिया।

ताँता जारी हो गया

सरकार इस मुकदमे से समझ गई कि मामूली कानूनों से उसके दमन का काम न चलेगा, तब उसने सोचा मार्शल ला की तरह या रौलट एक्ट की तरह कोई कानून की आवश्यकता है। किन्तु सोचना और करना एक नहीं है, सरकार जानती थी जनमत इसका विरोध करेगा; इसलिये सरकार सोचती रही। इसी बीच में कई और वारदातें हुईं, ६ सितम्बर १६२३ को अमर शहीद यतीन्द्र मुकर्जी की वर्षी सार्वजनिक रूप से कलकत्ते में मनाई गई। सरकार को यह बात बहुत अखरी। बागी की यह इज्जत, किन्तु क्या करती सरकार खून की घूँटें पीकर रह गई। दिसम्बर १६२३ में चटगांव में एक क्रांतिकारी डाका पड़ा, उसमें (८०००) रुपया क्रांतिकारियों के हाथ आया, जो दारोगा इसकी तहकीकात के लिये तैनात हुआ वह गोली से मार डाला गया, और सरकार उसके मारने वाले को गिरफ्तार न कर सकी। अब तो सरकार के तेवर और भी चढ़ गये।

गोपीमोहन साहा

भारतीय पुलिसवालों में सर चार्लस टेगर्ट क्रान्तिकारियों के विषय में विशेषज्ञ समझे जाते थे, सैकड़ों क्रान्तिकारियों को वे गिरफ्तार करवाकर फाँसी के तख्ते पर तथा समुद्र पार कालेपानी भेजवा चुके

थे। बहुत दिनों से क्रान्तिकारी उनकी टोह पर थे, किन्तु वे किसी प्रकार हत्थे पर चढ़ते नजर नहीं आते थे। नतीजा यह था कि एलिशियम रो में क्रांतिकारियों के साथ पैशाचिक अत्याचार कर, उनको पीटकर, उनका वीर्य स्खलित करवाकर, उनको नंगा कर तथा उन पर टट्टी की बालटी उलटवाकर उनसे बयान लेने की कोशिश उसी प्रकार जारी थी। उनके सहकारियों में लोमैन थे, बसन्त चटर्जी तो प्राक्-असहयोग युग में ही यमपुर भेज दिये गये थे। क्रांतिकारियों का एक टोली ने सोचा कि टेगर्ट साहब को क्यों न उसी लोक में भेजा जाय जहाँ वे सैकड़ों माँ के लाड़लों को भेज चुके हैं, ताकि वे वहाँ जाकर उनपर निगरानी रख सकें? इस नवयुवकों में गोपीमोहन साहा भी एक थे। साहा को मिस्टर टेगर्ट को मारने की धुन इस प्रकार सवार हुई कि वे दिन रात उन्हीं के फिराक में घूमने लगे, साथ में एक भरा हुआ तमंचा रहता था। इधर टेगर्ट साहब की यह बेवफाई थी कि वे कहीं मिलते ही न थे, गोपीमोहन भी छोड़ने वाले जीव न थे, वे तो दिवाना हो चुके थे। वे टेगर्ट साहब के कूचे में रोज बीस बीस फेरा करने लगे, एक दिन जब साहा इसी प्रकार घूम रहे थे, टेगर्ट साहब के बङ्गले से एक अंग्रेज निकला, गोपीमोहन चौकन्ने हो गये, उन्होंने दिल में कहा—हाँ यह टेगर्ट है, वह तो टेगर्टमय हो चुके थे, फिर क्या था प्यासा जैसे पानी के पास दौड़ता है उसके पास पहुँचे। हाथ में वही चिरसाथी बदले का भूखा तमंचा था। धाँय! धाँय!! धाँय!!! दनादन गोलियाँ चलीं, वह अंग्रेज वहीं ढेर हो गया, साहा ने समझा उनका प्रण पूरा हो गया। किन्तु यह व्यक्ति जो मारे गये टेगर्ट नहीं थे, बल्कि कलकत्ते के एक अंग्रेज व्यापारी मिस्टर डे थे, गोपीनाथ साहा गिरफ्तार कर लिये गये थे और बाद को उनको फाँसी की सजा दी गई। गोपी मोहन को जब मालूम हुआ कि उन्होंने एक गलत आदमी की हत्या का है तब उसे बड़ा दुःख हुआ, उसने अदालत में साफ साफ कहा—"मैं तो टेगर्ट को मारना चाहता था, मुझे बड़ा

दुख है कि मैंने एक निर्दोष अंग्रेज़ को मार डाला।

गोपीमोहन साहा पर जेल में बहुत अत्याचार किये गये, उस समय उस जेल में रहनेवले नजरबन्दों से मुझे मालूम हुआ है कि उन्हें वर्फ में गाड़ दिया गया था ताकि वे मुखबिर हो जायँ, किन्तु वे साम्राज्यवाद की सब चालों को व्यर्थ करते रहे। नजरबन्दों से यह भी बात मुझे मालूम हुई है कि जिस कोठरी में गोपी साहा रक्खे गये थे उस कोठरी में उनकी फाँसी के बाद लोगों ने बहुत दिनों तक यह वाक्य दीवारों पर लिखा देखा था—

"भारतीय राजनीतिक्षेत्रे अहिंसार स्थान नेई"

याने भारतीय राजनीति क्षेत्र में अहिंसा का कोई स्थान नहीं है।

रौलट ऐक्ट एक दूसरे रूप में !!!

गोपी मोहन साहा की फाँसी के बाद बङ्गाल के युवकों में ही नहीं, बल्कि बङ्गाल की सारी राजनीति में एक उबल सा आ गया। सिराज गंज में जो प्रान्तीय राजनैतिक कान्फ्रेंस हुई उसमें एक प्रस्ताव गोपी मोहन साहा की वीरता की प्रशंसा में पास हुआ इस बात को लेकर सारे भारत में खलबली मच गई। बात यह है कि महात्मा गांधी ने कड़े शब्दों में इस प्रस्ताव की निन्दा की, उन दिनों देशबन्धु दास बङ्गाल के सवश्रेष्ठ नेता थे, उन्होंने बड़े जोर से सीराज-गंज के प्रस्ताव का समर्थन किया। बहुत दिनों तक यह चिट्ठी पत्री अखबारों में चलती रही, सारे हिन्दुस्तान के नवयुवक देशबन्धु दास के साथ थे, वे नहीं चाहते थे कि राष्ट्रीय आन्दोलन किसी के लिए प्रयोग का क्षेत्र बना दिया जाय, और इस प्रकार वह एक निरर्थकता में पर्य-वसित हो। इस सिलसिले में गोपी मोहन साहा ने अपनी कोठरी की दीवार पर जो वाक्य लिखे वह भी स्मरणीय हैं। सच्ची बात तो है कि महात्मा गांधी ने जब से देश के आन्दोलन की बागडोर अपने हाथ में ली तब से हमारे राजनैतिक क्षेत्र में हिंसा अहिंसा के नाम पर एक

अजीब अवैज्ञानिक और अवाञ्छनीय साम्प्रदायिकता या भेदभाव उत्पन्न हो गया। सरकार बहुत चालाक थी, उसने इसका खूब फायदा उठाया जैसा कि बाद को दिखलाया जायगा। अब तक राजनैतिक कैदियों के छोड़ने में अर्थात् समय से पहिले छोड़ने में किसी प्रकार की हिंसा या अहिंसा की बात नहीं उठाई जाती थी किन्तु इसके बाद से जब जब राजनैतिक बन्दियों को छोड़ने का प्रश्न सरकार के सामने आया तब-तब यह प्रश्न हिंसा और अहिंसात्मक कैदी इस रूप में आता रहा। अहिंसा पर महात्मागांधी ने अत्यधिक जोर दिया उसी का नतीजा यह हुआ, गांधी जी के पहिले यह प्रश्न उठता ही नहीं था। मैंने दिखलाया है कि सिडीशन कमेटी की रिपोर्ट में भी इस प्रकार का कोई भेद भाव नहीं बरता गया था। बाद को जब थोड़े दिनों बाद सरकार ने बङ्गाल के आर्डीनेन्स को देश के सामने रखा उस समय भी इसी हिंसा अहिंसा के मूर्खतापूर्ण प्रश्न के कारण इसका इतना विरोध नहीं हुआ जितना कि होना चाहिये था। ब्रिटिश साम्राज्यवाद के लिए यह बड़ी बुद्धिमत्ता की बात है कि उसने उसी रौलट एक्ट को एक दूसरे रूप से बङ्गाल में लगाया। किन्तु देश ने इसे करीब करीब मजे में हजम कर लिया, कोई direct action की धमकी तक नहीं आई।

१९२४ अप्रैल में मिस्टर ब्रूस की हत्या करने का प्रयत्न किया गया, फिर फरीदपुर में बम के कारखाने का पता लगा। दो एक व्यक्ति पिस्तौल के साथ गिरफ्तार हुये। शांतिलाल नामक एक व्यक्ति बेलिया घाटा स्टेशन के पास मरा हुआ पाया गया। समझा जाता है कि उसको क्रान्तिकारियों ने इसलिए मार डाला कि उसके सम्बन्ध में यह संदेह था कि उसने जेल रहते समय पुलिस को कुछ खबरें दीं। कलकत्ता खद्दर भण्डार के पास एक व्यक्ति बम से मारा हुआ पाया गया, समझा जाता है कि इसको भी क्रान्तिकारियों ने मुखबिरी के सन्देह पर मारा। १८ अक्टूबर सन् १९२४ में संयुक्त प्रांत से लौटते हुये श्रीयोगेशचन्द्र चटर्जी हवड़ा स्टेशन पर गिरफ्तार हो गये। उनके पास कुछ कागजात

मिले जिससे सरकार को पता लगा कि बङ्गाल के बाहर २३ जिलों में क्रान्तिकारी सङ्गठन बड़े जोरों से हो रहा है। अब तो सरकार घबड़ा उठी। क्योंकि सरकार ने यह साफ समझ लिया कि जब बङ्गाल के क्रान्तिकारी बाहर जाकर सङ्गठन करने में जुटे हैं, तब तो बङ्गाल के अन्दर बहुत ही जबरदस्त सङ्गठन हो चुका होगा। सरकार समझती थी कि मामूली काम से इस आन्दोलन को दबाना सङ्गठन नहीं है, यह समझ सरकार के लिये कोई नई बात नहीं थी। रौलट कमेटी की नियुक्ति इसी बात को लेकर हुई थी किन्तु सरकार को जनमत के सामने रौलट बिल को वापस लेना पड़ा था। किन्तु सरकार को इसी रौलट बिल की ही जरूरत थी, इसलिए उसने उसी बिल का चेहरा बदल कर बंगाल आर्डीनेन्स के नाम से १६२४ के २५ अक्टूबर को जारी कर दिया। उसी दिन रात में सैकड़ों मकानों की तलाशी ली गई, कलकत्ता की कांग्रेस कमेटी के दफतरों की तथा बंगाल स्वराज्य पार्टी के दफ्तरों की तलाशी ली गई। एक ही दिन में स्वराज्य पार्टी के ४० सदस्यों को गिरफ्तार किया गया!······

सुभासचन्द्र बोस की गिरफ़्तारी

उस समय गिरफ्तार होनेवाले में वर्तमान राष्ट्रपति श्री सुभाषचन्द्र बोस भी थे, इनके साथ ही बंगाल कौंसिल के दो सदस्य श्री अनिल वरन राय तथा श्री सत्येन्द्र मित्र भी थे। सुभास बाबू उन दिनों कलकत्ता कारपोरेशन के एक्ज्यूकेटिव अफीसर थे। सच बात कही जाय तो देशबन्धु दास के अतिरिक्त सभी बड़े बड़े बंगाली नेता गिरफतार कर लिए गये। इसके अतिरिक्त बंगाल के विभिन्न स्थानों में तलाशियां तथा गिरफ़ारियाँ हुई, किन्तु सबसे बड़े मजे की बात यह है कि कहीं भी पुलिस को कोई आपत्ति जनक वस्तु न मिली।

सारे देश में इस आर्डिनेन्स की निन्दा हुई। महात्मा गांधी तक

ने इस आर्डिनेन्स का जोरदार जबानी विरोध किया। इसके बाद तो जिस पर भी सरकार को सन्देह होता था उसी को गिरफ्तार कर लेती थी। किन्तु क्रान्तिकारी आन्दोलन दबने के बजाय और बढ़ता ही गया यह बात पाठकों को आगे पता लग जायगा।

काकोरी षड्यन्त्र

पहिले के अध्यायों से पाठकों को पता लग गया होगा कि उत्तर भारत में लड़ाई के जमाने में क्रांतिकारी आंदोलन बड़े जोर पर था। रासविहारी, हरदयाल, ओवेदुल्ला, राजा महेन्द्र प्रताप, पं० परमानन्द, बाबा सोहन सिंह आदि सुविख्यात क्रांतिकारी उत्तर भारत में ही पैदा हुये थे, किंतु उत्तर भारत में फिर से क्रांतिकारी आंदोलन को पुनर्जीवित करने का श्रेय कई कारणों से बनारस षड्यंत्र के नेता श्री शचीन्द्रनाथ सान्याल को ही हुआ। श्री शचीन्द्रनाथ सान्याल आम माफी के सिलसिले में २० फरवरी सन् १९२० को छोड़ दिये गये थे, इस प्रकार कोई साढ़े चार साल जेल में रहने के बाद छोड़ दिये गये। इधर बनारस षड्यंत्र के ही सेठ दामोदर स्वरूप भी छूट गये। श्री सुरेश चन्द्र भट्टाचार्य जो लड़ाई के जमाने में नजरबन्द थे इसके पहिले छूट चुके थे। जब असहयोग के बाद प्रतिक्रिया का जमाना आया उस समय देश के युवकों में एक अजीब बेचैनी थी। श्री शचीन्द्र नाथ सान्याल ने इस बेचैनी का फायदा उठाकर फिर से क्रांतिकारी आंदोलन को उत्तर भारत में चलाना चाहा। यहाँ यह बात ध्यान देने योग्य है कि यद्यपि श्री शचीन्द्र नाथ सान्याल २० फरवरी १९२० को छूट गये थे, किन्तु फिर भी उन्होंने असहयोग आंदोलन में कोई भाग नहीं लिया। सच बात तो यह कि १६२६ में ये लोग असहयोगी नेताओं से भी पिछड़ गये। ऊपर जिन व्यक्तियों का नाम लिया गया है, उनमें से

केवल श्री दामोदर स्वरूप सेठ ने ही असहयोग आन्दोलन में जोरों से भाग लिया और बड़ी से बड़ी तकलीफें उठाई।

हिन्दुस्तान प्रजातान्त्रिक संघ

शचीन्द्र बाबू ने पहिले ही एक क्रान्तिकारी दल की स्थापना की थी, और इसमें प्रान्तीय कमेटी के कुछ सदस्य भी मुकर्रर हुए थे, इनमें बाद को श्री सुरेशचन्द्र भट्टाचार्य मशहूर हुये। जब शचीन्द्र बाबू कुछ हद तक संस्था को आगे बढ़ा चुके, तब बङ्गाल से अनुशीलन समिति ने दूत भेजा। पहिले-पहल श्री क्षेत्रसिंह ने आकर अनुशीलन की ओर से बनारस में कल्याण आश्रम नाम से एक आश्रम खोला। यह आश्रम केवल दिखाने के लिये था, असल में वे गुप्त रूप से क्रान्तिकारी कार्य करते थे। यहीं पर इनसे श्री शचीन्द्र नाथ बक्सी से भेंट हुई। इसके बाद मन्मथनाथ से तथा अन्य लोगों से भी भेंट हुई। बहुत दिनों तक यह दोनों दल अर्थात् शचीन्द्र बाबू का दल और अनुशीलन दल अलग अलग काम करते रहे, किन्तु तजर्बा से यह देखा गया कि जब दोनों दलों का उद्देश्य तथा उपाय एक ही है तो यह अच्छा है कि दोनों दल सम्मिलित कर दिये जायँ, और इस प्रकार क्रांतिकारी आंदोलन को अग्रसर किया जाय। इसके लिये बातचीत होती रही, किन्तु प्रारम्भ में बहुत दिनों तक कोई परिणाम नहीं निकला। यह ब्यौरे की बात है कि इस प्रकार मेल होने में देर क्यों हुई, इस इतिहास में ऐसी बात का स्थान नहीं हो सकता, मैं जब अपनी आपबीती जेलबीती लिखूँगा उस समय इस बात पर, यदि जरूरत समझा तो रोशनी डालूँगा।

दल का काम तथा उद्देश्य

जब दोनों दल एक सूत्र में बंध गये, तो उसका नाम हिन्दुस्तान रिपब्लिकन एसोशिएसन पड़ा। इस दल का एक विधान बाद को तैयार किया गया, जिसको मुकदमें में आमतौर से पीला काग़ज़ बतलाया जाता है। इस दल का उद्देश्य सशस्त्र तथा संगठित

क्रान्ति द्वारा Federated Repuplic of the United States of India" भारत के सम्मिलित राष्ट्रों का प्रजातंत्र संघ" स्थापित करना था, याने ऐसी शासन प्रणाली स्थापित करना जिसमें प्रान्तों के घरेलू विषयों में पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त होगी, प्रत्येक बालिग़ तथा सही दिमाग़ वाले व्यक्ति को वोट देने का अधिकार प्राप्त होगा, तथा ऐसी समाज पद्धति की स्थापना होगी जिसमें मनुष्य द्वारा मनुष्य का शोषण न हो सके। यह सब बातें होते हुये भी यह नहीं कहा जा सकता कि इस विधान को बनाने वाले के सामने सोवियट रूस या dictatorship of the proletariat (किसान और मजदूर वर्ग का अधिनायकत्व) का आदर्श था। इस षड्यन्त्र के सिलसिले में बहुत दिनों बाद जाकर अर्थात् जनवरी सन् १६२५ में एक क्रांतिकारी परचा बाँटा गया था, जिसका नाम The Revolutionary (क्रांतिकारी) था। इसमें यह लिखा अवश्य था कि हमारे सामने आधुनिक रूस का आदर्श है, किन्तु लेखक ने इस वक्तव्य के सम्पूर्ण (implication) अर्थ को न समझ कर ऐसा लिखा था। हमें स्मरण है कि जहाँ उसमें यह बात थी कि रूस का आदर्श हमारे सन्मुख है वहाँ यह भी बात थी कि प्राचीन ऋषियों का आदर्श हमारे सम्मुख था। इससे यही सूचित होता है कि लेखक ने रूस के आदर्श को नहीं समझा था। केवल वे ही नहीं उस दल का कोई भी व्यक्ति इस बात को नहीं समझता था!

मैंने अपनी लिखित चन्द्रशेखर आजाद नामक पुस्तक में क्रांतिकारी दल के आदर्शों के विकास पर वैज्ञानिक विवेचन किया है। इस जगह पर उसका पुनरुल्लेख करना सम्भव नहीं है, किन्तु इतना फिर भी कह देना आवश्यक है कि बराबर क्रांतिकारी दल के आदर्श में अर्थात ध्येय में विकास होता गया है। यद्यपि क्रांतिकारी दल का कार्यक्रम प्रारम्भिक दिनों से लेकर अन्त तक एक ही रहा है, किन्तु फिर भी उसके ध्येय में बराबर विकास होता रहा। मैंने अपनी पुस्तक

चन्द्रशेखर आजाद में भारतवर्ष के क्रांतिकारी आन्दोलन को आदर्शों की दृष्टि से पाँच भागों में विभक्त किया है, संक्षेप मे वे यों हैं:—

(१) वह समय जब कि विद्रोह भाव के सिवा कोई विचार ही नहीं थे १८६३—१६०५।

(२) वह समय जब स्वाधीनता की एक धुँधली धारणा थी १६०५—१६१४।

(३) वह समय जब स्वाधीनता की धारणा स्पष्ट हो गई, और इसमे प्रजातन्त्र की भी धारणा निश्चित रूप से शामिल होगई १६१४—१६१९।

(४) वह समय जब कि प्रजा तान्त्रिक स्वाधीनता के साथ साथ एक अस्पष्ट आर्थिक समानता क्रान्तिकारियों के मन में आदर्श रूप में आई १६२१—१६२८। बीच में १६१६ से १६२१ दो वर्ष तक आन्दोलन बन्द सा रहा, देश में एक दूसरा ही प्रयोग असहयोग के रूप में हो रहा था।

(५) उपरोक्त बातों के अलावा इसके बाद के युग में वर्गबुद्धि भी आगई १६२९—३२।

इस विषय में आलोचना को यही तक रख कर अब हम षड़यन्त्र के विषय पर जाते हैं। बनारस में इस आन्दोलन में प्रमुख श्री शचीन्द्र नाथ बक्शी, श्री रवीन्द्र मोहन कार तथा श्री राजेन्द्रनाथ लाहड़ी थे, कानपुर मे सुरेश बाबू ही दल का संचालन कर रहे थे। शाहजहाँपुर में पं० राम प्रसाद इस दल के नेता थे।

रामप्रसाद बिस्मिल

पं० राम प्रसाद पहिले मैनपुरी षड़यन्त्र में फरार हो गये थे किन्तु अन्त तक वे पुलिस की पकड़ में नहीं आये जब वे सरकार द्वारा माफ कर दिये गये, तभी वे प्रकाश्य रूप से प्रकट हुये। पं० रामप्रसाद ने अपने जीवन की थोड़ी सी बातें लिखी हैं इस में से कुछ बातें हम यहां पर देते हैं। पं० रामप्रसाद के पूर्व पुरुष ग्वालियर राज्य के रहने वाले

थे किन्तु कई कारणों से वे आकर शाहजहाँपुर में बस गये। उनके पिता का नाम मुरलीधर था, बहुत गरीब परिवार था। पं० राम प्रसाद ने लड़कपन से ही आर्यसमाजी शिक्षा पाई थी, बाद को भी वे कट्टर तो नहीं किंतु आर्य समाजी जरूर बने रहे। मैनपुरी षड्यंत्र में उन का काफी बड़ा हिस्सा था। बाद को जब वे भाग गये तो वे ग्राम में ग्राम-वासियों की भाँति निवास करने लगे, तौभी वे कभी पुलिस के हाथ नहीं लग सके। वे उन दिनों अपने हाथ से खेती करते थे, और कुछ दिनों में ही एक अच्छे खासे किसान बन गये, इसी प्रकार उन्होंने कई साल बिताये।

राजकीय घोषणा के पश्चात् जब वे शाहजहाँपुर आये तो शहरवालों की अद्भुत दशा देखी। कोई पास तक खड़े होने का साहस नहीं करता था, जिसके पास वे जाकर खड़े हो जाते वह नमस्ते करके चल देता था। पुलिस वालों का बड़ा प्रकोप था, हर समय छाया की भाँति या कुत्ते की भाँति वे पीछे फिरा करते थे। तीन तीन दिन तक पं० जी को खाना नसीब नहीं होता था। संसार अँधेरा मालूम देता था। इसी प्रकार जीवन संग्राम में लुढ़कते पुढ़कते वे किसी तरह दिन गुजारते रहे। इस दौरान में उन्होंने कई पुस्तकें भी लिखीं, किन्तु उसमें घाटा हुआ, और कई प्रकाशकों तथा पुस्तक विक्रे-ताओं ने उनके रुपये मार लिये।

योगेश बाबू से मिलना

पं० रामप्रसाद सोच ही रहे थे कि क्रांतिकारी दल का सङ्गठन किया जाय, इतने में उन्हें मालूम हुआ इस प्रांत में दल का फिर से सङ्गठन हो रहा है। श्री योगेशचन्द्र चटर्जी जुलाई सन् १६२३ में इस प्रांत में अनुशीलन की ओर से प्रतिनिधि बनकर आये। योगेश बाबू जब से आये, तब से खूब जोर से काम करते रहे, किन्तु वे केवल १८ महीने काम कर सके। योगेश बाबू घूमते फिरते कानपुर के श्री राम दुलारे

त्रिवेदी को साथ लेकर शाहजहाँपुर गये, और वहीं से पं० राम प्रसाद इस वृहत् दल में सम्मिलित हो गये।

बाद को जाकर पं० रामप्रसाद दल के लिए बहुत बड़े जरूरी व्यक्ति साबित हुये क्योंकि उनको मैनपुरी से अस्त्रशस्त्र, डकैती आदि का ज्ञान था। इस षड्यन्त्र में लिप्त दूसरे व्यक्तियों का थोड़ा सा परिचय देकर फिर हम आगे बढ़ेंगे। पहिले हम उन लोगों का परिचय देंगे जिनको काकोरी षड्यन्त्र में फाँसी की सजा हुई थी।

अशफाक उल्ला

लड़ाई के ज़माने में बहुत से मुसलमानों ने क्रांतिकारी आंदोलन में प्रमुख भाग लिया यह तो पहिले ही आ चुका है। अशफाक उल्ला खाँ शाहजहाँपुर के रहनेवाले थे। इनके खानदान के सभी लोगों का शुमार वहाँ के रईसों में है, तैरने, घोड़े पर सवारी करने, तथा बन्दूक चलाने में वे घर ही में प्रवीणता प्राप्त कर चुके थे। अशफाकुल्ला बड़े सुडौल और सुन्दर युवक थे, ऐसे सुन्दर व्यक्ति कम होते हैं। पं० रामप्रसाद से इनकी लड़कपन की ही दोस्ती थी, जब राम प्रसाद फरारी से प्रगट हुये उस समय अशफाकुल्ला क्रांतिकारी काम में शामिल होने की इच्छा प्रगट करते रहे, शुरू शुरू में तो पं० जी ने इनकी बातों को टाल दिया, किन्तु जब उनका आग्रह बहुत देखा तो उन्हें भी क्रान्तिकारी आंदोलन में शामिल कर लिया। अशफाकुल्ला का नाम तथा उसका चेहरा याद आते ही बहुत सी भावनायें मेरे हृदय में स्वतः उमड़ आती हैं, किसी और अवसर पर मैं इन भावनाओ के साथ न्याय कर अपने प्यारे अशफाक के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित करूँगा, यहाँ केवल ऐतिहासिक की भांति-हाँ एक सहृदय ऐतिहासिक की भांति—उसके जीवन की आलोचना करूँगा।

अशफाकुल्ला के कवित्व के कुछ नमूनेः—

अशफाकुल्ला कवितायें भी लिखा करते थे, और कविताओं में

जिसे फ़ना वह समझ रहे हैं,
बक़ा का राज़ इसी में मज़मिर।
नहीं मिटाने से मिट सकेंगे,
वो लाख हमको मिटा रहे हैं।
खामोश 'हसरत' खामोश 'हसरत',
अगर है जज़्बा वतन का दिल में।
सज़ा को पहुँचेंगे अपनी बेशक़,
जो आज हमको सता रहे हैं।

❀ ❀ ❀

बुज़दिलों ही को सदा मौत से डरते देखा,
गो कि सौ बार उन्हें रोज ही मरते देखा।
मौत से वीर को हमने नहीं डरते देखा,
तख्तए मौत पै भी खेल ही करते देखा।
मौत एक बार जब आना है तो डरना क्या है,
हम सदा खेल ही समझा किए, मरना क्या है।
वतन हमेशा शादकाम और आजाद,
हमारा क्या है, अगर हम रहे, रहे न रहे।

हम बाद को अशफाकुल्ला के विषय में यथा स्थान लिखेंगे।

"राजेन्द्र लाहिड़ी"

राजेन्द्रनाथ लाहिड़ी का जन्म १६०१ ईसवी के जून महीने में पबना जिले के भड़ंगा नामक गाँव में हुआ था। १६०६ में इनके परिवार के लोग बनारस में आये, यहीं पर उनका सारा अध्ययन हुआ। १६२१ के आन्दोलन में इन्होंने कोई भाग नहीं लिया, यह कहना ग़लत होगा कि उन्होंने १६२१ के आंदोलन में इस वास्ते भाग नहीं लिया कि असहयोग आंदोलन अहिंसात्मक था, सच्ची बात तो यह है कि उनमें कुछ राजनैतिक जाग्रति ही नहीं थी। क्रान्तिकारी आंदोलन को

यह श्रेय है कि वह ऐसे ऐसे आदमियों को राजनैतिक आंदोलन के दायरे में खींच लाया जो शायद उसके बिना किसी प्रकार के राज-नैतिक आंदोलन में आते ही नहीं। राजेन्द्र बाबू पहिले सान्याल परिवार के सम्पर्क में आये, वहीं से उनका राजनैतिक जीवन का प्रारम्भ होता है। राजेन्द्र बाबू पहले सान्याल बाबू के दल में थे, किंतु जब अनुशीलन दल हिन्दुस्तान प्रजातान्त्रिक संघ में मिल गया, उस समय राजेन्द्र बाबू बनारस के डिस्ट्रिक्ट अरगनाइजर मुकर्रर हुये, प्रांतीय कमेटी के भी वे सदस्य हुये। प्रांतीय कमेटी में राजेन्द्र बाबू के अतिरिक्त श्री विष्णुशरण जी दुब्लिस, सुरेशचन्द्र भट्टाचार्य तथा पं० रामप्रसाद बिसमिल भी थे। राजेन्द्र बाबू दक्षिणेश्वर कलकत्ता में गिरफ्तार हुए, गिरफ्तार होते समय वे एम० ए० के छात्र थे।

बनारस केन्द्र का काम

पहिले ही बतलाया जा चुका है कि बनारस केन्द्र के मुख्य कार्यकर्ताओं में श्री शचीन्द्रनाथ बक्सी थे। जिस समय दल की ओर से सामरिक कार्य शुरू हुए उस समय बनारस केन्द्र के लड़के बहुत जोर शोर से उसमें भाग लेते रहे। दल का सङ्गठन कुछ पुराना होते ही दल को रुपयों की जरूरत पड़ी, तो यह योजना सोची गई कि दल के काम के लिये डकैतियाँ डाली जायँ। योगेश बाबू के बाहर रहते ही यह योजना बन चुकी थी, किन्तु यह सोचा जाता था कि जहाँ तक हो सके गाँव में डकैतियाँ डाली जाय ताकि सरकार पर भेद न खुले, इसी के अनुसार गाँव में बहुत दिनों तक डकैतियां डाली गईं।

गाँव में डकैती

इन गांव की डकैतियों में यदि रुपये की दृष्टि से भी देखा जाय तो भी इसमें विशेष सफलता नहीं मिली, बहुत कुछ हद तक इन डकै-तियों से हमारी कर्म-शक्ति का उचित उपयोग नहीं हुआ। यह डकै-

तियां संयुक्त प्रांत के विभिन्न जिलों में डाली गईं। जिस समय काकोरी षड्यंत्र खुला, उस समय काकोरी के अतिरिक्त तीन और डकैतियां पुलिस ने चलाने की कोशिश की। इन डकैतियों का ब्यौरा यों है—

(१) विजपुरी जिला पीलीभीत

(२) सराय महेश जिला रायबरैली

(३) द्वारकापुर जिला प्रतापगढ़

(४) बमरौली जिला पीलीभीत

इनमें से रायबरैली और प्रतापगढ़ वाली डकैतियां चल नहीं सकीं।

इस आंदोलन के सिलसिले में बहुत प्रचार कार्य न हो सका किंतु फिर भी लोगों में राजनैतिक पुस्तकों का अध्ययन करने का सिलसिला खूब चलाया गया। उस जमाने में Study circles का रिवाज नहीं था, इसलिये दूसरे प्रकार से राजनैतिक शिक्षा दी जाती थी। पत्र गुप्त रूप से भेजने के लिए पोष्ट बाक्स कायम किये जाते थे, अर्थात् पत्र जिसके लिए होता था उसके नाम से होकर किसी दूसरे ऐसे लड़के के नाम से आता था, जिस पर पुलिस को शक न होता था। जहां तक होता था लोग एक दूसरे को नहीं जान पाते थे, बिना काम के कोई प्रश्न किसी से नहीं पूछ सकता था। दल के नियम बड़े कठिन थे, एक बात यह भी थी कि यदि कोई सदस्य किसी प्रकार से दल को धोखा दे, तो उसको दल से निकाल दिया जाय या उसे गोली से मार देने का भी हक था। बनारस केन्द्र का सङ्गठन सब से मजबूत था, किन्तु मजे की बात यह है कि शाहजहांपुर का केन्द्र सङ्गठन की दृष्टि से सब से कमजोर होते हुये भी वहां के तीन व्यक्तियों को फांसी हुई। पं० रामप्रसाद तथा अशफाकुल्ला का परिचय पहिले ही दे चुके हैं।

श्री रोशन सिंह

ठाकुर रोशन सिंह शाहजहांपुर जिले के नवादा नामक ग्राम के रहने वाले थे, लड़कपन से ही वे दौड़ने धूपने के काम में बहुत बढ़े हुये थे, काकोरी षड्यन्त्र में जितने व्यक्ति गिरफ्तार किये थे, उनमें

सब में बलवानों से ठाकुर रोशन सिंह थे। असहयोग आन्दोलन के आरम्भ से ही उन्होंने इसमें काम करना शुरू कर दिया, और शाहजहांपुर और बरैली जिले के गांवों में घूम घूम कर असहयोग का प्रचार करने लगे थे। इन दिनों बरैली में गोली चली, और इस सम्बन्ध में उन्हें दो वर्ष की कड़ी सजा हुई।

ठाकुर रोशन सिंह अंग्रेजी का मामूली ज्ञान रखते थे, किन्तु हिन्दी उर्दू अच्छी तरह जानते थे। ठाकुर साहब की दो बीवियाँ थीं। पुलिस का कहना था कि राजनैतिक जीवन में आने के पहिले वे एक मामूली अपराधी थे। जो कुछ भी हो जेल में बराबर फाँसी के तख्ते तक उनका आचरण एक निर्भीक शहीद की भाँति था। बाद को इन सब बातों का वर्णन होगा।

काकोरी युग के दूसरे अभिनेता

श्री शचीन्द्र नाथ सान्याल का उल्लेख पहिले ही आ चुका है। जोगेश बाबू इस षड़यन्त्र के एक प्रमुख व्यक्ति थे, वे जुलाई १९२३ से अक्टूबर १९२४ तक याने मुश्किल से पन्द्रह महीने संयुक्त प्रान्त में रह पाये। इसलिये मुख्यतः संगठन में ही काम किया। ये पहिले बंगाल में चार साल नजरबन्द थे। इनके सम्बन्ध में लोगों में बड़ी श्रद्धा थी, किन्तु ये कोई प्रकांड मेधावी intellectual नहीं हैं। इनके चरित्र की विशेषता यह थी कि यह ऐसा वातावरण उत्पन्न करने में समर्थ होते थे जिससे वे रहस्य से आवृत मालूम होते थे। श्री शचीन्द्र नाथ बखशी पहिले बनारस में फिर झाँसी और लखनऊ में काम करते थे, झाँसी में उन्होंने बहुत अच्छा काम किया। बताया जाता है कि झाँसी में उन्होंने जो संगठन किया था, उसी से वैशम्पायन, सदाशिव आदि उत्पन्न हुए। श्री विष्णुशरण जी दुबलिस ने मेरठ में अच्छा काम किया था, किन्तु इन्होंने अपने लड़कों को क्रियाशील नहीं बनाया, इसलिये मेरठ के संगठन का कोई उल्लेख षड़यन्त्र में नहीं आया। ये पहिले

मेरठ वैश्य अनाथालय में सुपरिन्टेन्डेन्ट थे, तथा कांग्रेस आन्दोलन में १६२१ में जेल जा चुके थे। श्री प्रेमकिशन खन्ना शाहजहाँपुर के रहने वाले थे, और पं० रामप्रसाद के मित्र थे, ये एक बहुत धनी परिवार के हैं। श्री सुरेश चन्द्र भट्टाचार्य ने कानपुर में कुछ ऐसे नौजवानों को एकत्र किया जो बाद को भारत-प्रसिद्ध हुए, वे नौजवान ये थे।

(१) श्री वटुकेश्वर दत्त—बाद को सर्दार भगत सिंह के साथ मशहूर हुए।

(२) श्री विजयकुमार सिंह—बाद को लाहौर षड्यन्त्र के एक नेता समझे गये।

(३) श्री राजकुमार सिंह—काकोरी षड्यन्त्र में दस साल की सजा हुई।

श्री रामदुलारे त्रिवेदी कानपुर के एक अच्छे क्रान्तिकारी कार्यकर्ता थे, असहयोग आन्दोलन में इनको ६ माह की सजा हुई थी, और जेल में अंग्रेज अध्यक्ष से गुस्ताखी करने के अपराध में ३० बेंत लगे थे, जिसको उन्होंने बड़ी बहादुरी से झेला। श्री मुकुन्दीलाल जी मैनपुरी के तपे हुए थे, मैनपुरी षड्यन्त्र वालों ने इनके साथ एक तरह से धोखा किया कि १९१९ में माफी के समय वे सब छूट गये, किन्तु शर्तनामे में मुकुन्दी जी का नाम नहीं रक्खा, वे अपनी पूरी सजा काटकर १६२३ में छूटे। छूटते ही फिर वे काम में लगे।

श्री रवीन्द्र कर

श्री रवीन्द्र मोहन कर बनारस के रहनेवाले थे उन्होंने असहयोग में भाग लिया, किन्तु जेल न गये। जब १६२४ में Revolutionary (क्रान्तिकारी) पर्चा निकला तो उसके सिलसिले में वे गिरफ्तार कर लिये गये, किन्तु जब उस परचे को बाँटने तथा चिपकाने का मुकद्दमा उन पर न चला, तो १०६ में कैद कर दिये गये। शचीन्द्र बख्सी, राजेन्द्र लाहिड़ी तथा अन्य लोगों ने उनकी जमानत के लिए बहुतेरी कोशिशें कीं, अच्छे अच्छे आदमियों को

जमानतें पेश की गईं, किन्तु जमानत मन्जूर न हुई। काकोरी षड्यन्त्र की गिरफ्तारियों के समय वे जेल में ही थे। बाद को उन्हें कलकत्ता के सुकिया स्ट्रीट बम मामले में सात साल की सजा हुई, इस सजा को काटकर छूटने के बाद उनको रोटियों के लाले पड़ गये, घर वालों ने बहिष्कार कर दिया था, कोई पास फटकने नहीं देता था। ऐसे ही उन्हें तपेदिक हो गया, हालत और भी बुरी हो गई, और वे मर गये। उनकी मृत्यु एक शहीद की मृत्यु थी, जब तक ये जीते रहे, खूब जी जान से काम करते रहे। रवीन्द्र, चन्द्रशेखर आजाद तथा कुन्दनलाल ने जिस प्रकार सत्तू खा खाकर या बिना कुछ खाये दल का काम किया है, उसका वर्णन हम अपनी 'आप बीती' में लिखेंगे, यहाँ केवल इतना ही लिखना काफी है कि उन बातों की स्मृतिमात्र से हृदय पुलिकित हो उठता है।

श्री चन्द्रशेखर आज़ाद

काकोरी षड्यंत्र में आने से पहिले चन्द्रशेखर संस्कृत पढ़ते थे, वहीं से वे असहयोग आन्दोलन में शामिल हुए; इसमें उनको १६ बेंत की सजा हुई। इनके जीवन का विस्तृत विवरण मैंने आजाद की पृथक जीवनी में लिखा है, यहाँ केवल एक बात लिखूँगा जो उस आजाद की जीवनी में छूट गयी, वह यह कि उनका आजाद नाम कैसे पड़ा।

नवम्बर का बाप दिसम्बर

असहयोग के जमाने में जो थोड़े बहुत लड़के पकड़ गये थे उनमें में एक से मैजिस्ट्रेट ने पूछा "तुम्हारा नाम ?"

उस लड़के ने कहा—नवम्बर।

फिर पूछा गया—तुम्हारे बाप का नाम ?

कहा—दिसम्बर।

आजाद को भी जब ऐसा पूछा गया तो उन्होंने अपना नाम

आजाद और बाप का नाम स्वाधीन तथा घर जेलखाना बतलाया। बस, यहीं से उनका नाम आजाद पड़ा।

आजाद काकोरी के बाद उत्तर भारत के प्रमुखतम सेनापति हुए। बाद को हमें कई बार आजाद से साबका पड़ेगा।

दामोदर सेठ, भूपेन्द्र सान्याल, रामकृष्ण खत्री आदि

श्री रामकृष्ण खत्री जो जिला बुलडाना बरार के रहने वाले हैं, काशी पढ़ने आये थे। वे उदासी साधु थे, आजाद उनको दल में ले आये। नाम गोविन्द प्रकाश था, यह भी एक प्रमुख व्यक्ति थे। श्री रामनाथ पांडेय एक छात्र थे, बनारस के लेटरबाक्स थे। प्रणवेश चटर्जी बनारस में तथा जबलपुर में रहते थे; आजाद को ये ही दल में लाये थे, किन्तु स्वयं बाद को इकबाली हो गये। श्री भूपेन्द्रनाथ सान्याल स्वानामधन्य श्रीशचीन्द्रनाथ सान्याल के छोटे भाई हैं, गिरफ्तारी के समय भी ये एक अच्छे वक्तारूप में प्रसिद्ध हो चुके थे। श्री दामोदरस्वरूप जी सेठ उस समम काशी विद्यापीठ में अध्यापक थे। उस समय ये एक दल बना रहे थे। बहुत दिनों तक यह दल अलग काम करता रहा, बड़े दल में यह देर में शामिल हो पाया। यह क्यों, इसके कारण थे जिनका इस अखिल भारतीय इतिहास में स्थान न होगा।

दल का विस्तार

यह दल कलकत्ता से लेकर लाहौर तक फैला हुआ था। जिस Revolutionary (क्रान्तिकारी) परचे का पहिले उल्लेख किया गया है वह पेशावर से लेकर रंगून तक बाँटा गया था, कोई भी ऐसा शहर उत्तर भारत में शायद ही ऐसा बचा हो जिसमें यह परचा न बँटा हो। इससे सरकार को काफी घबड़ाहट हुई थी क्योंकि वह समझ गई थी कि यह संगठन बहुत दूर तक विस्तृत हैं, किन्तु दल के लिये धन की आवश्यकता पड़ने लगी। कई बात में रुपयों की जरूरत थी, रुपये का प्रबन्ध मुश्किल हो रहा था, आपस में चन्दा किया गया, लोगों से चन्दे माँगे गये, किन्तु कहीं से काम के लायक धन न मिला।

रेल डकैती की तैयारी

पहिले गाँव में डकैतियाँ की गईं, किन्तु उनसे कुछ विशेष धन न मिला तब दूसरी योजना बनाई गई। पं० रामप्रसाद विस्मिल ने इस समय का वर्णन किया है। हम उसी को नीचे उद्धृत कर देते हैं।

पं० रामप्रसाद लिखित रेल डकैती का वर्णन

"एक दिन रेल में जारहा था। गार्ड के डिब्बे की पास की गाड़ी में बैठा था। स्टेशन मास्टर एक थैली लाया, और गार्ड के डब्बे में डाल गया। कुछ खट पट की आवाज हुई। मैंने उतर कर देखा कि एक लोहे का संदूक रखा है, विचार किया कि इसी में थैली डाली होगी। अगले स्टेशन में उस थैली में डालते भी देखा। अनुमान किया कि लोहे का सन्दूक गार्ड के डब्बे में जंजीर से बंधा रहता होगा; ताला पड़ा रहता होगा, आवश्यकता होने पर ताला खोल कर उतार लेते होंगे। इसके थोड़े दिनों बाद लखनऊ स्टेशन पर जाने का अवसर प्राप्त हुआ। देखा एक गाड़ी में से कुली लोहे के आमदनी डालने वाले संदूक उतार रहे हैं। निरीक्षण करने से मालूम हुआ कि उनमें जंजीर ताला कुछ नहीं पड़ता, यों ही रखे जाते हैं। उसी समय निश्चय किया कि इसी पर हाथ मारूँगा।"

रेलवे डकैती

"उसी समय से धुन सवार हुई। तुरन्त स्थान पर जा टाइम टेबुल देख कर अनुमान किया कि सहारनपुर से गाड़ी चलती है, लखनऊ तक अवश्य दस हजार रुपये रोज की आमदनी आती होगी। सब बातें ठीक करके कार्य-कर्ताओं का संग्रह किया, दस नवयुवकों को लेकर विचार किया कि किसी छोटे स्टेशन पर जब गाड़ी खड़ी हो, स्टेशन के तार घर पर अधिकार कर लें, और गाड़ी का भी संदूक उतार कर तोड़ डालें, जो कुछ मिले उसे ले कर चल दें। परन्तु इस कार्य में मनुष्यों की अधिक संख्या की आवश्यकता थी, इस कारण यही निश्चय

हुआ कि गाड़ी की जञ्जीर खींच कर चलती गाड़ी को खड़ा कर के तब लूटा जावे।। सम्भव है कि तीसरे दर्जे की जञ्जीर खींचने से गाड़ी न खड़ी हो, क्योंकि तीसरे दर्जे में बहुधा प्रबन्ध ठीक नहीं रहता है। इस कारण दूसरे दर्जे की जञ्जीर खींचने का प्रबन्ध किया सब लोग उसी ट्रेन से सवार थे। गाड़ी खड़ी होने पर सब उतर कर गार्ड के डब्बे के पास पहुँच गये। लोहे की संदूक उतार कर छेनियों से काटना चाहा। छेनियों ने काम न दिया, तब कुल्हाड़ा चला।"

"मुसाफिरों से कह दिया कि सब गाड़ी में चढ़ जावो। गाड़ी का गार्ड गाड़ी में चढ़ना चाहता था, पर उसे जमीन पर लेट जाने को आज्ञा दी ताकि बिना गार्ड के गाड़ी न जा सके। दो आदमियों को नियुक्त किया कि वे लाइन की पगडन्डी को छोड़ कर पास में खड़े हो कर गाड़ी से हटे हुये गोली चलाते रहें। एक सज्जन गार्ड के डब्बे से उतरे। उनके पास भी माउजर पिस्तौल थी। विचारा कि ऐसा शुभ अवसर जाने कब हाथ आवे माउजर पिस्तौल काहे को चलाने को मिलेगा? उमंग जो आई, सीधा करके दागने लगे। मैंने जो देखा तो डांटा क्योंकि गोली चलाने की उनकी ड्यूटी (काम) ही न थी। फिर यदि कोई रेलवे मुसाफिर कौतूहल वश बाहर को निकले तो उसके गोली जरूर लग जाये, हुआ भी ऐसा ही, एक व्यक्ति रेल से उतर कर अपनी स्त्री के पास जा रहा था। मेरा विचार है कि इन्हीं महाशय की गोली उसके लग गई क्योंकि जिस समय संदूक नीचे डालकर गार्ड के डब्बे से उतरे थे केवल दो तीन फायर हुये थे। रेल के मुसाफिर ट्रेन में चढ़ चुके थे, अनुमान होता है उसी समय स्त्री ने कोलाहल किया होगा, और उसका पति उसके पास जा रहा था जो उक्त महाशय की उमंग का शिकार हो गया। मैंने यथाशक्ति पूर्ण प्रबन्ध किया था कि जब तक कोई बन्दूक लेकर सामना न करने आये या मुकाबिले में गोली न चले तब तक किसी आदमी पर फायर न होने पावे। मैं नर-हत्या कराके डकैती का

भीषण रूप देना नहीं चाहता था। फिर भी मेरा कहा न मान कर अपना काम छोड़ गोली चला देने का यह परिणाम हुआ। गोली चलाने की जिनको मैंने ड्यूटी दी थी वे बड़े दक्ष और अनुभवी मनुष्य थे, उनसे भूल होना असम्भव था। उन लोगों को मैंने देखा कि वे अपने स्थान से पाँच मिनट बाद पाँच फायर करते थे। यह मेरा आदेश था।"

"सन्दूक तोड़ तीन गठरियों में थैलियाँ बाँधी, सबसे कई बार कहा देख लो कोई सामान रह तो नहीं गया? इस पर भी वही महाशय चद्दर डाल आये। रास्ते में थैलियों से रुपया निकाल कर गठरी बाँधी, और उसी समय लखनऊ शहर में जा पहुँचे। किसी ने पूछा भी नहीं, कौन हो, कहाँ से आये हो? इस प्रकार दस आदमियों ने एक गाड़ी रोक कर लूट लिया। उस गाड़ी में १४ मनुष्य ऐसे थे, जिनके पास बन्दूक या रायफलें थीं। दो अंग्रेजी सशस्त्र फौजी जवान भी थे, पर सब शांत रहे। ड्राइवर महाशय तथा एक इंजीनियर महाशय—दोनों का बुरा हाल था। वे दो दोनों अंग्रेज थे, ड्राइवर महाशय इंजन में लेट रहे, इंजीनियर महाशय पाखाने में जा छिपे। हमने कह दिया था कि मुसाफिरों से न बोलेंगे, सरकार का माल लूटेंगे। इस कारण से मुसाफिर भी शान्ति पूर्वक बैठे रहे। समझे तीस चालीस आदमियों ने गाड़ी को चारों ओर से घेर लिया है। केवल दस युवकों ने इतना बड़ा आतङ्क फैला दिया। साधारणतया इस बात पर बहुत से मनुष्य विश्वास करने में भी संकोच करेंगे कि दस नवयुवकों ने गाड़ी खड़ी करके लूट ली। जो भी हो बात वास्तव में यही थी। इन दस कार्य-कर्त्ताओं में अधिकतर तो ऐसे थे जो आयु में सिर्फ लगभग बाईस वर्ष के होंगे, और जो शरीर से बहुत बड़े पुष्ट भी न थे। इस सफलता को देखकर मेरा साहस बहुत बढ़ गया। मेरा जो विचार था वह अक्षरशः सत्य सिद्ध हुआ। पुलिस वालों की वीरता का मुझे अन्दाजा था। इस घटना से भविष्य के कार्य की बहुत बड़ी आशा बँध गई। नवयुवकों

का भी उत्साह बढ़ गया। जितना कर्जा था निपटा दिया। अस्त्रों को खरीदने के लिए लगभग एक हजार रुपये भेज दिये गये। प्रत्येक केन्द्र के कार्यकर्त्ताओं को यथा स्थान भेजकर दूसरे प्रान्तों में भी कार्य-विस्तार करने का निर्णय करके कुछ प्रबन्ध कर दिया। एक युवक दल ने बम बनाने का प्रबन्ध किया, मुझसे भी सहायता चाही। मैंने आर्थिक सहायता देकर अपना एक सदस्य भेजने का वचन दिया।"

इस डकैती का मन्मथनाथ गुप्त ने "क्रान्ति युग के संस्मरण" में भी वर्णन किया है, हम नीचे उसे उद्धृत करते हैं। यह घटना सनसनी खेज होने के कारण तथा काकोरी षड्यन्त्र एक ऐतिहासिक षड्यंत्र हो जाने के कारण हम इसको विस्तार से दे रहे हैं।

"क्रान्ति-युग के संस्मरण" में डकैत का वर्णन

काकोरी की घटना

"काकोरी लखनऊ के जिले में छोटा सा गाँव है। इसको कोई विशेष महत्व न प्राप्त था, न है। किन्तु जिस समय से काकोरी में क्रान्तिकारियों ने ८ डाउन गाड़ी खड़ी करके रेल के थैलों को लूट लिया, तब से यह शब्द समाचारपत्रों में बार बार आता है।"

"किसी कारण वश—शायद इस कारण से कि किसी जहाज़ पर गुप्त रूप से बड़े परिणाम में कुछ अस्त्र-शस्त्र आये हुये थे, उन को ख़रीदने के लिए कई हजार रुपयों की आवश्यकता थी, लोगों ने अपने घरों से जहाँ तक बन पड़ा, चोरियाँ आदि की; तथा चन्दा भी किया गया, किंतु खर्च पूरा नहीं पड़ा। तब सोचा गया किसी भी प्रकार धन प्राप्त किया जाय। इसी के अनुसार योजनायें बनने लगी। पहिले तो यह निश्चित किया गया कि किसी गाँव में मामूली डाकुओं की तरह डाका डाला जाय। शायद एक डकैती डाली गई, किन्तु उससे कुछ धन नहीं मिला। तब लाचार होकर पं० रामप्रसाद जी ने यह निश्चित

किया कि रेल के थैले लूट लिये जाँय। हमें खूब याद है श्री अशफाकुल्ला खाँ उसके विरुद्ध थे। क्योंकि वे समझते थे कि ऐसा करना सरकार को चुनौती देना होगा. तथा यह बात स्पष्ट प्रकट हो जायगी कि इस प्रान्त में क्रांतिकारी आंदोलन केवल जबानी जमा खर्च तक ही सीमित नहीं है, प्रत्युत वह सक्रिय रूप से सरकार की जड़ खोदने में लगा हुआ है। कुछ लोगों को तो यह कार्य इसीलिये पसंद आया कि यह सरकार को चुनौती है, जिनमें से मैं भी एक था। अंत में उग्र मतवाले लोगों ही सम्मति मानी गई और यह निश्चय किया गया कि रेल के थैले लूट लिए जाँय।"

"पहिले यह निश्चित नहीं हो रहा था कि इस योजना को किस प्रकार कार्य रूप में परिणत किया जाय। एक योजना यह भी थी, और बहुत अंश तक हम उसे काय रूप में परिणत करने के लिए प्रस्तुत भी हो गये थे कि गाड़ी जब किसी स्टेशन पर खड़ी हो जाय तो उससे रेल के थैले लूट लिए जाँय। परन्तु बाद को विचार करने पर यह योजना कुछ बुद्धिमानी की नहीं जँची। अतः उसका विचार त्याग दिया गया, और यह निश्चित किया कि चलती हुई गाड़ी की जंजीर खींच कर रोक लिया जाय, और फिर रेल के थैले लूट लिये जाँय। इस योजना के अनुसार अंत तक कार्य हुआ।"

"इस काम में दस व्यक्ति सम्मिलित किये गये। जिसमें श्री राजेन्द्र नाथ लाहिड़ी, श्री रामप्रसाद बिस्मिल तथा श्री अशफाकुल्ला फाँसी पा गये। एक साधारण मृत्यु से मारे गये। एक बनवारी लाल मुखबिर हो गया। शचीन्द्रनाथ बख्शी, मुकुन्दीलाल तथा मैं इस सिलसिले में सजा भुगतने के बाद अब बाहर मौजूद हूँ। चन्द्रशेखर आजाद छः वर्ष बाद गोली से सामने लड़कर मारे गये। इनमें से एक ने सब प्रकार की राजनीति छोड़ दी, और सुनते हैं कि अब देश की जड़ खोदने में अपना समस्त जीवन बिता रहे हैं।"

"हम लोग ९ तारीख को संध्या समय शाहजहाँपुर से हथियार,

छेनी, घन, हथौड़े आदि से लैस होकर गाड़ी पर सवार हो गये। इस गाड़ी में रेल के खजाने के अतिरिक्त कोई और खजाना भी जा रहा था, जिसके साथ बन्दूकों का पहरा था। इसके अतिरिक्त ग ाड़ी में कई बंदूकें और थीं। कुछ पलटनियाँ गोरे भी हथियार सहित मौजूद थे। जिसमें से शायद एक मेजर के ओहदे का भी सेकण्ड क्लास में था। हमारे स्काउट ने जब यह खबर दी तब हम असमंजस में पड़ गये, श्री अशफाकुल्ला ने शायद फिर से अपना निषेध लोगों के मस्तिष्क में प्रबृष्ट कराने की चेष्टा की, किन्तु हम लोग तो तुल चुके थे। हम इतने अग्रसर हो चुके थे कि हमारा लौटना कठिन था, और हम लौटना चाहते भी नहीं थे। यह एकमहत्वपूर्ण बात थी कि यों तो अशफाक मना कर रहा था, किन्तु जब उसने देखा कि उसकी एक न चली और ये लोग इस काम को करने पर ही तुले हैं तो उसने कमर कस ली। उसकी सुन्दर बड़ी-बड़ी आँखें तेज से दीप्तिमान हो उठीं, और वह अपना पार्ट अदा करने के लिए अत्यन्त साहस तथा हर्षपूर्वक प्रस्तुत हो गया। उसका निषेध किसी डर या भय से प्रेरित न था, प्रत्युत वह बुद्धिमत्ता की आवाज थी। बाद के इतिहास ने सिद्ध कर दिया है कि अशफाक सही था, और हम गलती पर थे। यह बात तो निश्चित है कि यदि हम इस कार्य को न करते तो इतनी जल्दी हमारे दल के पाँव न उखड़ जाते।

'अस्तु हममें से तीन व्यक्ति सेकण्ड क्लास के कमरे में सवार हुए। सर्व श्री अशफाकुल्ला, राजेन्द्र लाहिड़ी तथा शचीन्द्रबख्शी इस काम के लिए चुने गये। इस टुकड़ी का नेतृत्व अशफाक कर रहे थे। शेष ४ व्यक्ति तीसरे दर्जे के कमरे में सवार थे। पं० रामप्रसाद इस सारे कार्य का नेतृत्व कर रहे थे, जैसा कि वे हमेशा ऐसे अवसरों पर किया करते थे। हम लोगों के साथ चार नये मौजर पिस्टल थे। इसके अतिरिक्त अन्य कई छोटे मोटे हथियार भी थे। मोजेर पिस्टलों के साथ

पचास पचास से अधिक कारतूस थे। इससे स्पष्ट है कि हम लोग पूरी लड़ाई की आशा तथा तैयारी करके गये थे।"

"जब गाड़ी हमें लेकर चली तब एक निर्दिष्ट स्थान पर आकर सेकण्ड क्लास के कमरे वालों ने खतरे की जंजीर बड़े जोर से खींच दी। जंजीर खींचना था कि गाड़ी खड़ी हो गई, और मुसाफिर लोग जँगले से मुँह निकाल निकाल कर बाहर झांकने लगे कि क्या मामला है। गार्ड भी उतर कर उस कमरे की ओर जाने लगा जिस कमरे से जंजीर खींची गई थी; उस समय दिन की रोशनी कुछ कुछ बाकी थी। गाड़ी खड़ी होते ही हम लोग अपने अपने कमरों से उतर पड़े, और कुछ क्षण में ही कार्य प्रारम्भ कर दिया गया। गार्ड साहब को पिस्तौल दिखाकर जमीन पर लेटने के लिए आज्ञा दी गई, वे औंधे मुँह जमीन पर लेट गये। और सब ने अपने अपने हथियार निकाल कर लिए। चार मनुष्य, दो गाड़ी के एक ओर और दो दूसरी ओर पहरे पर खड़े कर दिये गये। इनके पास मोजेर पिस्टलें थीं, जिसकी मार १००० गज तक होती है, और जिसमें दस गोलियाँ एक साथ भरी जाती हैं। शेष व्यक्ति रेल के थैले वाले डिब्बे में घुस गये, और धक्का देकर उस खजाने की संदूक को डब्बे से नीचे गिरा दिया। इसके बाद समस्या यह उपस्थित हुई कि संदूक खोली कैसे जाय। यदि गार्ड या किसी अन्य के पास चाभी होती तो वह मिल जाती और खोलने की समस्या बहुत शीघ्र हल हो जाती। किन्तु गाड़ी में किसी के पास चाभी नहीं रहती। ढङ्ग यह है कि प्रत्येक स्टेशन पर जब गाड़ी रुकती है तो स्टेशन मास्टर अपना थैला लाकर उस संदूक में डाल जाता है। यदि कोई उसमें थैला डालना चाहे तो डाल सकता है किन्तु कोई उसमें से कुछ निकाल नहीं सकता। उसकी बनावट ही ऐसी होती है।"

लोगों ने घन अधिक निकालकर उस सन्दूक को तोड़ना प्रारम्भ किया। सन्दूक में कुछ थोड़ा बहुत सुराख तो गया, किन्तु, मामला कुछ अधिक बनता हुआ नहीं दिखाई पड़ा। अशफाक

पहरा देने वाले चार व्यक्तियों में से एक था, और जब उसने यह दशा देखी तब मौजेर पिस्तौल मेरे हाथ में देदी, और घन पर जुट गया। हम लोगों में वह सब से बलिष्ठ था, इसलिये थोड़ी ही देर में सुराख बड़ा होगया, और थैले निकालकर चादर में बांध लिए गये। इसी समय लखनऊ की ओर से कोई मेल या एक्सप्रेस आ रहा था। वह गाड़ी बड़ी जोर से गरजती हुई चली आ रही थी। हमारे दिल धड़क रहे थे, हम सोचते थे कि कहीं यह गाड़ी खड़ी हो गई, और इसमें कुछ लोग हथियार बन्द निकल आये तो हममें से दो चार अवश्य ढेर हो जाँयगे। खैर, गाड़ी किसी तरह निकल गई। जब गाड़ी हमारे निकट से जारही थी तो हम लोगों ने बन्दूकें ज़रा छिपाली, और जब गाड़ी चली गई तो हम लोगों ने फिर अपना कार्य प्रारंभ कर दिया। हम लोगों ने बहुत शीघ्र शायद १० मिनट से भी कम समय में, यह सब काम समाप्त कर दिये, और थैलों को लेकर झाड़ियों की ओर चल दिये।"

"पाठकों को यह उत्सुकता होगी कि हमारी गाड़ी में जो गोरे और हिन्दुस्तानी थे वे उस समय क्या कर रहे थे जब हम डराने के लिये गाड़ी के दोनों ओर दनादन गोलियाँ छोड़ते जाते थे। यह तो स्पष्ट ही है कि उन लोगों ने हथियार का प्रयोग नहीं किया। किन्तु बाद में हमें विश्वस्त सूत्र से पता लगा कि हथियार बन्द हिन्दुस्तानी जहाँ के तहाँ बैठे रहे, किन्तु गोरों ने, जिसमें कि एक मेजर साहब भी थे अपने कमरे का लकड़ी-वाला जंगला उठा दिया, और कमरे को तब तक खोलने से इन्कार किया जब तक कि गाड़ी लखनऊ स्टेशन नहीं पहुँची।"

"हम लोग मुसाफिरों को बराबर दहाड़ दहाड़ कर चेतावनी दे रहे थे कि यदि वे उतरे तो उनके लिए खतरे की बात है। इसके अतिरिक्त गोलियाँ कुछ हिसाब से बराबर रेल के दोनों ओर उसकी समानान्तार रेखा में चलाई जा रही रही थी। इसपर भी एक आदमी उतरा और वह मारा गया। हमें अन्त तक यह ज्ञात नहीं हुआ कि इस सिलसिले में कोई मरा भी है। दूसरे दिन जब हमने अंग्रेजी आइ०

डी० टी० देखा तो उसमें पाया कि न मालूम कितने अंग्रेज और हिन्दुस्तानी मारे गए। बाद में पता लगाने पर ज्ञात हुआ कि केवल एक मुसाफिर मरा था।"

"हम लोग थैले लेकर लखनऊ की चौमर की ओर रवाना हुये। रास्ते में हम लोगों ने थैलों को खोलकर नोट तथा रुपयों को निकाल लिये, और चमड़ों के थैलों को स्थान स्थान पर बरसाती पानी में डाल दिया। उसके बाद हम लोग बड़ी हुशियारी से दाखिल हुये। और जहाँ जिसका स्थान था वहाँ अपने अपने स्थान पर दूसरे या तीसरे दिन चले गये।"

संक्षेप मे यही काकोरी की घटना है।

काकोरी की गिरफ़्तारी

पहिले ही लिखा जा चुका है कि इस काम में दस आदमी शामिल थे उन दस आदमियों के नाम यह हैं।

(१) पं० रामप्रसाद बिस्मिल।

(२) राजेन्द्र नाथ लाहिड़ी।

(३) अशफ़ाकुल्ला खाँ।

(४) शचीन्द्रनाथ बख्शी।

(५) मुकुन्दीलाल।

(६ चन्द्रशेखर आजाद।

(७) बनवारीलाल (इग़वाली गवाह) यह रायबरेली जिले के हैं।

(८) मुरारी शर्मा (ये काकोरी केस में पकड़े नहीं गये थे, किन्तु बाद को साधारण मृत्यु से मर गये)।

९ मैं

(१०) एक अन्य व्यक्ति, यह जर्मनी इङ्गलैंड वगैरह क्रान्तिकारी कामों के सिलसिले में गया था। किन्तु बाद को लोग इन पर शक करने लगे, अब भी इन पर लोगों को शक है।

यद्यपि यही दस आदमी इस ट्रेन-डकैती में थे किन्तु जब गिरफ्तारियाँ हुईं तो ४० से भी अधिक व्यक्ति गिरफ्तार हुये।

जिन व्यक्तियों के नाम पहिले आ चुके हैं उनके अतिरिक्त श्री गोविन्द चरणकार भी गिरफ्तार हुये। यह एक पुराने क्रान्तिकारी थे, और पवना गोलीकांड में लड़ाई के जमाने में ७ साल की सजा हुई थी। इसी सिलसिले में अंडमन हो आये। इसके बाद वे बङ्गाल में रहे फिर संयुक्त प्रान्त में आए। यह बेचारे इस प्रांत में कुछ कर भी नहीं पाये थे कि २६ सितम्बर को गिरफ्तार कर लिए गये।

जिस समय २६ सितम्बर को गिरफ्तारियां हुईं थीं उस समय कई ऐसे आदमी पकड़े गए थे जिनका कोई खास सम्बन्ध इस आन्दोलन से नहीं था। वे धीरे-धीरे छोड़ दिये गये।

सरकारी गवाह

शाहजहाँपूर के बनारसी लाल, इन्दुभूषण मित्र गिरफ्तार होते ही मुखबिर हो गये। चूँकि काकोरी की बारदात लखनऊ जिले में हुई थी इसलिए मुकदमा लखनऊ में ही हुआ। बनवारी लाल इकवाली गवाह हो गये कानपूर के गोपी मोहन सरकारी गवाह हो गये। इस प्रकार से पुलिस को करीब करीब सब प्रमुख बातों का पता लग गया केवल बनारस का कोई मुखबिर न मिला इससे बनारस की सब बातें न खुल पाईं।

छोड़े जाने के बाद २४ अभियुक्त बचे। जिसमें अशफाकुल्ला, शचीन्द्र बख्शी, तथा श्री चन्द्रशेखर आजाद गिरफ्तार न किये जा सके, दामोदर स्वरूप सेठ जी भी भयङ्कर बीमारी के कारण छोड़ गए। मथुरा और आगरा के श्री शिवचरण लाल पर से मुकदमा अज्ञात कारणों से उठा लिया गया, उरई तथा कानपूर के वीरभद्र तिवारी भी इसी प्रकार अज्ञात कारणों से छोड़ दिये गये। दफा १२१ (सम्राट के विरुद्ध युद्ध घोषणा) १२० (अराजनैतिक साजिश) ३९६ (कत्ल-डकैती) ३०२ (कत्ल) इन सब दफाओं के अनुसार मुकदमा दायर

किया गया। सरकार की ओर से पं० जगतनारायण इस मुकदमे की पैरवी कर रहे थे, उनको रोज ५००) मिलते थे। अभियुक्तों की ओर से इस समय के प्रान्त के प्रधान मन्त्री पं० गोविन्द वल्लभपन्त बहादुर जी, चन्द्रभान गुप्त, आदि कई विख्यात वकील थे।

दस लाख खर्च

सरकार ने इस मुकदमे में दस लाख रुपयों से अधिक खर्च किया। बाद को दो फरार अर्थात् श्री अशफाकुल्ला और बख्शी गिरफ्तार हुए किन्तु उनका मुकदमा अलग चलाया गया।

सजाएँ

१८ महीना मुकदमा चलने के बाद पं० रामप्रसाद बिस्मिल, राजेन्द्र लाहिड़ी, और रोशनसिंह को फाँसी की सजा हुई। श्री शचीन्द्रनाथ सन्याल को कालेपानी की सजा हुई। मुझे १४ साल की सजा हुई। योगेशचन्द्र चटर्जी, मुकुन्दी लाल जी, गोविन्द चरण काक, राजकुमार सिंह, रामकृष्ण खत्री को दस-दस साल की हुई, विष्णुशरण दुब्लिस और सुरेशचन्द्र भट्टाचार्य को सात सात साल की सजा हुई। भूपेन्द्रनाथ सान्याल, रामदुलारे त्रिवेदी और प्रेमकृष्ण खन्ना को पाँच पाँच साल की सजा हुई। इस के अतिरिक्त प्रणवेश चटर्जी को चार साल की सजा हुई। यद्यपि बनवारी लाल इकबाली गवाह बन गये थे फिर भी उनको पाँच साल की सजा हुई। इसके अतिरिक्त जो Supplimentary मुकदमा चला उसमें अशफाकुल्ला को फाँसी हुई। बाद को सरकार ने कुछ व्यक्तियों के खिलाफ अपील की कि उनकी सजा बढ़ाई जाय। इन छः में से पाँच की सजा बढ़ा दी गई याने योगेशचन्द्र चटर्जी, गोविन्दचरण कार्क, मुकुन्दीलाल, सुरेश चन्द्र भट्टाचार्य, विष्णु शरण दुब्लिश की सजा बढ़ा दी गई, जिनकी सजा दस साल की थी उनकी सजा कालेपानी की कर दी गई और जिनकी सात की थी उनको दस कर दी गई। मेरी सजा जज ने यह कह कर नहीं बढ़ाई कि मेरी उम्र बहुत कम है।

फाँसी के तख्ते पर

जनता की ओर से फाँसी को रद्द करने के लिये एक बहुत विराट आन्दोलन खड़ा कर दिया गया। केन्द्रीय एसेम्बली के मेम्बरों ने एक दरखास्त पर दस्तखत करके बड़े लाट साहब के सामने पेश किया। दो दफे फाँसी की तारीख टलवाई इससे लोगों ने समझा कि शायद अंत तक इन लोगों को फाँसियाँ नहीं हों। ब्रिटिश साम्राज्यवाद जो कि इन लोगों के खून का भूखा था वह भला कैसे अपनी प्यास को बिना बुझाए रह सकता था। फाँसियाँ होकर ही रहीं।

राजेन्द्र लाहिड़ी को फाँसी

काकोरी के शहीदों में राजेन्द्रनाथ लाहिड़ी को सब से पहले फाँसी हुई याने औरों के दो दिन पहिले ही १७ दिसम्बर १९२७ को गोंडा जेल में देदी गई। १४ दिसम्बर को उन्होंने एक पत्र लिखा था वह पत्र इस प्रकार था।

"कल मैंने सुना कि प्रीवी कौंसिल ने मेरी अपील अस्वीकार कर दी। आप लोगों ने हम लोगों की प्राण-रक्षा के लिये बहुत कुछ किया, कुछ उठा न रखा, किन्तु मालूम होता है कि देश की बलि-वेदी को हमारे रक्त की आवश्यकता है। मृत्यु क्या है? जीवन की दूसरी दिशा के अतिरिक्त और कुछ नहीं! इसलिये मनुष्य मृत्यु से दुःख और भय क्यों माने? वह तो नितान्त स्वाभाविक अवस्था है, उतनी ही स्वाभाविक जितनी प्रातःकालीन सूर्य का उदय होना। यदि यह सच है कि इतिहास पल्टा खाया करता है तो मैं समझता हूँ कि हमारी मृत्यु व्यर्थ न जायगी। सब को मेरा नमस्कार,—अंतिम् नमस्कार!

आपका—राजेन्द्र

पं० रामप्रसाद को फाँसी

पं० रामप्रसाद को गोरखपुर जेल में १९ दिसम्बर को फाँसी हुई। फाँसी के पहिले वाली शाम को (१८ दिसम्बर) जब उन्हें दूध पीने के

लिये दिया गया तो उन्होंने यह कह कर इनकार कर दिया कि अब तो माता का दूध पीऊंगा। प्रातःकाल नित्य कर्म, संध्यावन्दन आदि से निवृत हो माता को एक पत्र लिखा जिसमें देश वासियों के नाम सन्देश भेजा और फिर फाँसी की प्रतीक्षा में बैठ गये। जब फाँसी के तख्ते पर ले जानेवाले आये तो 'बन्दे मातरम्' और 'भारतमाता की जय' कहते हुये तुरंत उठ कर चल दिये। चलते समय उन्होंने यह कहा:—

मालिक तेरी रज़ा रहे और तू ही तू रहे,
बाकी न मैं रहूँ न मेरी आरज़ू रहे।

जब तक कि तन में जान रगों में लहू रहे,
तेरा ही जिक्र या, तेरी ही जुस्त जू रहे॥

फाँसी के दरवाजे पर पहुँच कर उन्होंने कहा—"I wish the downfall of British Fmpire (मैं ब्रिटिश साम्राज्य का विनाश चाहता हूँ) इसके बाद तख्ते पर खड़े होकर प्रार्थना के बाद विश्वानि देव सवितुर्दुरितानि·····आदि मन्त्र का जाप करते हुए गोरखपुर के जेल में वे फन्दे में झूल गये।

फाँसी के वक्त जेल के चारों ओर बहुत कड़ा पहरा था। गोरखपुर की जनता ने उनके शव को लेकर आदर के साथ शहर में घुमाया। बाजार में अर्थी पर इत्र तथा फूल बरसाये गये, और पैसे लुटाये गये। बड़ी धूमधाम से उनकी अन्त्येष्ठि क्रिया की गई।

फाँसी के कुछ दिन पहले उन्होंने अपने एक मित्र के पास एक पत्र भेजा था। उसमें उन्होंने लिखा था:—

"१६ तारीख को जो कुछ होने वाला है उसके लिये मैं अच्छी तरह तैयार हूँ। यह है ही क्या? केवल शरीर का बदलना मात्र है। मुझे विश्वास है कि मेरी आत्मा मातृ-भूमि तथा उसकी दीन सन्तति के लिये नये उत्साह और ओज के साथ काम करने के लिये शीघ्र ही फिर लौट आयेगी।

यदि देश हित मरना पड़े मुझको सहस्त्रों बार भी,
तो भी न मैं इस कष्ट को निज ध्यान में लाऊँ कभी।
हे ईश, भारतवर्ष में शत बार मेरा जन्म हो,
कारण सदा ही मृत्यु का देशीय कारक कर्म हो॥
मरते 'बिस्मिल' रोशन लहरी अशफाक अत्याचार से,
होंगे पैदा सैकड़ों उनके रुधिर की धार से—
उनके प्रबल उद्योग से उद्धार होगा देश का,
तब नाश होगा सर्वथा दुःख शोक के लवलेश का॥

"सबसे मेरा नमस्ते कहिये।"

नीचे लिखी हुई कविता पं० जी ने जेल ही में बनाई थी, और सैयद ऐनुद्दीन की अनुमति लेकर लखनऊ के 'अवध' अखबार में छपाई थी। इस कविता में भी एक शहीद हृदय का पता लगता है। इसलिये उसे हम यहां उद्धृत करते हैं:—

मिट गया जब मिटने वाला फिर सलाम आया तो क्या ?
दिल की बरबादी के बाद उनका पयाम आया तो क्या ?
काश अपनी जिन्दगी में हम ये मञ्जर देखते,
यूँ सरे तुरबत कोई महशर ख़राम आया तो क्या ?
मिट गईं जुमला उमींदें जाता रहा सारा ख्याल,
उस घड़ी फिर नामवर लेकर पयाम आया तो क्या ?
ऐ दिले नाकाम मिट जा अब तो कूचे यार में,
फिर मेरी नाकामियों के बाद काम आया तो क्या ?
आखिरी शब दीद के काबिल थी 'बिस्मिल' की तड़प।
सुबह दमगर कोई बालाए बाम आया तो क्या ?

अशफाकुल्ला को फाँसी

अशफाकुल्ला को फैजाबाद जेल में १६ दिसम्बर को फांसी हुई। वे बहुत खुशी के साथ, कुरान-शरीफ़ का बस्ता कंधे से टांगे हाजियों की भांति 'लबेक' कहते और कलमा पढ़ते, फांसी के तख्ते

के पास गये। तख्ते को उन्होंने बोसा (चुम्बन) दिया और उपस्थित जनता से कहा—"मेरे हाथ इन्सानी खून से कभी नहीं रंगे, मेरे ऊपर जो इल्जाम लगाया गया, वह गलत है, खुदा के यहां मेरा इन्साफ होगा।" इसके बाद उनके गले में फंदा पड़ा और खुदा का नाम लेते हुए वे इस दुनिया से कूच कर गये। उनके रिश्तेदार उनकी लाश शाहजहाँपुर ले जाना चाहते थे। इसके लिए उन्होंने अधिकारियों से बहुत आरजू मिन्नत की, तब कहीं इजाजत मिली। शाहजहाँपुर ले जाते समय जब इनकी लाश लखनऊ स्टेशन पर उतारी गई तब कुछ लोगों को देखने का मौका मिला। चेहरे पर १० घंटे के बाद भी बड़ी शान्ति और मधुरता थी। बस, केवल आँखों के नीचे कुछ पीलापन था। बाकी चेहरा तो ऐसा सजीव था कि मालूम होता था कि अभी अभी नींद आई है। यह नींद अनन्त थी। उन्होंने मरने के पहले ये शेर बनाये थे:—

तंग आकर हम भी उनके जुल्म के बेदाद से।
चल दिये सूये अदम जिन्दाने फैजाबाद से॥

रोशनसिंह को फांसी

इन्हें फाँसी होने का अन्देशा किसी को न था, इसलिये जब जज ने इन्हें फाँसी की सजा दी तो इनका हिचकिचाना स्वाभाविक ही होता, परन्तु फांसी की सजा सुन कर भी उन्होंने जिस धैर्य्य, साहस और शौर्य का प्रदर्शन किया, उसे देखकर सभी दङ्ग रह गये। फांसी के लगभग छ: दिन पहले १३ दि० को उन्होंने अपने एक मित्र के नाम यह पत्र लिखा था:—

"इस सप्ताह के भीतर ही फांसी होगी। ईश्वर से प्रार्थना है कि वह आप को मोहब्बत का बदला दे। आप मेरे लिए हरगिज रञ्ज न करें। मेरी मौत खुशी का बाइस होगी। दुनिया में पैदा होकर मरना जरूर है। दुनिया में बदफेल करके मनुष्य अपने को बदनाम न करे

और मरते वक्त ईश्वर की याद रहे—यही दो बातें होनी चाहिये। और ईश्वर की कृपा से मेरे साथ ये दोनों बातें हैं। इसलिए मेरी मौत किसी प्रकार अफसोस के लायक नहीं है। दो साल से मैं बाल-बच्चों से अलग हूँ। इस बीच ईश्वर भजन का खूब मौका मिला। इससे मेरा मोह छूट गया; और कोई वासना बाकी न रही। मेरा पूरा विश्वास है कि दुनिया की कष्ट भरी यात्रा समाप्त करके मै अब आराम की जिंदगी के लिए जा रहा हूँ। हमारे शास्त्रों में लिखा है कि जो आदमी धर्म-युद्ध में प्राण देता है उसकी वही गति होती है जो जङ्गल में रह कर तपस्या करने वालों की।

जिन्दगी जिन्दा दिली को जान ऐ रोशन,
वरना कितने मरे और पैदा होते जाते हैं।

आखिरी नमस्ते। आपका—"रोशन"

फाँसी के दिन श्री रोशनसिंह पहिले ही से तैयार बैठे थे। ज्योंही इलाहाबाद डिस्ट्रिक्ट जेल के जेलर का बुलावा आया, आप गीता हाथ में लिए मुसकराते हुए चल पड़े। फाँसी पर चढ़ते ही उन्होंने वन्देमातरम् का नाद किया और 'ओ३म्' का स्मरण करते हुए लटक गये। जेल के बाहर उनका शव लेने के लिए आदमियों की बहुत बड़ा भीड़ एकत्र थी। दाह-संस्कार करने के लिए भीड़ के लोगों ने श्री रोशनसिंह का शव ले लिया। वे जूलूस के साथ उस शव को ले जाना चाहते थे किन्तु अधिकारियों ने जुलूस की इजाजत नहीं दी। निराश हो लाश वैसे ही ले जाई गई और आर्यसमाजी विधि से श्मशान भूमि में उसका दाह संस्कार हुआ।

यहाँ पर हम एक बात की ओर पाठक की दृष्टि आकर्षित कर आगे बढ़ जाना चाहते थे, कि ये शहीद बड़े धार्मिक थे, इसमें से हरेक के पत्र से धार्मिक भाव टपकते हैं।

काकोरी के समसामयिक षड्यन्त्र

एक तरह से काकोरी षड्यंत्र असहयोग के बाद के उत्तर भारत के सब षड्यंत्रों का पिता है। क्योंकि इसी षड्यंत्र के लोगों ने विहार, पंजाब, मध्य प्रान्त तथा बम्बई तक में अपनी शाखायें स्थापित की थी, किन्तु हम इन षड्यंत्रों का वर्णन करने के पहिले एक दूसरे प्रकार के षड्यंत्र का वर्णन करेंगे जो इसी दौरान में हुए।

एम० एन० राय तथा कानपूर साम्यवादी षड्यंत्र

पहिले ही वर्णन आ चुका है कि नरेन्द्र भट्टाचार्य नामक एक व्यक्ति विदेश से अस्त्र शस्त्र भेजने के लिए देश के बाहर भेजे गये थे। इन्होंने कुछ सफलता भी प्राप्त की। किन्तु जब भारत वर्ष में जोरों से धर पकड़ होने लगी, तथा यह भी खुल गया, कि विदेशों से अस्त्र मँगाने की कोशिश की जा रही है तब नरेन्द्र भट्टाचार्य अमेरिका चले गये। उन्होंने वहाँ के पत्रों में भारतवर्ष के सम्बन्ध में लिखना शुरू किया। अमेरिका की पूंजीवादी सरकार चौकन्नी होगई, और उसने उनपर मुकदमा चलाना चाहा किन्तु वे जमानत पर छोड़ गये। इसी हालत में वे मेक्सिको चले गये और वहाँ पर भी काम करने लगे। अब इनके विचार साम्यवादी हो चले थे। उन्होंने १९१७ में मेक्सिको में साम्यवादी दल का संगठन किया; और उनके मंत्री भी बन गये। मेक्सिको में उनसे वोरोडिन नामक सुप्रसिद्ध रूसी साम्यवादी से भेंट हुई। इन्हीं के जरिये से ये जर्मनी होते हुए रूस पहुँचे और वहाँ लेनिन के नेतृत्व में काम करने लगे। अब वे लेनिन के साथ मिल कर सारी दुनिया में, विशेष कर प्राच्य देशों में, साम्यवाद का प्रचार करने लगे। १९२० में उनसे कुछ हिजरत करने वाले भारतीय नवयुवक मिले। इनमें शौकत उसमानी, मुजफरअहमद तथा फज्लइलाही ने हिन्दुस्तान लौटकर साम्यवाद प्रचार में खूब काम किया। बाद को यहाँ सब काम

षड्यंत्र के रूप में चला। इस षड्यंत्र में श्रीयुत अमृत डाँगे, शौकत उसमानी, मुजफ्फरअहमद तथा नलिनी बाबू पर मुकदमा चला। एम० एन० राय, जो नरेन्द्र भट्टाचार्य का नया नाम था, न पकड़े जा सके। पकड़े हुये लोगों पर यह अभियोग लगाया गया कि वे ब्रिटिश सरकार को उलट देने का षड्यंत्र करते रहे हैं, और उनका नियंत्रण योरोप से एम० एन० राय करते रहे हैं। इन लोगों को चार चार साल की सजा हुई।

भारत में यह अपने ढंग का पहिला षड्यंत्र था, किंतु यह कहना कि भारत में केवल यही चार साम्यवादी थे गलत होगा। यह एक मजेदार बात है कि भारत में रूसी मार्क्स के साम्यवाद का प्रवर्तक एक भूतपूर्व-आंतकवादी है।

बब्बर अकाली आन्दोलन

बब्बर अकाली आंदोलन उस माने में एक आंदोलन नहीं था, जिस माने में कि हमने पहिले षडयंत्रों को आंदोलन बताया है, क्योंकि बब्बर अकाली अ आंदोलन एक तरह से पंजाब की सिक्ख जनता का एकाएक उभड़ कर फूट पड़ना था। दूसरे जितने आंदोलनों का जिकर पहिले आया है उन सब में मध्यम श्रेणी की प्रधानता थीं। बल्कि उन्हीं का यह आन्दोलन था, किन्तु यह आन्दोलन उनसे विस्तृत था।

किशनसिंह गड़गज्ज

इस आन्दोलन के नेता किशनसिंह गड़गज्ज नामक एक व्यक्ति थे, यह जालन्धर के रहने वाले थे। पहिले सरकार की फौजों में यहाँ तक कि रिसाले में आप हवलदार तक हो गये थे, किन्तु और सिपाहियों की भाँति वे बिल्कुल अंधेरे में नहीं रहते थे बल्कि अखबार वगैरह पढ़ते थे। जलियानवाला बाग के हत्याकांड तथा मारशल्ला आदि के कारण आप पहिले ही ब्रिटिश साम्राज्यवाद से घृणा करने लगे थे,

किन्तु अभी सक्रिय रूप से कोई भाग न लिया था। २० फरवरी १९२१ में नानकाना में जो दुर्घटना हुई उससे आप इतने खिन्न हुए कि आपने अपनी नौकरी पर लात मार दी और अकाली दल में शामिल हो गये। किन्तु आपको पुलिस के हाथ से मार खाना अच्छा नहीं लगा, और आप गुप्त दल का संगठन करने लगे। आरम्भ में ही कुछ बात फूट गई जिससे कि आप फरार होकर काम करने लगे। आपने गुप्त रूप से गाँव गाँव में जाकर सैकड़ों व्याख्यान दिये। इस काम में वे अकेले नहीं थे क्योंकि होशियारपूर जिले में करम सिंह और उदयसिंह दो युवक इसी प्रकार का संगठन बना रहे थे। किशनसिंह के दल का नाम चक्रवर्ती दल था, किन्तु जब यह दोनों दल सम्मिलित हो गये तो उसका नाम बब्बर अकाली पड़ा। बब्बर अकाली नाम से एक अखबार भी निकाला जाने लगा, जिससे सम्पादक करमसिंह हुये। धीरे धीरे बम तमंचा, बन्दूक आदि का संग्रह होने से चारों तरफ दल की शाखायें खुल गईं। इनकी योजना यह थी कि सेनाओं को भड़का कर गदर किया जाये। इन लोगों ने देख लिया था कि पंजाब तथा भारतवर्ष का इतना बड़ा क्रांतिकारी आंदोलन केवल विभीषणों की वजह से नष्ट हुआ था, इसलिए शुरू से इन्होंने तै कर लिया कि किसी भी हालत में ऐसे लोगों को नहीं छोड़ना है।

इन लोगों के कार्य क्रम में व्याख्यान देना एक खास चीज़ थी, किन्तु व्याख्यान देने के बाद ही ये लापता हो जाते थे।

१४ फरवरी १९२३ को इन लोगों ने हैयतपुर के दीवान को मार डाला, २७ मार्च १९२३ को इन्होंने बैबलपूर के हजारा सिंह को मार डाला, इसके अतिरिक्त इन्होंने दूसरे अनेक आदमियों को भेदिया होने के अपराध में नाक कान काटकर या लूटकर छोड़ दिया।

धन्ना सिंह

पहिले ही मैं कह चुका हूँ कि यह आंदोलन शिक्षितों का आंदोलन नहीं था, बल्कि जनता के स्वतःस्फुरित विद्रोह का प्रकाश था। धन्नासिंह

और बन्ता सिंह ने बिशनसिंह नाम के व्यक्ति को भेदिया होने के कारण मार डाला। इसके बाद उन्होंने ११, १२ मार्च को पुलिस के भेदिये नम्बरदार बूटा को मार डाला। फिर १६ मार्च को इन्होंने लाभसिंह को मारा। इसी तरह बहुत से भेदियों को इन्होंने मारा।

बोमेली युद्ध

पुलिस अब चौकन्नी हो गई थी, और इनके पीछे पीछे फिर रही थी। एक दिन करम सिंह, उदय सिंह, विशन सिंह आदि व्यक्ति बोमेली गाँव के पास से जा रहे थे, इतने में किसी ने उनकी खबर पुलिस को कर दी। दोनों तरफ से ये लोग घेर लिए गये। ये गुरु द्वारा में आश्रय लेना चाहते थे, किन्तु दोनों तरफ से गोली चलने लगी। इसलिए वे बढ़ते तो किधर आगे बढ़ते, उदय सिंह और महेन्द्र सिंह वहीं शहीद हो गये। करम सिंह भागकर पानी में खड़े होकर शत्रुओं पर गोली चलाने लगे, किन्तु एक आदमी इतने आदमियों के विरुद्ध कब तक लड़ता, वे भी वहीं शहीद हो गये। इसी तरह विसन सिंह भी मारे गये। १ सितम्बर १६२३ की यह घटना है, किन्तु इस हत्याकान्ड से बब्बर अकाली आन्दोलन को चोट पहुँचने के बजाय और ताकत पहुँची, बहादुर सिक्ख धड़ाधड़ इस दल में भरती होने लगे।

धन्नासिंह कई घटनायें कर चुके थे, इसलिये पुलिस बराबर इनकी तलाश में फिर रही थी। २५ अक्टूबर १६२६ को धन्नासिंह ज्वालासिंह नामक एक विश्वास घातक के कहने में आ गये। इस व्यक्ति ने इनको ले जा कर एक ऐसी जगह में रख दिया जहाँ पुलिस ने उनको घेर लिया। जब धन्नासिंह को इसका पता लगा तो उन्होंने अपना तमंचा निकालना चाहा, किन्तु इससे पहिले ही कि वे निकाल पाते वे गिरफ्तार कर लिये गये। धन्नासिंह के कमर में एक बम छिपा था, उन्होंने गिरफ्तारी की हालत में ही किन्तु एक ऐसा झटका मारा कि बम फट गया। वे स्वयं तो उड़ ही गये साथ साथ पाँच पुलिस वालों को भी

लेते गये जिन में से एक मिस्टर हाटर्न एक अँग्रेज थे। इसी प्रकार कई घटनाऐं हुईं जिसमें कई पुलिस वाले मारे गये।

बब्बर अकाली मुकदमा

बाद को किशन सिंह गड़गज्ज आदि पकड़े गये। सब मिलाकर ९१ आदमी गिरफ्तार हुये जिनमें से तीन जेल ही में मर गये। बाकी ८८ अभियुक्तों में से ५४ को सजा हुई, जिनमें पाँच को फाँसी, १२ को काला पानी तथा ३८ को ७ साल से लेकर ३ माह तक की सजा हुई। अपील करने पर ५ के बजाय ६ व्यक्ति को फाँसी की सजा हुई। ठीक होली के दिन २७ फरवरी १९२६ को इन व्यक्तियों को फाँसी की सजा हुई। इन ६ व्यक्तियों के नाम ये हैं।

(१) धर्मसिंह (२) किशनसिंह गड़गज्ज
(३) संतासिंह (४) नन्दसिंह
(५) दलीपसिंह (६) करमसिंह

देवघर षड्यन्त्र

देवघर षड्यन्त्र काकोरी की एक शाखा षड्यन्त्र है इसके कई प्रमुख अभियुक्त इसी प्रान्त के रहने वाले थे। बीरेन्द्र तथा सुरेन्द्र भट्टाचार्य वहीं के ही रहने वाले थे। ये लोग देवघर में तेजेस के साथ होटल में रहते थे। ३० अक्टूबर १९२७ को इनके कमरे की तलाशी हुई थी, इस तलाशी में २ मौजर पिस्टल किताब कारतूस और एक गुप्त लिपि में लिखित कापी पकड़ी गई। यह कापी बड़ी खतरनाक थी, क्योंकि इसमें न मालूम कितने लोगों के पते थे। यह कापी कलकत्ता भेजी गई, और वहां २४ घंटे के अंदर पुलिस ने इस कापी को पढ़ा लिया, और सारे उत्तर भारत में तलाशियाँ हुईं। इलाहाबाद में इसी सम्बन्ध में श्री शैलेन्द्र चक्रवर्ती पकड़े गये। इनके पास हथियार तथा हिंदुस्तान रिपब्लिकनन की नियमावली मिली। ११ जुलाई १९२८ को इस मुकदमे का फैसला हुआ। इस फैसले में कहा गया कि अभियुक्तों ने सरकार को

पलट देने तथा देश में सशस्त्र क्रान्ति का षड्यन्त्र किया, इसमें सब से अधिक सजा शैलेन्द्र बाबू को ही हुई अर्थात् उन्हें ७ साल की सजा हुई।

मणीन्द्र नाथ बनर्जी

मणीन्द्र नाथ बनर्जी काशी के रहने वाले थे, सान्याल परिवार के संपर्क में आकर वे क्रांतिकारी दल में शामिल हो गए। जब काकोरी षड्यंत्र के लोग गिरफ्तार भी न हुए थे उसी समत ये थोड़े बहुत काम करने लगे थे परचा आदि बाँटने तथा अस्त्र इधर से उधर लेजाते थे, किन्तु जब काकोरी षड्यंत्र समाप्त हो गया, और लोगों को फाँसियां हुई तो उनके हृदय को बड़ा भारी धक्का लगा। उस समय एक प्रकार से संयुक्त प्रांत में कोई नियमित दल नहीं था। जो नेता बन कर बैठे हुये थे वे कुछ करना नहीं चाहते थे, इसलिये जब मणीन्द्र ने उनसे कहा कि इन खून का बदला लेना चाहिये तो उन नेताओं ने इस पर ध्यान नहीं दिया। मणीन्द्र को कहीं से पिस्तौल मिल गई, इसमें केवल दो कारतूसें थी। अधिक मिलने की आशा भी न थी, किन्तु उसके दिल में तो आग जल रही थी। उसने सुना था कि डिप्टी सुपरिन्टेडेन्ट बनर्जी काकोरी वालों को फाँसी दिलाने के लिए जिम्मेदार है। यह सज्जन बनारस ही में रहते थे, बस वह उन्हीं के फिराक में घूमने लगे। ९२८ के १३ जनवरी को उन्होंने डी० एस० पी० बनर्जी पर दिन दहाड़े बनारस के गोदौलिया के पास गोली चला दी। एक गोली उन्होंने उसकी बाँह में मारी, निशाना तो उन्होंने छाती पर किया था, किन्तु वह बाँह में लगी। जब उन्होंने देखा कि गोली ठीक जगह पर नहीं लगी तो वे आगे बढ़े और पिस्तौल की नली को बनर्जी की छाती से लगाकर बची खुची दूसरी गोली भी दाग़ दी, यह गोली उसके पेड़ू में लगी। मणीन्द फौरन गिरफ्तार कर लिये, गये, किन्तु वह पिस्तौल जिससे उन्होंने बनर्जी पर हमला किया था वह उनके पास नहीं बरामद हो सकी। जिस वक्त उन्होंने गोली मारी थी उस वक्त उन्होंने यह कह

कर मारा था "लो यह राजेन्द्र लाहिड़ी को फाँसी पर चढ़ाने का पुरस्कार"।

पेडू में गोली लगने पर भी मिस्टर बनर्जी नहीं मरे, और कई दिन बेहोश रहने के बाद होश में आये। मणीन्द्रनाथ बनर्जी को १० साल की सजा हुई, और वे फतेहगढ़ सेन्ट्रल जेल में २० जून १६३४ के दिन एक अनशन के फल स्वरूप करुण परिस्थितियों में शहीद हो गये। इसका विवरण क्रांति युग के संस्मरण में लिखा है।

मनमाड बम मामला

जिस प्रकार मणीन्द्र नाथ बनर्जी ने स्वतन्त्र रूप से अपना काम किया था उसी प्रकार मेरे छोटे भाई मनमोहन गुप्त ने कुछ आदमियों के साथ मिल कर एक स्वतन्त्र षड़यंत्र रचा। कोशिश तो इन लोगों की यही थी कि बड़े षड़यंत्र से इनका संबंध हो जाय, किंतु लड़का समझ कर सेनापति आजाद ने इन लोगों की ओर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया। नतीजा यह हुआ कि इन लोगों ने अपनी ही एक डेढ़ ईंट की मस्जिद बनाई. एक युवक मार्कण्डेय नामक व्यक्ति जो श्याम वगैरह घूमे हुये थे, और एक अच्छे मिस्त्री भी थे मिल गये थे। इन लोगों ने मिलकर, जब साइमन कमीशन हिन्दुस्तान के अन्दर आया तो यह तै किया कि बम्बई के पास किसी जगह पर इसके सदस्यों को गाड़ी को उड़ा दिया जाय। इसके लिये धन एकत्रित करने लगे और कुछ दिनों के भीतर एक डिनोमाइट, ७ बम और तमंचे वगैरह इकट्ठे किये। इस घटना का विस्तृत विवरण मनमोहन गुप्त ने अपनी पुस्तक "१६२८ के के शहीद" में लिखा है, मैं उसमें से थोड़ा सा विवरण देता हूँ। मार्कण्डेय और हरेन्द्र सब सामान लेकर रवाना हो गये, वे लोग अपने निर्धारित स्थान पर पहुँचे भी न थे कि बीच में बम फट गया। लगभग ४० मील के इर्द गिर्द तक आवाज सुनाई पड़ी थी, डब्बों की छतें उड़ गई थीं, तथा गाड़ी पटरी पर से उतर गई थी। धड़ाके वाले डब्बे में बहुत से लोग जल भुन कर खाक हो गये। वीर केसरी मार्कण्डेय वहीं पर सो गये,

हरेन्द्र वहीं पर बेहोश हो गये, फिर जब होश में आये तो उन्होंने बयान दे दिया, और इस प्रकार मनमोहन भी गिरफ्तार हो गये। मुकदमा बहुत दिनों तक चलता रहा, और अन्त में दोनों को सात सात साल की सजायें हुईं। यह बम मनमाड के पास फटा था, इसलिये मुकद्दमा नासिक में चला।

दक्षिणेश्वर बम मामला

राजेन्द्र नाथ लाहिड़ी दूसरे काकोरीवालों की तरह २६ सितम्बर को गिरफ़्तार न हो सके थे, क्योंकि वे बम बनाना सीखने के लिए कलकत्ता गये थे, दक्षिणेश्वर नामक एक गाँव में उनका कारखाना था। एक दिन पुलिस ने इसको घेर लिया, और ६ व्यक्तियों को गिरफ्तार किया जिसमें एक राजेन्द्र बाबू भी थे। राजेन्द्र बाबू को इस सम्बन्ध में १० साल की सजा हुई जो बाद को बदल कर ५ साल की हो गई।

अलीपुर जेल में भूपेन्द्र चटर्जी की हत्या

भूपेन्द्र चटर्जी क्रांतिकारियों को सजा तथा फाँसी दिलानेवालों में थे, वह कलकत्ता पुलिस के एक प्रमुख अफसर थे। इनका काम यह था कि जेलों में जा जाकर नजरबन्दों को तथा राजनैतिक कैदियों को डरा धमका तथा बहका कर मुखबिर बनाने या बयान दिलाने की चेष्टा करना। दक्षिणेश्वर के कैदियों ने इस बात को बहुत दिन पहिले सुन रखा था। वे भी सामने एकाध दफे बुलाये गये। १ दिन भूपेन्द्र चटर्जी जेल के अन्दर आए और वे नजरबन्दों के हाते की ओर जा रहे थे। दक्षिणेश्वर वालों ने जब यह खबर पाई तो अपने मशहरियों के डण्डे आदि लेकर उस पर कूद पड़े, और उसे वहीं पर ढेर कर दिया। इस सम्बन्ध में बाद को अनन्त हरी मित्र और प्रमोद चौधरी दो व्यक्तियों को फांसी हुईं।

लाहौर षड़यंत्र और सरदार भगतसिंह

काकोरी षड्यंत्र में एक प्रमुख अभियोग यह भी था कि काकोरी ट्रेन डकैती के बाद एक सभा मेरठ में हुई, जिसमें प्रांत भर के क्रांतिकारी नेता नहीं बल्कि लाहौर से सरदार भगतसिंह तथा कलकत्ते से यतीन्द्रनाथ दास बुलाये गये थे। काकोरी के उन नेताओं के पास जो पत्र बरामद हुये, उनमें जो लाहौर तथा कलकत्ता के उपदेशक का जिकर था वह इन्हीं दोनों के सम्बन्ध में था। इस युग के अर्थात् काकोरी के बाद युग के सब से बड़े नेता तथा प्रमुख व्यक्ति सरदार भगतसिंह थे। इसलिये पहिले हम उन्हींके जीवन का कुछ थोड़ा सा वर्णन करेंगे।

सरदार भगत सिंह

सरदार भगतसिंह जिस खानदान में पैदा हुये थे उसके लिए देश-भक्ति या देश के लिए त्याग करना कोई नई बात नहीं थी। पहिले के अध्यायों में सरदार अजीत सिंह का नाम आ चुका है। सरदार सुवरन सिंह और सरदार अजीत सिंह इनके चाचा थे, और इनके पिता का नाम सरदार किशन सिंह था। आप का जन्म १३ असौज सम्वत् १८६४ लायलपुर के बंगा नामक गाँव में हुआ। इसी दिन सरदार सुवरन सिंह जेल से आये, सरदार किशन सिंह नैपाल से वापिस आये तथा सरदार अजीत सिंह के छूटने का समाचार आया। इन्हीं कारणों से भगतसिंह की दादी ने उनको भागों वाला कहा, जिससे उनका नाम भगत सिंह पड़ा। आपने डी० ए० वी० स्कूल से मैट्रिकुलेशन पास कियाऔर बाद को नेशनल कालिज में पढ़ने लगे।

कहा जाता है सरदार भगत सिंह का झुकाव लड़कपन से ही उछल कूद तथा सामरिक क्रीड़ाओं की ओर था। एक दफे मेहता आनन्द किशोर इनके यहाँ उतरे थे। मेहता जी ने बड़े प्रेम से भगत सिंह को गोद में बैठा लिया और कंधे पर थपकियाँ देते हुए पूछा—तुम क्या करते हो।

बालक ने अपनी तोतली बोली में उत्तर दिया— मैं खेती करता हूँ।

लाला जी—तुम बेंचते क्या हो?

बालक—मैं बन्दूकें बेंचता हूँ।

इसी तरह कहा जाता है कि लड़कपन में सरदार भगतसिंह को तलवार-बन्दूक से बड़ा प्रेम था। एक बार अपने पिता के साथ खेत की ओर गये। किसान खेत में हल चला रहे थे। बालक भगतसिंह ने पिता से पूछा, वे क्या कर रहे हैं? पिता ने समझाया 'हल से खेत जोत रहे हैं। इसके बाद अनाज बोयेंगे।' इस पर भोले बालक ने कहा —अनाज तो बहुत पैदा होता है, मगर तलवार-बन्दूक सब जगह नहीं होती। ये किसान तलवार-बन्दूक की खेती क्यों नहीं करते?

स्कूल की पढ़ाई समाप्त करने के बाद जब वे कालिज में प्रविष्ट हुये तो उनका परिचय सुखदेव, भगवतीचरण, यशपाल आदि से हुआ। बाद को जाकर ये इनके प्रमुख साथी होने वाले थे। भगवतीचरण आगरे के निवासी ब्राह्मण थे, इनके पिता इनके लिए एक बड़ी जायदाद छोड़ गये थे। श्रीमती दुर्गा देवी से जो बाद को जाकर एक प्रमुख क्रान्तिकारिणी हुई बहुत कम उमर में ही उनकी शादी हो चुकी थी। सुखदेव लायलपूर के रहने वाले थे। यशपाल पजाब के धर्मशाला के पास एक गाँव के रहने वाले थे, उनका परिवार धार्मिक होने के कारण उनकी सारी प्रारंभिक शिक्षा गुरुकुल काँगड़ी में ही हुई थी।

जयचन्द विद्यालंकार

इस कालिज में जिसमें ये लोग पढ़ते थे जयचन्द्र विद्यालङ्कार अध्यापक थे। यह पहिले ही शचीन्द्रनाथ सान्याल के प्रभाव में आ

भारत में सशस्त्र क्रांति-चेष्टा का रोमांचकारी इतिहास

सरदार भगतसिंह

चुके थे। कहा जाता है इन्होंने इन लोगों की रुचि क्रांतिकारी आंदोलन की ओर फेरी, किन्तु यह महाशय सिर्फ कुछ ही हद तक जाने के लिए तैयार थे। नतीजा यह हुआ कि यह तो जहाँ के तहाँ रह गये, और इनके यह चेले क्रांतिकारी आन्दोलन में भारत-प्रसिद्ध हो गये।

शादी के डर से भागे

सरदार भगतसिंह ने एफ० ए० पास कर लिया। उस समय उनके घर वालों ने उन पर विवाह करने के लिए जोर डालना शुरू किया, किन्तु वे विवाह करने के लिए उस समय तैयार न थे। उन्होंने देखा —बक-झक करना फुजूल है, इसलिए उन्होंने चट बोरिया बिस्तर उठाया और लाहौर छोड़कर लापता हो गये। कई दिनों के बाद आप के पिता को एक पत्र मिला। जिसमें लिखा था कि मैं विवाह नहीं करना चाहता, इसी से घर छोड़ रहा हूँ।

पत्रकार के रूप में

इसके बाद वे दिल्ली गए और वहाँ पर उन्होंने कुछ दिन तक अर्जुन के सम्बाददाता का काम किया। इसके बाद कानपुर आए, और प्रताप में काम करने लगे। हिन्दी भाषा का आपने अच्छा अध्ययन किया था और वे अच्छा लिखते भी थे। यहाँ वे बलवन्त सिंह नाम से प्रसिद्ध थे, और इसी नाम से लिखते भी थे। कहते हैं वे वहाँ कुछ दिनों तक एक राष्ट्रीय विद्यालय के हेडमास्टर भी थे।

शहीदी जत्थे का स्वागत

इसी समय सरदार किशन सिंह जी को खबर मिली कि भगत सिंह कानपुर में हैं। उन्होंने अपने मित्र को तार दिया कि भगत सिंह का पता लगा कर कह दो कि उनकी माता अत्यन्त बीमार हैं। माता की बीमारी का समाचार सुनते ही सरदार भगत सिंह पञ्जाब के लिए रवाना हो गये। इन दिनों गुरू का बाग़वाला प्रसिद्ध अकाली आन्दोलन आरम्भ था, सारे पञ्जाब में एक तहलका सा मचा हुआ था। गुरू का बाग़

आन्दोलन एक तरह से धार्मिक आन्दोलन था, किन्तु इसका दृष्टि कोण प्रगतिशील था। सत्याग्रही अकालियों के जत्थे दूर दूर से गुरू के बाग़ की ओर आरहे थे, परन्तु कुछ हाँ हुजूरी दल इस आन्दोलन के विरुद्ध थे। उन्हें यह आन्दोलन फूटी आँखों न भाता था इसलिये उन्होंने निश्चय किया कि बंगा ग्राम की ओर से अकाली जत्थे का स्वागत न न किया जाय, और उन्हें यहाँ ठहरने न दिया जाय। बंगाल के कुछ निवासियों ने सरदार किशन सिंह को तार दिया जो उन दिनों गाँव छोड़ कर कार्यवश लाहौर में थे। उत्तर में सरदार साहब ने लिखा कि भगत वहाँ मोजूद है, वह जत्थे के ठहरने और लंगर का सब प्रबन्ध करेगा। हुआ भी ऐसा ही। सरदार भगत सिंह ने विरोधियों के अड़ंगे को व्यर्थ करते हुए उनका खूब धूम-धाम से स्वागत किया है।

पुलिस से चलने लगी

लायलपुर में सरदार भगत सिंह ने एक वक्तृता दी, जिसमें उन्होंने गोपी मोहन साहा की तारीफ की। पाठकों को स्मरण होगा कि यह गोपी मोहन साहा वही है जिन्होंने सरचार्लस टेगर्ट के धोखे से मिस्टर डे नामक अंग्रेज को गोली मार दी, पुलिस ने इस वक्तृता के संबन्ध में आपके ऊपर मुकदमा चलाया, किन्तु उन पर मुकदमा न चल सका। इस बीच में आपने अमृतसर में 'अकाली' तथा 'कीर्ति' नामक अखबरों का भी संपादन किया।

संगठन आरंभ

काकोरी वालों की गिरफ्तारी के बाद छिन्न-भिन्न दल को सम्भालने का काम श्री चन्द्रशेखर आजाद ने उठाया, किन्तु उपयुक्त साधन न होने के कारण वे कुछ विशेष अग्रसर नहीं हो पाये थे। १९२६ में पञ्जाब में जोरशोर से संगठन होने लगा। सुखदेव एक अच्छे संगठनकर्त्ता थे। यशपाल ने जयगोपाल को लाकर सुखदेव से मिला दिया। इसी समय बिहार के फणीन्द्रनाथ घोष संयुक्त प्रांत में आया, और लोगों से मिला।

(५) विजय कुमार सिंह ।   (६) फणीन्द्रनाथ घोष ।

(७) कुन्दन लाल

यह बात ध्यान देने योग्य है कि बटुकेश्वर दत्त इस केन्द्रीय समिति के सदस्य नहीं थे। इससे ज्ञात होता है कि असेम्बली बम के मामले में बटुकेश्वर दत्त इनमें से किसी से भी अधिक प्रसिद्ध होने पर भी दल में बहुत प्रमुख स्थान नहीं रखते थे। अवश्य इसका अर्थ यह नहीं है कि वे इनमें से किसी से कम त्यागी या कम क्रांतिकारी थे। श्री चन्द्रशेखर आजाद को उतनी ख्याति प्राप्त नहीं हुई जितनी कि सरदार भगतसिंह बटुकेश्वरदत्त या यतीन्द्रनाथ दास को हुई। ख्याति के नियम दूसरे ही होते हैं, उससे बड़प्पन नहीं तौला जा सकता। फिर इन सात केन्द्रीय समिति के सदस्यों की भी सेवायें बराबर नहीं कही जा सकतीं। इनमें से कई ने बाद को पुलिस में बयान दे दिया, फणीन्द्र घोष तो इसी अपराध में बाद को दल द्वारा जान से मार डाला गया।

इस सभा में जो बातें तै हुई, वे यों हैं। फणीन्द्र नाथ घोष विहार के सङ्गठन कर्त्ता, सुखदेव तथा भगतसिंह पंजाब के, विजय कुमार सिंह और शिव वर्म्मा संयुक्त प्रांत के सङ्गठनकर्त्ता चुने गये। चन्द्रशेखर आजाद यों तो सारे दल के ही अध्यक्ष थे, किन्तु वे विशेषकर सेना—विभाग के अध्यक्ष चुने गये। आतङ्कवाद करने का निश्चय किया गया। काकोरी युग में समिति का नाम हिन्दुस्तान रिपब्लिकन एसोशियेशन था। यह नाम कम अर्थ व्यजक समझा गया यानी यह समझा गया कि इस नाम से दल का उद्देश्य पूर्ण रूप से व्यक्त नहीं होता। यह समझा गया कि इसको और साफ करना चाहिये। तदनुसार दल का नाम हिन्दुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन आरमी याने हिन्दुस्तान समाजवादी प्रजातांत्रिक सेना रखा गया। ऐसा क्यों हुआ इसका विस्तृत विवेचन मैंने अपनी पुस्तक चन्द्रशेखर आजाद में किया है। संक्षेप में ऐसा इसलिये हुआ कि आदर्शों में विकाश न होकर क्रांतिकारी आन्दोलन के ध्येय में ही विकाश होता रहा। उसीके अनुसार यह नाम बदल दिया

गया। यह परिवर्तन सूचित करता है कि दल के ध्येय में और अधिक विकाश हुआ।

दल की ओर से कई जगह पर बम बनाने के कारखाने खोले गये जिसमें से लाहौर, शाहजहाँपूर, कलकत्ता और आगरे में बड़े कारखाने स्थापित हुये। लाहौर और सहारनपूर के कारखाने पकड़े गये।

साइमन कमिशन का आगमन

१६२८ में भारत के भाग्य का निपटारा करने के लिए विलायत से एक कमिशन आया, जिसके प्रधान इंगलैंड के प्रसिद्ध वकील सर जान साइमन थे। केवल कांग्रेस ने ही नहीं बल्कि मुल्क की सारी संस्थाओं ने इसके बायकाट का निश्चय किया। 'सइमन लौट जाओ' के नारे से गूँज उठा। लाला लाजपत राय इन दिनों कांग्रेस से देश एक तरह से अलग से हो रहे थे बल्कि सच बात तो यों है कि कई मामलों में उन्होंने ने काँग्रेस का बहुत जबरदस्त विरोध किया था। मुल्क की निगाहों में वे गिरते चले जा रहे थे, क्योंकि वे जो कुछ भी कहते थे उसमें साम्प्रदायिकता की मात्रा बहुत बढ़ कर रहती थी। ऐसे समय में मुल्क ने एका-एक सुना कि २० अक्टूर सन् १६२८ को जब साइमन कमिशन लाहौर में आया उस समय उसका बायकाट करते समय लाला लाजपत राय पर पुलिस की लाठियाँ पड़ीं। लाला लाजपत राय देश के एक पुराने नेता थे, बल्कि सच बात तो यह है नेताओं के अग्रगण्यों में थे। देश ने यह भी सुना कि देश के इस पुराने नेता पर जो लाठियाँ पड़ी, उससे उनको काफी चोट पहुँची। इसी चोट के सिलसिले में वे शय्या-गत हो गये। १७ नवम्बर १६२८ को लाला लाजपत राय का इस चोट के कारण देहान्त भी हो गया।

देश में इस मृत्यु से बहुत खलबली मची। इस समय केन्द्रीय समिति के कई सदस्य लाहौर में मौजूद थे। इन्होंने जल्दी से अपनी एक सभा बुलाई, इसमें यह तै हुआ कि चूँकि सारे भारतवर्ष की माँग है। इसलिये लाला लाजपय राय की मृत्यु का बदला लिया जाय।

पं० जवाहर लाल इस प्रसंग पर यों लिखते हैं "जब लाला जी मरे तो उनकी मृत्यु अनिवार्य रूप से उन पर जो हमला हुआ था उसके साथ संयुक्त हो गई, और दुख से कहीं बढ़कर देश के लोगों में क्रोध भड़क उठा। इस बात को समझने की आवश्यकता है क्यों कि उसके समझने पर ही हमें बाद की घटनाओं को, विशेष कर भगत सिंह और उत्तर भारत में उसकी आकस्मिक और अद्भुत ख्याति समझ में आ सकती है। किसी कार्य की नींव का कारण समझे बिना उसके करने वाले की या उसकी निन्दा करना आसान है। भगत सिंह को पहिले बहुत से लोग नहीं जानते थे, उसकी प्रसिद्धि एक हिंसात्मक या आतंकवादी कार्य के लिये नहीं हुई। × × × × भगत सिंह इस लिए प्रसिद्ध हुआ कि ऐसा ज्ञात हुआ कि उसने कम से कम उस समय के लिए लाला लाजपत राय की और इस प्रकार उन के जरिये से सारे देश की सम्मान की रक्षा की। वह तो एक चिन्ह हो गया, लोग उस कार्य को तो भूल गये, किन्तु वह चिन्ह कुछ महीनों के अन्दर पंजाब के हर एक गांव और शहर तथा उत्तर भारत उसके नाम से गूंजने लगा।"

बदला लेना तो सोचा ही जा रहा था, इस बीच में पंजाब नेशनल बक लूटने की एक योजना बनाई गई, किन्तु वह सफल न हुई और उसका विचार त्याग दिया गया।

सैन्डर्स हत्या

यह तय हुआ कि लाला लाजपतराय की हत्या के लिए ज़िम्मेदार पुलिस अफ़सर मार डाला जाय। तदनुसार जयगोपाल मिस्टर स्काट की टोह में रहने लगे। हत्या के लिए चार व्यक्ति नियुक्त हुये।

(१) चन्द्रशेखर आजाद। (२) शिवराम राजगुरु। (३) भगत सिंह। (४ जय गोपाल।

शिवराज राजगुरू के अतिरिक्त सभी लोग साइकिल पर घटना स्थल पर पहुँचे। लगभग १५ दिसम्बर के चार बजे मिस्टर सैन्डर्स हेट कानिस्टिबिल चननसिंह के साथ अपने दफ्तर से निकले। मिस्टर

भारत में सशस्त्र क्रांति-चेष्टा का रोमांचकारी इतिहास

पं० जवाहर लाल नेहरू

भारत में सशस्त्र क्रांति चेष्टा का रोमांचकारी इतिहास
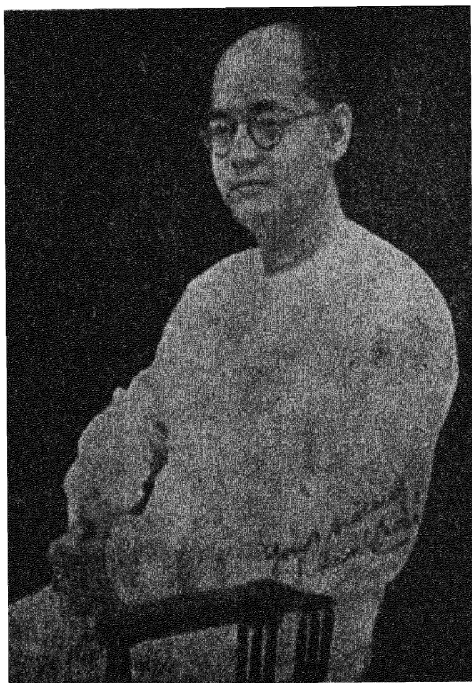
श्री सुभाषचन्द्र बोस

सैन्डर्स की मोटर साइकिल सड़क पर आते ही शिवराम राजगुरू ने उस पर गोली चलाई। शिवराम राजगुरू का निशाना अचूक बैठा। सैन्डर्स अपनी मोटर साइकिल समेत फौरन जमीन पर गिर पड़े, उनका एक पैर साइकिल के नीचे आ गया। अब भगतसिंह आगे बढ़े और ताकि कोई धोखा न रह जाय इसलिये कई गोलियाँ सैन्डर्स को मारी। इसके बाद उन्होंने भाग निकलने की कोशिश की। हेड कानिस्टेबिल चनन सिंह तथा मिस्टर फार्न ने इन लोगों का पीछा किया। फार्न को भगत सिंह ने गोली मारी जिससे वह वहीं रुक गया। चननसिंह फिर भी इन लोगों का पीछा कर रहा था। अब भगतसिंह और राजगुरू डी० ए० वी० कालिज के हाते में एक छोटे से दरवाजे में घुस गये, हेड कान-स्टेबिल चननसिंह मानों अपनी मौत के पीछे जा रहा था। अब तक आजाद चुप थे। उन्होंने जब चननसिंह को इस तरह अपना पीछा करते देखा तो उन्होंने अपने मोजर पिस्टल से चननसिंह को राजभक्ति और गुलामी का फल चखा दिया। वह वहीं गिर पड़ा, एक घंटे के अन्दर उसके प्राण कूच कर गये!

थोड़ी देर में सारे पंजाब की पुलिस चौकन्नी हो गई, और साम्राज्य-वाद के कुत्ते चारों तरफ सूँघते हुये फिरने लगे। भगतसिंह, राजगुरू तथा आजाद डी० ए० वी० कालिज के हाते से तो निकल गये थे, किन्तु अभी वे लाहौर में ही थे। और लाहौर बहुत ही गरम हो गया था। भगतसिंह ने अपने केश वगैरह कटवा डाले, और कहा जाता है दुर्गा देवी को तथा शची को साथ में लेकर बड़े ठाटबाट से अव्वल दर्जे से रेल का सफर किया। राजगुरू इनके अरदली बने। चन्द्रशेखर आजाद तीर्थ-यात्रियों की टोली बनाकर उसके साथ एक पंडे के रूप में लाहौर से निकल गये।

भगतसिंह कलकत्ता चले गये, किन्तु वे बैठने वाले न थे, वहाँ से आकर आगरे में एक बम का कारखाना खोला। इन दिनों कई और कारखाने भी खुले, जिनमें मुख्य तरीके पर यशपाल, किशोरीलाल तथा

भगवती चरण का सम्बध था। दल ने भगतसिंह के सम्बन्ध में यह तै किया कि भगत सिंह रूस चले जांय, किन्तु इस सम्बन्ध में भगत सिंह और सुखदेव में कुछ मदभेद हो गया जिससे भगतसिंह ने यह तै किया कि वे असेम्बली में बम फेंक कर आत्मसमर्पण कर देंगे। पहिले यह योजना थी कि सरदार भगतसिंह तथा बटुकेश्वर एसेम्बली में बम फेंकें, और आजाद तथा दो अन्य सदस्य जाकर उनको बचा लावें, किन्तु भगतसिंह ने इस योजना के आखिरी हिस्से को पसन्द न किया, और कहा कि देश में जागृति पैदा करने के लिए उनका गिरफ़ार हो जाना आवश्यक है। जब हम भगतसिंह के इस निश्चय के विषय में सोचते हैं तो हमारा हृदय गदगद हो जाता है। हर एक प्रकार से विह्वल सा हो जाते हैं कि एक व्यक्ति जिसने अभी मुश्किल से यौवन के चौखट पर पैर रखा है अपना सर्वस्व बलिदान करने के लिए तैयार हो जाता है, किन्तु यह तो क्रान्तिकारियों के लिए एक मामूली बात थी।

एसेम्बली में धड़ाका

सन् १६२६ की ८ अप्रैल के दिन की घटना है। उस समय की केन्द्रीय एसेम्बली में पब्लिक सेफ्टी नामक एक विल विचारार्थ उपस्थित था, दोनों ओर से खींचातानी हो रही थी ट्रेडडिस्प्युटस बिल अधिक वोटों से पास हो चुका था, और सभापति पटेल पब्लिक सेफ्टी बिल पर अपना निर्णय देने के लिये तैयार थे। सब लोगों की आँखें उन्हीं की ओर लगी हुई थीं, बहुत उत्तेजना का समय था। ऐसे समय एकाएक एसेम्बली भवन में दर्शकों की गैलरी से एक भयानक बम गिरा जिसके गिरते ही आतंक का धुआँ छा गया। सर जार्ज शूस्टर तथा सर वामन जी दलाल आदि कुछ व्यक्तियों को हलकी चोटें आईं। बम फेंकने वाले दो नवयुवक थे, एक का नाम सरदार भगतसिंह था और दूसरे का नाम बटुकेश्वर दत्त।

इस दिन के बाद से ये दोनों नाम भारतवर्ष में एक घरेलू चीज

हो गये हैं। तमोली की दुकान से लेकर प्रसादों तक इन दोनों के चित्र इसके बाद से दीखने लगे।

यदि ये लोग भागना चाहते तो बड़ी आसानी से भाग निकलते, किन्तु वे वहीं पर खड़े रहे, और 'इन्कलाब जिन्दाबाद' और 'साम्राज्य-वाद का नाश हो' कहकर नारा बुलन्द करने लगे। इसके साथ ही इन्होंने एक परचा निकाल कर वहाँ पर डाल दिया, जिसमें हिन्दुस्तान साम्यवादी प्रजातांत्रिक सेना की ओर से जनता के नाम अपील थी। इसमें एक फ्रेन्च क्रान्तिकारी का हवाला देकर कहा गया था कि बहिरों को सुनाने के लिये धड़ाके की जरूरत है। पहली झोंक में तो बहुत से लोग इस कृत्य की निन्दा कर गये किन्तु जब इन लोगों ने अपना ऐति-हासिक बयान दिया तो मालूम हुआ कि ये भी कुछ सिद्धान्त रखते हैं—और कुछ समझ कर काम करते हैं। यह बात यहाँ याद रहे कि—

सर्दार भगत सिंह इन्क़लाब ज़िन्दा बाद नारे के प्रवर्तक थे

तब से यह नारा बच्चों बच्चों में फैल गया है। आज तो केवल साम्य-वादी या मजदूरों में ही नहीं, बल्कि हर एक साम्राज्यवाद विरोधी सभा का यह एक अनिवार्य नारा हो गया है। स्मरण रहे कि यह नारा एक क्रांतिकारी का ही दिया हुआ था।

आध घण्टे बाद पुलिस का एक दल आया, और उन लोगों को गिरफ्तार कर लिया। गिरफ्तारी के बाद वे दिल्ली जेल भेज दिये गये, और हर तरीके से यह कोशिश की गई कि उनमें से एक मुखबिर हो जाय। इनको डराया धमकाया बहकाया तथा प्रलोभन दिया गया कि वे मुखबिर हो जायँ किन्तु वे अटल रहे। दिल्ली जेल में ही उनका मुक-दमा ७ मई को शुरू हुआ। १२ जून १६२६ को यह मुकदमा सेशन में खतम हो गया। इन लोगों ने एक संयुक्त वक्तव्य दिया, जिसमें कि उन्होंने क्रांतिकारी दल के उद्देश्यों पर प्रकाश डाला। इस वक्तव्य में उन्होंने बतलाया कि क्रांतिकारी दल का उदेश्य देश में मजदूरों का तथा किसानों का एकाधिनायकत्व स्थापित करना है। इस बयान के

पहिले बहुत से लोगों ने एसेम्बली पर बम फेंकने की तथा क्रांतिकारियों की बड़ी निन्दा की थी, किन्तु इस बयान के बाद से लोगों की गलत-फ़हमियाँ दूर हो गईं, और लोग मुक्त कंठ से क्रांतिकारियों की प्रशंसा करने लगे। यों तो बहुत से क्रांतिकारियों ने इसके पहिले बयान दिये थे और उनसे काफी सनसनी भी हुई थी, और जनता की प्रशंसा भी उन्हें मिली थी, किन्तु सरदार भगतसिंह तथा बटुकेश्वर दत्त ने जो बयान दिया था उसकी अपील सिर्फ़ हमारे हृदय के प्रति नहीं थी बल्कि हमारे दिमग़ को थी। इसके पहिले किसी भी क्रांतिकारी ने अदालत में खड़े होकर इतना विद्वत्तापूर्ण बयान नहीं दिया। पं० जवाहर लाल जी ने यह जो कहा है कि भगत सिंह के जन-प्रिय होने का कारण केवल एक मनोवैज्ञानिक परिस्थिति में रङ्ग मंच पर आने से ही हुआ; यह बात सम्पूर्ण सत्य नहीं है, भगतसिंह के बयान से जनता को मालूम हो गया कि क्रान्तिकारी समिति सही माने में जनता के लिए लड़ रही है। इसके अतिरिक्त भगत सिंह के पीछे एक रोमांटिक पश्चात् भूमि थी (romantic background) इसलिये उन्होंने जो कुछ भी कहा उसकी अपील लाख गुनी हो ही गई। किन्तु जो कुछ उन्होंने कहा वह भी महत्व पूर्ण था। भगतसिंह ने जो बयान दिया उससे सूचित होता था कि पूजनीय सरदार ने अपने बयान में रूसके आदर्श को पूर्णरूप से अपना लिया था और साफ तौर पर एक तरह से कह सा दिया था एक वर्गहीन समाज की स्थापना उनके कर्मों का उद्देश्य है। रही यह बात कि इस आदर्श के साथ असेम्बली में बम फेंकना तथा सैन्डर्स की हत्या करना सामंजस्य रखता था कि नहीं।

लाहौर षड्यन्त्र की सूचना

२३ अक्टोबर १९२८ को दशहरा के दिन मेले में एक बम फटा था जिससे १० मरे तथा ३० घायल हुये थे। इसकी तहकीकात करते करते दो छात्र गिरफ्तार हुये, जिनसे पता लगा कि भगतसिंह का

सैन्डर्स हत्या में हाथ था तथा भगवती चरण एक प्रमुख क्रान्तिकारी थे। इस बीच में क्रान्तिकारियों की ओर से कुछ ढिलाई का काम हो रहा था, उससे भी तहकीकात करते करते कुछ बातें मालूम हुईं. और १५ अप्रैल १६२८ को पुलिस ने एक मकान पर छापा मारा जिसमें सुखदेव, किशोरी लाल तथा जयगोपाल गिरफ्तार हो गये। ८ दिन के अन्दर ही जयगोपाल मुखबिर बन गया। दो मई को हँसराज बोहरा गिरफ्तार किया गया, वह भी मुखबिर बन गया, दोनों 'मुखबिरों' को माफी दे दी गई। २३ मई को सहारनपुर में पुलिस ने एक मकान पर छापा मारा, और शिववर्मा तथा जयदेव को गिरफ्तार कर लिया। ७ जून को विहार के मौलनिया नामक स्थान में एक डकैती डाली गई जिसमें मकान मालिक जान से मारा गया। इस डकैती के सम्बन्ध में फणीन्द्र घोष नामक एक व्यक्ति गिरफ्तार हुआ जो मुखबिर हो गया। इसने सब षडयन्त्रों को एक में जोड़ दिया।

इस प्रकार एक मुकदमा तैयार हुआ जिसमें १६ व्यक्तियों पर मुकदमा चला, बाकी भागे हुए थे। जिन पर मुकदमा चला उनके नाम यह है।

(१) सुखदेव
(२) किशोरी लाल
(३) शिव वर्मा
(४) गया प्रसाद
(५) यतीन्द्र नाथ दास
(६) जयदेव कपूर
(७) भगतसिंह
(८) बटुकेश्वर दत्त
(९) कमला नाथ त्रिवेदी
(१०) जितेन्द्र सान्याल
(११) आसा राम
(१२) देश राम
(१३) प्रेम दत्त
(१४) महावीर सिंह
(१५) सुरेन्द्र पांडेय
(१६) अजय घोष

भागे हुओं में से विजयकुमार सिंह बरैली में; शिव राम राजगुरु पूना में तथा कुन्दन लाल संयुक्त प्रान्त में गिरफ्तार कर लिये गये। लाहौर में मुकदमा चला, इसी बीच में इन लोगों ने कई बार

अनशन किये जिससे यतीन्द्रनाथ दास शहीद हो गये, इन अनशनों का वर्णन हम एक पृथक अध्याय में करेंगे। इन अनशनों की वजह से मुकदमें में बहुत देर हो रही थी, इसके साथ ही साथ जनता में जबरदस्त प्रचार कार्य हो रहा था। इसलिये इन बातों से घबराकर सरकार ने मामूली न्याय का ढोंग छोड़ दिया, और १ मई १९३० को भारत सरकार ने गजट में लाहौर षड्यंत्र मुकदमा आर्डीनेन्स करके एक आर्डीनेन्स प्रकाशित किया, जिससे मुकदमा मजिस्ट्रेट के पास से हट कर तीन जजों के एक ट्रिब्युनल के सामने गया। इस अदालत को यह अधिकार था कि अभियुक्तों की गैरहाजिरी में भी मुकदमा चलावे। ७ अक्टूबर १९३० को इस मुकदमे का फ़ैसला सुना दिया गया, जिसमें शिवराम राजगुरु थे, सुखदेव तथा भगतसिंह को फाँसी, विजयकुमारसिंह, महावीर सिंह, किशोरीलाल, शिववर्मा, गया प्रसाद, जयदेव और कमलानाथ त्रिवेदी को आजन्म कालेपानी, कुन्दन लाल को ७ वर्ष, और प्रेमदत्त को ३ वर्ष की सजा दी गई।

भगत सिंह आदि को फाँसी न दी जाय इस बात के लिए देश के कोने कोने में हड़तालें तथा प्रदर्शन हुये। बम्बई में ट्रेन तक रुक गये, ११ फरवरी १९३१ को प्रीवी कौंसिल में इस मुकदमे की अपील हुई, किन्तु वह खारिज कर दी गई।

देश पर एक विंहगम दृष्टि

इस बीच में देश में अन्य जो बातें हुईं थीं वे बड़ी ही महत्वपूर्ण हैं, हम केवल संक्षेप में उनका वर्णन करेंगे। असहयोग आंदोलन के बन्द होने के बाद देश में जो प्रतिक्रिया आई उसके फलस्वरूप देश में साम्प्रदायिकता का दौर दौरा शुरू हो गया यह तो पहिले ही आ चुका है। कांग्रेस के अन्दर भी देशबन्धु दास तथा त्यागमूर्ति पंडित मोतीलाल ने स्वराज्य पार्टी नाम से एक दल की स्थापना की। यह दल कौंसिलों तथा असेम्बलियों में उनको Mend या end करने के लिये जाना चाहते थे। मान्टेगु चेम्सफ़ोर्ड सुधार के पहिले चुनाव में कॉंग्रेस

तथा महात्मा गांधी कौंसिल प्रवेश का सैद्धान्तिक रूप से विरोध कर चुके थे। अब स्वराज्य पार्टी उसी बात को करना चाहती थी। ऐतिहासिक दृष्टि से यह बात महत्वपूर्ण तथा दिलचस्प है कि उस समय महात्मा गाँधी तथा उनके चेले इस योजना के विरुद्ध थे, किन्तु उनके सामने भी कोई कार्यक्रम नहीं था। अतएव ऐसे लोगों की अधिक संख्या हो गई जो दास और नेहरू की योजना को पसन्द करते थे। गांधी जी को तरह देना पड़ा, किन्तु कई साल तक इस कार्यक्रम का अनुसरण करने पर भी कुछ हासिल न हुआ। इसलिये इससे भी लोग हटने लगे, इस बीच में देशबन्धु मर चुके थे। न तो उन्होंने विधान को mend ही कर पाया था न end. आश्चर्य तो यह है कि विधानवाद की इस प्रकार विफलता हो जाने पर भी कांग्रेस १९३२ के बाद फिर क्यों इस ओर बढ़ी।

मद्रास कांग्रेस

ऐसे ही वातावरण में मद्रास कांग्रेस का अधिवेशन १९२७ में हुआ। साइमन कमीशन सिर पर था। शायद उसके सामने अपना भाव बढ़ाने के लिये काँग्रेस ने घोषित किया कि पूर्ण राष्ट्रीय स्वतन्त्रता भारतवर्ष के लोगों का ध्येय है। मैंने भाव बढ़ाने के लिये इसलिये कहा कि इसमें कोई गम्भीरता थी। ऐसा जान तो नहीं पड़ता, क्योंकि यदि गम्भीरता होती तो लाहौर में फिर से इस प्रस्ताव को पास करने की आवश्यकता क्यों पड़ती। यह भाव बढ़ाने की बात इससे पुष्ट होती है कि इसके साथ साथ नेहरू कमिटी बैठी, जो "स्वराज" का मसविदा बना रही थी। इस रिपोर्ट के बनाने में सभी दल के लोग शामिल थे। पंडित मोतीलाल की राजनीतिज्ञता की यह तारीफ है कि ऐसे विभिन्न heterogenous लोगों को वे एक पैराये पर ला सके। अस्तु।

कलकत्ता कांगरेस का अल्टीमेटम

कांग्रेस ने १९२७ में तो स्वतन्त्रता का प्रस्ताव पास किया, और

१९२८ में कलकत्ते में नेहरू रिपोर्ट का स्वागत किया, और उसे "भारत वर्ष के राजनैतिक और साम्प्रदायिक मसलों को हल करने में बहुत अधिक सहायता देने वाला" माना। काँग्रेस ने पास किया—"गो यह कांग्रेस मद्रास की पूर्ण स्वाधीनता और निश्चय पर कायम है, फिर भी इस विधान को राजनैतिक तरक्की का बहुत बड़ा जरिया मानकर उसे मंजूर करती है। खासकर इस विचार से कि वह देश के मुख्य मुख्य राजनैतिक दलों का अधिक से अधिक जितना मतैक्य हो सकता है। उसके आधार पर तैयार किया गया है। अगर ब्रिटिश पार्लियामेन्ट ने ३१ दिसम्बर १९२९ के पहिले या उस दिन तक इस विधान को पूरा पूरा मन्जूर कर लिया तो कांग्रेस उसे स्वीकार कर लेगी, बशर्ते कि राजनैतिक स्थति के कारण कोई विशेष परिस्थिति न उत्पन्न हो जाय। किन्तु यदि उस तारीख तक पार्लियामेंट ने इस विधान को मंजूर कर लिया या उसके पहले ही नामंजूर कर दिया तो कांग्रेस देश को कर-बन्दी की सलाह देकर या और जो तरीका निश्चय किया जाय उस प्रकार अहिंसात्मक असहयोग आन्दोलन जारी करने का बन्दो-बस्त करेगी।"

लाहौर में फिर पूर्ण स्वाधीनता

लाहौर कांग्रेस का अधिवेशन १ ली जनवरी १९३० तक होता रहा। इस बीच में सरकार ने ऊपर दी हुई शर्त्तें मंजूर नहीं की। किन्तु कांग्रेस के नेताओं से कुछ बतचीत चलती रही, जिस में कोई निर्दिष्ट आश्वासन नहीं दिया गया था, बल्कि गोलमेज सम्मेलन में भाग लेने के लिये कहा गया। लाहौर कांग्रेस ने इस पर यह पास किया "वर्तमान परिस्थितियों में गोल मेज सम्मेलन में कांग्रेस के प्रनिनिधियों के जाने से कोई लाभ होने को नहीं है। इसलिये यह कांग्रेस पिछले वर्ष अपने कलकत्ते के अधिवेशन में स्वीकृत प्रस्ताव के अनुसार यह घोषित करती है कि कांग्रेस विधान की धारा १ में स्वराज शब्द का अर्थ होगा पूर्ण स्वाधीनता। आगे यह कांग्रेस यह भी प्रकट करती है कि

नेहरू कमेटी की रिपोर्ट की पूरी योजना अब रद्द हो गई, और आशा करती है कि सब कांग्रेसजन पूर्ण शक्ति लगाकर आगे से पूर्ण स्वतंत्रता के लिये प्रयत्न करेंगे। स्वाधीनता के आंदोलन को संगठित करने के लिये प्रारम्भिक कार्य के रूप में तथा कांग्रेस की नीति को उसके परिवर्तित उद्देश्य के साथ यथासाध्य सामञ्जस्यपूर्ण बनाने के विचार से यह कांग्रेस केन्द्रीय तथा प्रान्तीय व्यवस्थापक सभाओं और सरकार द्वारा बनाई गई कमेटियों का बहिष्कार करने का निश्चय करती है, और कांग्रेसजनों तथा राष्ट्रीय आंदोलन में भाग लेनेवाले अन्य लोगों से कहती है कि वे भविष्य के निर्वाचनों से प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप से दूर रहें, और व्यवस्थापक सभाओं तथा कमेटियों के वर्तमान कांग्रेस सदस्यों को आदेश देती है कि वे अपनी जगहों से इस्तीफ़ दे दें। × यह अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी को अधिकार देती है कि जब ठीक समझे तब जिस प्रकार के प्रतिबन्धों को वह आवश्यक समझे उस प्रकार के प्रतिबन्धों के साथ सविनय अवज्ञा के कार्य-क्रम को जिसमें कर न देना भी शामिल है चलावे!"

इस प्रस्ताव के अनुसार व्यवस्थापिका सभाओं के १७२ सदस्यों ने फ़रवरी १९३० तक इस्तीफ़ा दे दिया। इसमें केन्द्रीय के २१, कौन्सिल आफ़ स्टेट के ९, बंगाल के ३४, बिहार-उड़ीसा के ३१, मध्यप्रान्त के २०, मद्रास के २०, संयुक्त प्रान्त के १६, आसाम के १२, बम्बई के ६, पंजाब के २ और बर्मा के १ थे।

१४, १५ और १६ फ़रवरी को कांग्रेस कार्य-समिति की बैठक साबरमती में हुई। इसमें सत्याग्रह करना निश्चित हुआ, किन्तु थोड़े दिन अहमदाबाद में जब अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की बैठक हुई तभी यह जाब्ते के तौर पर काम में आया। इसके बाद गांधी जी ने अपने आश्रम-वासियों सहित नमक बनाने के उद्देश्य से डांडीयात्रा की। इस प्रकार सत्याग्रह आंदोलन शुरू हो गया, देश में हजारों की तादाद में गिरफ्तारियाँ हुईं। गांधी जी भी गिरफ़्तार हो गये। इसके सरकार के

इशारे पर सर तेज बहादुर सप्रू तथा मिस्टर जयकर २३ और २४ जुलाई को यरवदा जेल में गांधी जी से मिले, महात्मा जी ने इस पर नैनी जेल में पंडित मोतीलाल तथा जवाहरलाल के नाम एक पत्र दिया। इस प्रकार समझौते की बातचीत शुरू हो गई। २५ जनवरी को कांग्रेस कार्यसमिति पर से प्रतिबंध हटाकर उसके सदस्यों का छोड़ दिया गया, और १९ फरवरी को महात्मा गांधी और लार्ड इरविन की संधि की बातचीत दिल्ली में आरम्भ हुई जिसके बाद ४ मार्च १९३१ को एक समझौता हो गया जो आम तौर से गांधी इर्विन समझौते के नाम से प्रसिद्ध है।

सर्दार भगतसिंह, राजगुरु तथा सुखदेव इस समय फाँसी की प्रतीक्षा में फाँसी घर में बन्द थे। देश में उनकी फाँसी के सम्बन्ध में बड़ी हलचल थी। सरकार के जज ने कहा था इन लोगों की फाँसी हो, और सारा देश कह रहा था भगतसिंह जिन्दाबाद। "स्वयं कांग्रेस वाले भी इस बात के लिए बहुत उत्सुक थे कि इस समय जो सद्भाव चारों ओर दिखाई पड़ रहा है उसका फायदा उठाकर उनकी सजा बदलवा दी जाय। किन्तु वायसराय ने इस सम्बन्ध में स्पष्ट रूप से कुछ भी नहीं कहा। हमेशा एक मर्यादा रखकर उन्होंने इस सम्बन्ध में बातें की। उन्होंने गांधी जी से केवल इतना कहा कि मैं पंजाब सरकार को इस सम्बन्ध में लिखूँगा। इसके अतिरिक्त और कोई वादा उन्होंने नहीं किया। यह ठीक है कि स्वयं उन्हीं को सजा रद्द करने का अधिकार था, किन्तु यह अधिकार राजनैतिक कारणों के लिए उपयोग में लाने के लिए नहीं था। दूसरी ओर राजनैतिक कारण ही पंजाब सरकार को इस बात के मानने में बाधक हो रहे थे।"

"दर असल वे बाधक थे भी। चाहे जो हो, लार्ड इर्विन इस बारे में कुछ करने में असमर्थ थे। अलबत्ता करांची कांग्रेस अधिवेशन हो लेने तक फाँसी रुकवा देने का जिम्मा उन्होंने लिया। मार्च के अंतिम सप्ताह में कराची में कांग्रेस होने वाली थी, किन्तु स्वयं गांधी जी ने

ही निश्चित रूप से वायसराय से कहा—यदि इन नौजवानों का फाँसी पर लटकाना ही है तो कांग्रेस अधिवेशन के बाद ऐसा करने के बजाय उसके पहिले ऐसा करना ठीक होगा। इससे लोगों को पता चल जायगा कि वस्तुतः उनकी स्थिति क्या है और लोगों के दिल में झूठी आशायें न बँधेंगी। कांग्रेस में गांधी इर्विन समझौता अपने गुणों के कारण ही पास या रद्द होगा, यह जानते बूझते हुए कि तीन नौजवानों को फाँसी दे दी गई है।"

(कांगरेस इतिहास—पट्टाभि सीतारमैया)

श्रीयुत सीतारमैया के उपर्युक्त विवरण से ऐसा भ्रम होना संभव है, जैसे भगतसिंह आदि की फाँसी की सजा रद्द करवाने का प्रयत्न गांधी इर्विन समझौते सम्बन्धी बातचीत का एक अंग हो। किन्तु यह बात नहीं है। महात्माजी ने कांग्रेस के एकमात्र प्रतिनिधि की हैसियत से माँग रूप में इस बात के लिए अनुरोध नहीं किया था जैसा कि पंडित जवारहलाल की आत्मकथा से स्पष्ट है। गांधीजी ने एक private gentlemen की हैसियत से ही इस संबन्ध में अनुरोध किया था और मुख्य बातचीत से यह पृथक था। पंडित जवाहरलाल ने अपनी आत्मकथा में लिखा है—

Nor did the government agree to Gandhiji's hard pleading for the commutation of Bhagat Singh's death sentence. This also had nothing to do with the agreement and Gandhiji pressed for it separately because of the very strong feeling all over India on this subject. He pleaded in vain"

(Pt. Jawaharlal's autobiography p. 251)

तारीख २३ मार्च को सायंकाल इन तीनों को फांसी दे दी गई। यों तो कायदा है सबेरे फाँसी देने का, किन्तु इनके लिये इस नियम का भंग

किया गया। उनकी लाशें रिश्तेदारों को नहीं दी गई, तथा उनको बड़ी बेपरवाही से मिट्टी का तेल डालकर जला दिया गया उनका फूल अनाथों के फूल की भांति सतलज में डलवा दिया गया। सारा देश आंखों की पंखुड़ियां बिछाकर जिनका स्वागत करने को तैयार था, तथा जिनका जिन्दाबाद बोलते-बोलते मुल्क का गला बैठ गया था, उन पुरुषसिंहों की साम्राज्यवाद ने इस प्रकार हत्या कर डाली ! कितनी बड़ी गुस्ताखी और कितना बड़ा अपराध था ? सरकार जनमत की कितनी परवाह करती है वह एक इसी बात से कांग्रेस के नेताओं पर जाहिर हो जानी चाहिये थी, किन्तु ....। २ फरवरी को सरदार भगत सिंह ने अपने एक मित्र को गुप्तरूप से एक पत्र लिखा था, यह पत्र पंजाब केसरी में छपा था, हम उसे यहां उद्धृत करते हैं—

" प्यारे साथियो !"

"इस समय हमारा आन्दोलन अत्यन्त महत्वपूर्ण परिस्थितियों में से गुजर रहा है। एक साल के कठोर संग्राम के बाद गोलमेज कान्फ्रेंस ने हमारे सामने शासन-विधान में परिवर्तन के सम्बन्ध में कुछ निश्चित बातें पेश की हैं, और कांग्रेस के नेताओं को निमन्त्रण दिया है कि वे आकर शासन विधान तैयार करने के काम में मदद दें। कांग्रेस के नेता इस हलत में आन्दोलन को स्थगित कर देने के लिये उद्यत दिखाई देते हैं। वे लोग आन्दोलन स्थगित करने के हक में फैसला करेंगे या उसके खिलाफ, यह बात हमारे लिए बहुत महत्व नहीं रखती। यह बात निश्चित है कि वर्तमान आन्दोलन का अन्त किसी न किसी प्रकार के समझौते के रूप में होना लाजमी है। यह दूसरी बात है कि समझौता जल्दी हो जाय या देरी में हो।

वस्तुतः समझौता कोई ऐसी हेय और निन्दा योग्य वस्तु नहीं, जैसा कि साधारणतः हम लोग समझते हैं। बल्कि राजनीतिक संग्रामों का समझौता एक अत्यावश्यक अङ्ग है। कोई भी कौम, जो किसी अत्याचारी शासन के विरुद्ध खड़ी होती है, यह जरूरी है कि वह प्रारम्भ में असफल

हो, और अपनी लम्बी जद्दोजेहद के मध्यकाल में इस प्रकार के समझौतों के जरिए कुछ राजनीतिक सुधार हासिल करती जाय, परन्तु वह अपनी लड़ाई की आखिरी मन्जिल तक पहुँचते-पहुँचते अपनी ताकतों को इतना सङ्गठित और दृढ़ कर लेती है कि उसका दुश्मन पर आखिरी हमला ऐसा जोरदार होता है कि शासक लोगों की ताकतें उनके उस वार के सामने चकनाचूर होकर गिर पड़ती है। ऐसा भी हो सकता है कि उसकी चाल थोड़े समय के लिये धीमी हो तथा उनके नेता पीछे पड़ जायँ किन्तु जनता की बढ़ती हुई ताकत समझौतों को ठुकरा कर उस आन्दोलन को अन्त तक जययुक्त करा ही देती हैं, नेता पीछे रह जाते हैं, आन्दोलन आगे बढ़ जाता है। यही विश्व इतिहास का सबक है।"

तुम्हारा
भगत सिंह

सरदार भगत सिंह ने अपने भाई के नाम जो आखिरी पत्र लिखा वह यों है। देखने की बात है ऊपर का पत्र जाहिर करता है कि महीनों फाँसी घर में रहने के बाद भी उनका दिमाग़ कितना सही काम करता था, नीचे के पत्र से हृदय का पता मिलता है। यह छोटे भाई कुलतार सिंह के नाम लिखा गया था—

अज़ीज़ कुलतार,

आज तुम्हारी आँखों में आँसू देख कर बहुत रञ्ज हुआ। आज तुम्हारी बातों में बहुत दर्द था, तुम्हारे आँसू मुझ से बर्दाश्त नहीं होते।

बर्खूर्दार हिम्मत से शिक्षा प्राप्त करना, और सेहत का ख्याल रखना। हौसला रखना, और क्या कहूँ :—

उसे फ़िक्र है हरदम नया तर्ज़ जफ़ा क्या है,
हमें यह शौक़ देखें तो सितम की इन्तहा क्या है।
घर से क्यों ख़फा रहें ख़र्च का क्यों गिला करें।
सारा जहाँ अदू सही, आओ मुक़ाबला करें।

कोई दम का मेहमाँ हूँ, ऐ अहले महफ़िल,
चिरागे सेहर हूँ, बुझा चाहता हूँ।
मेरी हवा मे रहेगी ख्याल की बिजली,
यह मुश्ते खाक है, फानी रहे या न रहे।

अच्छा आज्ञा ! "खुश रहो अहले वतन हम तो सफर करते हैं।" हौसला से रहना। नमस्ते।

तुम्हारा भाई,
भगतसिंह

भगत सिंह की फाँसी पर पं० जवाहरलाल

सर्दार भगत सिंह पर पंडित जवाहरलाल ने अपनी आत्म-जीवनी में जो कुछ लिखा है वह तो पहिले ही लिखा जा चुका है। किंतु भगत सिंह की फाँसी के बाद पंडित जवाहरलाल ने जो कुछ कहा था वह नीचे उधृत दकिया जाता है, उन्होंने कहा था—

I have remained silent during their last days lest a word of mine may injure the prospect of commutation. I have remained silent though I felt like bursting, and now all is over. Not all of us could save him who was so dear to us, and whose magnificent courage and sacrifice have been an inspiration to the youth of India...... There will be sorrow in the land at our helplessness, but there will be also pride in him who is no more, and when England speaks to us and talks of a settlement there will be the corpse of Bhagat Sing lest we forget.

"मैं भगत सिंह तथा उनके साथियों के अन्तिम दिनों में मौन धारण किये रहा, क्योंकि मैं डरता था कि कहीं मेरे किसी शब्द से

फाँसी की सजा रद्द होने की संभावना जाती न रहे । मैं चुप रहा गोकि मेरी इच्छा होती थी मैं उबल पड़ूँ । हम सब मिलकर उन्हें बचा न सके, गोकि वे हमारे इसके प्यारे थे, और उनका महान् त्याग तथा साहस भारत के नौजवानों के लिये एक प्रेरणा की चीज थी और है । हमारी इस असहायता पर देश में दुख प्रकट किया जायगा, किन्तु साथ ही हमारे देश को इस स्वर्गीय आत्मा पर गर्व है, और जब इंग्लैंड हम से समझौते की बात करे तो हम भगतसिंह की लाश को भूल न जायँ ।"

पं० जवाहरलाल के इस बयान से और आत्मकथा में भगतसिंह पर जो कुछ उन्होंने लिखा है उसमें कितना प्रभेद है ? जून १६३१ के अंक में Bharat नामक एक लंदन से प्रकाशित होने वाले क्रांतिकारी अखबार ने इस बयान पर लिखा था "भगतसिंह उनके साथियों की फाँसी को अहिंसा और त्याग पर स्पीचें झौंकने का मौका बनाया गया, पं० जवाहरलाल ने इस मौके से लाभ उठाया, और एक बार फिर भारतीय नौजवानों के नेतारूप में रङ्गमञ्च पर आये । कराँची कांग्रेस में जवाहरलाल ही फाँसी वाले प्रस्ताव के प्रास्तविक के रूप में आये । यह प्रस्ताव के कांग्रेस की अवसरवादिता तथा ढोंग का उत्कृष्ट नमूना है । बाद के जमाने में आजाद हिन्द फौज के विषय में कांग्रेस ने ऐसे ही प्रस्ताव पास किये । प्रस्ताव यों था—

The congress while dissociating itself from and disapproving of political violence in any shape or form places on record its admiration of the bravery and sacrifice of the late Sirdar Bhagat Singh and his comrades Sjt. Sukhdeo and Raj. guru, and mourns with the bereaved families the loss of these lives. This congress is of opinion that this triple execution is an act of wan-

ton vengeance and is a deliberate flouting of the unanimous demand of the nation for commutation. The congress is further of the opinion that government have lost the golden opportunity of promoting goodwill between the two nations, admittedly held to be essential at this juncture, and of winning over to the peace the party which being driven to despair resorts to political violence.

इस पर Bharat ने जो टिप्पणी की उसको हम उद्धृत करते हैं, इसका हम अनुवाद न करेंगे।

Here for those who have eyes to see, is an example of the work of those "disciples of truth" What western demagogue ever exploited more cynically indiviedual heroism and the sentiments of the public for their own ends ? Bhagat Singh's name was sung up and down for two days in Congress Nagar, the parents of the dead men were exhibited everywhere—probably their charred flesh, had it been avsilable would have been thrown to the people, anything to uppease the mob ? And to cap all no uncompromising condemnation of the government that carried out the act, but a pious reflection that "Govern ment have lost the golden opportunity of promoting goodwill between the two nations" etc.

———

जेलों में साम्राज्यवाद के विरुद्ध युद्ध

ब्रिटेन के लेखकों तथा विचारशील व्यक्तियों के हमेशा न्याय की दुहाई देते रहने पर भी, ब्रिटिश साम्राज्यवाद ने हमेशा अपने पराजित शत्रुओं के साथ हद दर्जे का दुर्व्यवहार किया है। गदर में किस प्रकार गदरियों के साथ अमानुषिक अत्याचार किया गया, इसको यदि छोड़ भी दें तो भी इस सम्बन्ध में ब्रिटेन की नीति सम्पूर्ण रूप से प्रतिहिंसा-मूलक तथा जघन्य रही है। ब्रिटिश साम्राज्यवाद ने बर्मा विजय के बाद बर्मा के बन्दी रणबाँकुरों के साथ कैसा बर्ताव किया, उसकी गवाही तो बरैली सेन्ट्रल जेल के दो नम्बर हाते की चार नम्बर वैरिक दे रही हैं, और मैंने इस वैरिक को देखा है। मुझे तथा मेरे साथियों को भी इन कोठरियों में रहना पड़ा है। ये कोठरियाँ क्या हैं, तहखाने या जिन्दों की कब्रें हैं। न कहीं से रोशनी आती है, दिन में भी रात रहती है तिस पर गाली, मार राजनैतिक कैदी न मानना इत्यादि। याने हर प्रकार से कैदी की आत्मा का अपमान करना। और ऐसा एक दिन नहीं. दो दिन नहीं, महीनों, वर्षों और पंडित परमानन्द ऐसे व्यक्तियों के लिये तेईस या चौबीस साल।

सावरकर की जबानी जेल के दुखड़े

सावरकर जी ने मराठी में "माझी जन्मठेप" नाम से अपने जेलजीवन का वर्णन लिखा, हम उसमें के कुछ हिस्सों का अनुवाद देते हैं ताकि पाठकों को यह ज्ञान हो कि राजनैतिक कैदी कैसे milien में रहते थे। सावरकर लिखते हैं:—

"अंदमन में जो क्रांतिकारी गये थे उनमें अलीपुर षड्यन्त्र के कुछ बङ्गाली तथा महाराष्ट्र के गणेशपंत सावरकर और वामनराव

जोशी थे। इसके अतिरिक्त राजनैतिक डकैती के पाँच छै आदमी बाद को आये, इनमें से आजीवन कालेपानी की सजा तीन बङ्गाली तथा दो मराठों को थी। दूसरे बङ्गाली दस से तीन साल तक सजा पाये हुए थे। मैं जब वहाँ पहुँचा तो इलाहाबाद के स्वराज्य पत्र के चार सम्पादक भी सात से दस वर्ष तक सजा लेकर वहाँ थे। किन्तु उनपर राज्यक्रांति करने का अभियोग नहीं था। उन पर अभियोग था राजद्रोह का। केवल यही नहीं उनमें से लोग क्रांति के तत्व से बिलकुल अपरिचित थे, बल्कि उनका व्यवहार इसके विरुद्ध था, किन्तु जब ये ही लोग राजद्रोह में सजा पाकर क्रांतिकारियों में रक्खे गये, तो ये क्रांतिकारी वसूलों से भी परिचित हो चले, और इनका व्यवहार भी क्रांतिकारियों की तरह होने लगा। X X X पहिले जो लोग गये थे उनमें अधिकांश बङ्गाली थे, इसलिये शुरू शुरू में राजनीतिक कैदी बङ्गाली कहलाते थे। किन्तु जब पंजाब आदि प्रान्तों से सैकड़ों भाई गिरफतार हो होकर आने लगे, तो हमें ऐसा ही एक दूसरा अजीब नाम दिया गया, तब हम 'बमगोले वाले' कहलाये।"

"राजनीतिक कैदी शब्द जिन्होंने जन्म भर न सुना तो उनसे और क्या आशा की जा सकती थी। उन लोगों ने सुन रक्खा था कि हम लोगों में से कुछ ने बम बनाये। बस हम सभी बम गोले वाले हो गये। यह नाम इतना रायज हुआ कि जेलर बारी साहब को भी जब हम लोगों में से किसी की जरूरत पड़ती थी तो वह कहता था "सात नम्बर के बम गोले वाले को ले जाओ" या "अभी सब बम गोलेवालों को बन्द करो।" मैंने कई बार कैदियों को समझाया कि बम चलाना हमारा उद्देश्य नहीं था, हम तो सरकार के विरुद्ध लड़ रहे थे। कुछ तो हममें से कलम से लड़ते थे, उनको जीभ वाला कहना ही अच्छा होगा, किन्तु जो नाम पड़ गया सो पड़ गया। मैंने कई दफे कहा कि हमें राजनैतिक कैदी कहा जाय, किन्तु बारी साहब को यह नाम फूटी आँखों नहीं भाता था। अक्सर कैदी हमें

बाबूजी कहा करते थे, किन्तु ऐसा सुन पाते ही बारी साहब उस कैदी पर उबल पड़ते थे, "कौन बाबू है ? साले ! ये सभी कैदी हैं।" हम राजनैतिक कैदी नहीं हैं इस बात को कहते कहते बारी साहब कभी थकते न थे। किसी ने यदि ऐसा हमें कह दिया तो बारी आपे से बाहर हो जाते थे और कहते थे "होः, कौन राजकैदी है ? वे तुम्हारे माफिक मामूली कैदी है। इन पर बदमाश कैदियों का डी लिखा है, नहीं देखते !" बदमाश कैदियों को डी इसलिये मिलता था कि वे "डेंजरस" याने खतर-नाक मानें जायं, हम लोगों को भी डी मिलता था, भला सरदार की आँखों में हम से अधिक खतरनाक कौन था ? इतना होने पर भी शुरू से आखिर दिन तक मुझको कैदी बड़े बाबू कह कर पुकारते थे। कभी कभी बारी भी भूलकर कह डालता था "ऐ हवलदार, जाओ सात नम्बर के बड़े बाबू को बुला लाओ।" × × × × बारी साहब ने लाख कोशिश की, ऊपर के दूसरे अफसर सिर पटक कर मर गये, किन्तु हमें धीरे धीरे सब राजकैदी कहने लगे।" यह एक बड़ी जीत थी।

कुछ दिन तक काम भी ठीक दिया जाता था, याने नारियल का रेशा निकालना पड़ता था, किन्तु एक साहब कलकत्ता से आये तो देखा कि राजनीतिक कैदी आसपास बैठकर काम करते हैं। कभी करते कभी नहीं करते; तब ऊपर से लिख के आया — इनसे सख्ती की जाय। बस इन लोगों को कोल्हू दिये गये, आपस में बात करने पर ही सात दिन कि हथकड़ी मिलने लगी। बदला लेना था न ? सख्त से सख्त काम दिये जाने लगे। जेल के डाक्टर बहुत अच्छे स्वास्थ्य वाले के अति-रिक्त किसी को यह सब काम नहीं देते थे, किन्तु इन राजनैतिक कैदियों का स्वास्थ्य खराब हो या भला ये सब सख्त काम उन्हें दे दिये जाते थे। चिकित्सा शास्त्र भी इस प्रकार साम्राज्यवाद के हाथ का कठपुतला हो गया। लोग कोठरियों में बन्द कोल्हू पेरते, थोड़ी देर के लिए रोटी लेने खुलते। यदि इस बीच में वह अभागा कैदी यह चेष्टा करता कि कि हाथ पैर धोले या बदन पर थोड़ी धूप लगा ले, तो नंबरदार का

पारा चढ़ जाता था, वह माँ बहिन की सैकड़ों गालियाँ देता था। हाथ धोने का पानी नहीं मिलता था, पीने के पानी के लिए तो सैकड़ों निहोरे नम्बरदार के करने पड़ते थे। पनीहा पानी नहीं देता था, जो कहीं से उसे एकाध चुटकी तम्बाकू की दे दी तो अच्छी बात है, नहीं तो उलटी शिकायत होती कि ये पानी फजूल बहाते हैं, और जेल में यह एक बड़ा जुर्म है। यदि किसी ने जमादार से शिकायत की तो वह उबल पड़ता —"दो कटोरी का हुक्म है, तुम तो तीन पी गया। क्या तुम्हारे बाप के यहाँ से आवेगा?" नहाने की तो कल्पना ही अपराध था, हाँ वर्षा हो तो कोई भले ही नहावे। खाने का भी यही हाल, खाना देकर कोठरी बन्द हो गई, कैदी खा पाया या नहीं, किन्तु बाहर से हल्ला होने लगा— "बैठो मत, शाम को तेल पूरा हो, नहीं तो पीटे जाओगे, और जो सजा मिलेगी सो अलग। ऐसे वातावरण में खाते तो कैसे, बहुत से ऐसा करते कि मुँह में कौर रख लिया, और कोल्हू में चलने लगे। सौ में एकाध ऐसे थे जो दिन भर मिहनत करने पर ३० पौंड तेल निकाल पाते थे। जो न निकाल पाते उनपर जमादार-नम्बरदार डंडेबाजी करते। लात, घूँसा, जूता पड़ता!"........कालेज के छात्र तथा अध्यापक श्रेणी के राजनैतिक कैदियों को भी कोल्हू मिला, तो बीमार हो गये। किन्तु बारी साहब के राज्य में १०१ डिग्री से कम बुखार नहीं माना जाता था, यानी उसे न अस्पताल भेजा जाता, न काम से छुट्टी मिलती! जिस बदकिस्मत को बुखार, दस्त या कै न होकर शिरदर्द, हृदयरोग या ऐसा कोई अप्रत्यक्ष रोग होता उसकी तो शामत ही आ जाती।

राजनीतिक कैदी कोल्हू चलाते चलाते थक जाते, उनके सिर में दर्द होता, वे सिर थाम कर बैठ जाते। जमादार कहता—"क्या है, कोल्हू चलाओ।" राजनीतिक कैदी कहते "सिर में दर्द है।" ज़मादार कहता—"मैं क्या करूँ, कोल्हू पीसो, डाक्टर को दिखाओ।" डाक्टर आये, किन्तु क्या करता, थार्मामिटर लगाया, किन्तु बुख़ार नहीं। वह हिन्दुस्तानी होता था, बारी साहब से डरता था, वह बग़लें झांकने

लगता। उधर बारी साहब फरमाते "देखो डाक्टर, तुम हिन्दू हो, यह पोलिटिकल कैदी भी हिन्दू हैं। इनकी मीठी बातों से कहीं तुम खटाई में न पड़ जाओ यह हमें डर है। कोई जाकर शिकायत कर दे कि तुम इनसे बोलते बतलाते हो तो तुम्हें लेने के देने पड़ जायँ। इसलिये सम्हल जाओ, समझे, नौकरी करो। माना कि तुम डाक्टरी पढ़े हो किन्तु हम भी गुणी हैं कौन सच्चा बीमार है कौन झूठा, मैं फौरन ताड़ लेता हूँ।"

एक बार ऐसा हुआ गणेशपंत के सिर में जोर का दर्द उठा, डाक्टर ने उसे अपने हुक्म से कोठरी से निकलवाया और कहा इसे अस्पताल भेजो वे चले गये, कैदी को भेजने में जो लिखा पढ़ी होती है, वह भी हो चुकी और गणेशपंत मय बिस्तरा के जाने लगे, इतने में आगये बारी साहब। उन्होंने जो गणेशपन्त को अस्पताल जाते देखा तो सामने आया; लगे उसी पर बिगड़ने "मुझसे क्यों नहीं पूछा, वह डाक्टर कौन होता है? साले, ले जाओ इसको वापस, काम में लगाओ। मैं समझ लूँगा उस डाक्टर को, मुझसे बिना पूछे इसे कोठरी से क्यों निकाला? ओ साले मैं जेलर हूँ कि वह डाक्टर।" गणेशपंत आखिर तक अस्पताल न जा सके। यह सारी तकलीफ विशेषकर राजनीतिक कैदियों के लिये थी। डाक्टर लोग यह समझते थे कि कहीं ऐसा न हो कि बड़े साहब शक करें कि वह राजबंदियों से सहानुभूति रखता है। यह सब झकझक एक दिन का नहीं, बल्कि जन्म भर तक रहता था।

"अन्दमन में अन्न, वस्त्र की तकलीफ, मारपीट, गाली, यह सब असुविधा तो थी ही, किन्तु एक और भयंकर तकलीफ थी जिसको कहते संकोच होता है वह यह था—मलमूत्र पर भी रोकटोक थी। सबेरे शाम और दुपहर के सिवा टट्टी, पेशाब भी नहीं फिर सकते। रात को टट्टी फिरो तो सबेरे भंगी शिकायत करे, और पेशी की नौबत आवे। खड़ी हथकड़ी हो गई तो आठ घंटे बँधे खड़े रहो।" "सब

कैदियों के साथ वही एक ही व्यवहार। दूसरे कैदी तो ऐसा कर लेते थे कि चोरी से दीवार पर ही पेशाब कर दिया, या खड़े खड़े जमादार की आँख बचा सब के सामने। किन्तु राजनीतिक कैदी ऐसा कैसे करते, इसलिये वे हर तरह से घाटे में रहते।"

इस प्रकार सैकड़ों कष्ट थे। पुस्तकें लेनदेन में जहाँ मुकद्दमा चलता था वहां भला जीवन का क्या कहना। महामूर्ख बारी साहब हजारों जेलर में से एक है, राजबन्दी क्या पुस्तक पढ़े, इसमें भी वे दखल देना चाहते थे। सावरकर की जबानी सुनिये, बारी साहब पुस्तकों पर क्या राय रखते थे—"नान्सेन्स ? ट्रश ? यह कन्टी, बन्टी की किताबें मैं देना नहीं चाहता, इन्हीं किताबों को पढ़कर लाग हत्यारे हो जाते हैं। और यह योग, वोग, थिओसफी की किताबें बेकार हैं, इनको न देना चाहिये। इन्हीं को पढ़ के तो लोग सनक जाते हैं, किन्तु सुपरिंडेंडेंट इस बात को सुनते नहीं, मैं करूँ तो कैसे करूँ ? मैंने तो आजतक कोई किताब-नहीं पढ़ी, फिर भी एक जिम्मेदार आदमी हूँ। किताब पढ़ना यह औरतों का काम है।"......

एक आफत के मारे राजबन्दी भूगर्भशास्त्र पढ़ रहे थे, तो उन्होंने अपनी कापी में नोट ले रक्खा "Pliocene Miocene Neolithic" वगैरह, अब बारी साहब ने कॉपी जाँच की तो यह मिला, इन्होंने कहा पकड़ लिया What is this cypher "यह गुप्तलिपि क्या है ?" सावरकर जी से कहा तो उन्होंने कहा "यह भूगर्भशास्त्र पढ़ना होगा।" किन्तु बारी साहब खास आसनसोल में पैदा थे, वे अंग्रजी नहीं समझते ? दूसरे दिन वह कैदी पेशी पर गया और दो हफ्ते के लिये उसकी किताबें छिन गईं ! ...

पं० परमानन्द तथा आशुतोष लाहिड़ी ने बारी साहब को ऐसे ही किसी अवसर पर उठा कर पटक दिया। उनको तीस तीस बेंत लग गये। सर्दार पृथ्वी सिंह वर्षों दिनरात कोठरी में बन्द रहे। रामरक्खा नामक एक राजनैतिक कैदी जनेऊ पहिनने के अधिकार पर या किसी

ऐसी ही छोटी बात पर अनशन कर प्राण दे दिया। उन दिनों इतनी छोटी बात कराने के लिये भी जान दे देनी पड़ती थी।

राजनैतिक कैदी जेल में गये तो साम्राज्यवाद ने डरा धमका कर उनको गिराने की कोशिश की, किंतु इसमें वह सफल न रह सका। इस संघर्ष का इतिहास बड़ा ही रोमांचकारी है, यदि लिखा जाय तो इसी का एक प्रकांड इतिहास हो जाय, किंतु हम इस अध्याय में उसका संक्षिप्त वर्णन करेंगे।

असहयोग के कैदी

१९२१ में जब असहयोग के सिलसिले में बहुत से राजनैतिक कैदी जेलों में आये तो संयुक्त प्रांतीय सरकार ने उनको दो भागों में विभक्त किये। (First class misdemenant) और (Second class misdemeant), यह कोई स्थायी बन्दोबस्त नहीं था, फिर इस बन्दोबस्त में सब राजनैतिक कैदी भी नहीं आये थे। १९२१ में तो बहुत से राजनैतिक कैदी मामूली कैदी ही करार दिये गये थे, बल्कि उनके साथ बर्ताव उनसे भी खराब होता था।

काकोरी के कैदी अनशन में

१९२७ में काकोरी के कैदी जेलों में आये। इन लोगों ने जेल में आते ही विशेष व्यवहार की माँग रक्खी, और इस सम्बन्ध में अर्जी वगैरह सरकार को भेजी। काकोरी केस के नौजवान पहिले ही से अनशन के पक्ष में थे, किंतु बड़े उन्हें रोकते थे। खैर, आखिर किसी प्रकार बड़े भी एक दिन ऊब गये और सामूहिक रूप से विशेष व्यवहार की माँग रखकर अनशन किया। मैं समझता हूँ इस प्रकार से सैद्धान्तिक रूप में राजनैतिक विशेषकर क्रान्तिकारी कैदियों के विशेष व्यवहार की माँग रखकर इसके पहिले कभी भारतीय जेलों में अनशन नहीं हुआ। अनशन का एलान होते ही सब लोग बाँट कर अलग अलग बन्द कर दिये गये, और हर प्रकार से चेष्टा की गई

कि यह अनशन असफल रहे। नौजवानों से अलग अलग कहा गया कि उन्हें विशेष व्यवहार दिया जायगा, और बूढ़ों से कहा गया कि उनका मुकद्दमा खराब हो जायगा, किन्तु सरकार की यह चाल व्यर्थ गई। अनशन के प्रारम्भ होते ही अधिकारी वर्ग जिस बात के लिये ना, ना, कर रहे थे, उसी बात का नैतिक औचित्य तो मानने लगे, किन्तु कानून की दृष्टि से अपनी विवशता प्रकट करने लगे। मुकद्दमा चलना बन्द हो गया, और जज मैजिस्ट्रेट, आई जी. सभी बारी बारी से जेल जाने लगे और अभियुक्तों को अनशन की बेवकूफी समझाने लगे।

अनशन के ग्यारहवें दिन प्रांतीय सरकार ने एक विज्ञप्ति निकाली जिसमें यह घोषित किया गया था कि चूँकि अभियुक्त डकैत हैं, इस लिये सरकार उनके विशेष व्यवहार की माँग स्वीकार नहीं कर सकती। यह विज्ञप्ति बकायदा हम अभियुक्तों को दिखलायी गई और उन लोगों से कहा गया कि अब तो कोई आशा नहीं है, उन्हें अनशन तोड़ देना चाहिए। इस विज्ञप्ति में एक और मजेदार बात यह कही गई थी कि अभियुक्तों ने अनशन के पहले बाहर से क्लोरल नामक मादक द्रव्य मगांया था ताकि उसके सेवन से भूख की ज्वाला कम हो जाय। सरकार की इस सार्वजनिक अस्वीकृति के बाद ही अभियुक्तों की माँगों के सम्बन्ध में गम्भीर विचार होने लगे, और अभियुक्तों से समझौते की बातें होने लगी। इस बीच में अभियुक्तों को रबर की नली द्वारा खाना खिलाना प्रारम्भ हो गया था।

सोलहवें दिन संध्या समय चार बजे अनशन के सम्बन्ध में अतिंम बातचीत शुरू हुई इस बातचीत के फलस्वरूप यह तय हुआ कि अभि-युक्तों को मेडिकल ग्राउंड पर वही व्यवहार दिया जायगा जोकि गोरे कैदियों को मिलता है, याने कोई दस आना रोज मूल्य का खूराक प्रत्येक व्यक्ति को दिया जायगा। काकोरी कैदियों ने इस बात को कबूल कर बड़ी गलती की, क्योंकि बाद को जब उनको सजा हुई तो उन्हें यह व्यवहार नहीं मिला। बात यह है कि यह सारा व्यवहार मेडिकल ग्राउँड

पर मिला हुआ था, और मेडिकल ग्राउँड के सम्बन्ध में अंतिम फैसला करने का अख्तियार मेडिकल आफिसर को अर्थात जेल के I. H. S. सुपरिन्टेन्टेन्ट को होता है। जब सजा पड़ने के बाद काकोरी कैदियों ने अनशन की मांग पेश की तो उन्होंने यह कह कर उसे ठुकरा दिया कि इस समय उनके स्वास्थ्य के लिए इस व्यवहार की जरूरत नहीं है। इस बीच में याने सजा पड़ने के बाद ही काकोरी के कैदी एक-एक दो-दो करके प्रांत की विभिन्न जेलों में बांट दिये गये। फिर सरकार को भी कोई जल्दी नहीं थी। कोई मुकदमा नहीं चल रहा था, और मालूम तो ऐसा होता है कि काकोरी के कैदी भी तुले हुए नहीं थे, इसलिये उन्होंने जब सजा के बाद विभिन्न जेलों में अनशन किया तो उसका कुछ नतीजा नही हुआ। स्वर्गीय गणेशशंकर विद्यार्थी ने जाकर इन अनशनों को खत्म करा दिया।

काकोरी ने जहाँ छोड़ा लाहौर ने वहाँ से उठाया

यह अनशन यहीं छूट गया किन्तु इसका मतलब यह नहीं कि साम्राज्यवाद के विरुद्ध जेलों के अन्दर कोई राजनैतिक कैदियों की उठाई हुई यह लड़ाई खत्म हो गई बल्कि सच्ची बात तो यह है कि इस लड़ाई को बाद को राजनैतिक कैदियों ने उठाया। और उन्होंने इस लड़ाई को सरदार भगतसिंह और बटुकेश्कर दत्त ने हवालात में उठाई, और उन्होंने एलान कर दिया कि राजनैतिक कैदियों के लिये विशेष व्यवहार लेकर के ही तब वे छोड़ेंगे। जब लाहौर षड़यन्त्र के लोगों ने इस बात को देखा कि दो साथी तिलतिल करके राजनैतिक कैदियों के लिए लड़ते हुए अपना प्राण दे रहे है तो उन्होंने एलान कर दिया कि यदि भगतसिंह-दत्त की मागें न मानी गई तो १३ जुलाई से वे भी अनशन कर देंगे। अब सरकार को इस बात पर बड़ी फिक्र पैदा हुई, क्योंकि सरकार देख रही थी कि इन अनशनों का देश के जनमत पर क्या प्रभाव हो रहा है। ३० जून को सारे भारतवर्ष में बड़े जोरों के साथ भगतसिंह दत्त दिवस मनाया

जा चुका था, किन्तु सरकार ने इस बात पर कोई ख्याल नहीं किया।

जब सरकार ने लाहौर षड्यन्त्र वालों की धमकी सुनी तो उनसे यह चाल चली और कहा मेडिकल ग्राउँड पर विशेष व्यवहार ले लो। भगतसिंह दत्त जानते थे कि काकोरी वालों का ऐसा ही बातें कह कर चकमा दिया गया था। जब श्री गणेशशंकर विद्यार्थी ने भगत सिंह को यह बात मान लेने के लिए कहा तो उन्होंने साफ कह दिया कि एक बार सरकार यह चाल देकर लोगों को धोखा दे चुकी है, वे अब इसमें नहीं पड़ सकते। इस प्रकार भगतसिंह तथा दत्त के पास से तार तथा संदेश आए, किन्तु उन्होंने किसी की न सुनी, और अपने अनशन युद्ध को जारी रक्खा। बलात्पान शुरू हो गया, अभियुक्तों के अनुसार इसका तरीका यह था कि प्रत्येक आदमी के लिए सात सात आठ आठ आदमी बुलाये जाते थे, एक आदमी सिर पर दूसरा छाती पर बैठ जाता था और शेष हाथ पैर पकड़ लेते थे। फिर रबड़ की लम्बी नलियों से जोर से उनके नाक के रास्ते पेट तक दूध पहुँचाया जाता था।

यतीन्द्रदास की हालत खराब

१३ जुलाई को सब लाहौर के कैदियों ने अनशन शुरू कर दिया। दत्त की हालत पहले से ही खराब हो रही थी, अब यतीन्द्रदास के अनशन के शामिल होने में उनकी भी हालत खराब होने लगी। यतीन्द्र दास का स्वास्थ्य पहले से ही खराब था, अब अनशन करने से उनकी हालत और भी खराब हो गई और बजाय दत्त के लोगों को अब यतीन्द्र दास की चिन्ता पैदा हुई। हालत खराब होते होते यतीन्द्र दास की हालत बहुत खराब हो गई।

पंडित मोतीलाल का बयान

पं० मोतीलाल भी इस विषय में चुप न रह सके। उन्होंने अखबारों में वक्तव्य देते हुये कहा कि भगतसिंह दत्त तथा यतीन्द्र दास ने यह अनशन ५२ दिन से कर रक्खा है, वे और उनके साथी यह व्रत

अपने लिए नहीं कर रहे हैं। विद्यार्थी जी ने अपनी आँखों से लाहौर षड्यन्त्र के अभियुक्तों के शरीर पर चोटों के निशान देखे हैं जो उन्हें बलात्यान कराते समय आये हैं।

पं० जवाहरलाल का बयान

पंडित मोतीलाल स्वयं तो न जा सके, किन्तु पं० जवाहरलाल उनकी जगह पर मिले। उन्होंने अखबारों को बयान देते हुए कहा "यतीन्द्र दास की हालत बहुत खराब हो गई है। वे बहुत कमजोर हो गये हैं, करवट बदलने की ताकत उनमें नहीं रह गई, वे बहुत धीरे-धीरे बोलते हैं। यथार्थ में देखा जाय तो वे रोज मौत की ओर बढ़ रहे हैं। मुझे इन बहादुर नौजवानों की तकलीफों को देखकर बड़ा कष्ट हुआ। वे, मालूम होता है, अपने प्राणों की बाजी लगाकर इस लड़ाई में शामिल हैं। वे चाहते हैं राजनैतिक कैदियों के साथ राजनैतिक कैदियों की तरह बर्ताव हो। मुझे पूरी उम्मीद है कि उनकी यह तपस्या सफलता से मंडित होकर ही रहेगी।"

इधर जनमत जोर पकड़ता जा रहा था, सरकार को यह बात नापसन्द थी कि क्रान्तिकारियों का इस प्रकार प्रचार हो। ६ अगस्त को एक सरकारी विज्ञप्ति निकली, किन्तु उस विज्ञप्ति में सरकार ने कोई ऐसी बात नहीं लिखी जिससे जनमत सन्तुष्ट होता, बल्कि ऐसी बातें थीं जिससे जनमत और रुष्ट होता। सरकार के लिये भगत दत्त-यतीन की मांगे मान लेना बड़ी कठिन बात थी, क्योंकि राजनैतिक कैदियों को राजनैतिक कैदी मान लेने का अर्थ यह होता था कि सरकार जेलों के अन्दर जो प्रतिहिंसा की आग में अपने शत्रुओं को बराबर दग्ध कर उनको गिराने की चेष्टा करती थी, उस उपाय से हाथ धोती। आतङ्कवाद और निरे आतङ्कवाद पर प्रतिष्ठित ब्रिटिश सरकार के लिये यह बहुत बड़ा त्याग था, सरकार भरसक इस बात को मानना नहीं चाहती थी।

गवर्नर उतरे, फिर भी नहीं उतरे

उधर अनशन जारी रहा। लाहौर वाले सरकार की इस छुपी हुई धौंस में नहीं आये, पंजाब के गवर्नर साहब भी परेशान थे। क्या करें, उनकी अक्ल काम नहीं देती थी। वे शिमला-शैल से उतर कर लाहौर की यथार्थता से तपती हुई समतल भूमि में आये। लोगों ने समझा जिस प्रकार गवर्नर बहादुर ऊपर से नीचे उतरे, उसी प्रकार सरकार भी कुछ नीचे उतरेगी, किन्तु यह आशा व्यर्थ हुई। सरकार तो खून की प्यासी थी, वह दो चार की बलि चाहती थी। एक तरह झूठी शान थी, दूसरी तरफ थी सच्ची आन। गवर्नर आये, पता भी लगा कि वे जेल अधिकारियों से मिले, किन्तु कहां, कुछ भी नहीं हुआ। वे आये थे जैसे ही चोरी से, वैसे ही चले गये।

एक और विज्ञप्ति

९ अगस्त को सरकार ने एक विज्ञप्ति निकाली। इसमें भी कोई खास बात नहीं थी। अगस्त के दूसरे सप्ताह में पंजाब सरकार ने जेल कमेटी बना दी। सरकार झुकी तो, किन्तु दिखाना चाहती थी कि वह अकड़ में है।

इस अनशन की सहानुभूति में विभिन्न जेलों में अनशन हुआ। मुकद्दमें का यह हाल था कि उसकी तारीखें बराबर बढ़ती चली आ रही थीं। जेल जाँच कमेटी के पंजाब की जेलों के इंस्पेक्टर जेनरल सभापति थे। वे एक दिन जेल तशरीफ ले गये और उन्होंने अभियुक्तों को आश्वासन दिया "मैं जेल कमेटी का प्रधान हूँ, मैं आप लोगों को अश्वासन देता हूँ कि मैं आपकी सब शिकायतों को दूर करूँगा, आप अनशन त्याग दें।"

अभियुक्त अश्वासन में आने वाले नहीं थे। उन्होंने देख लिया था कि इन अश्वासनों का क्या मूल्य होता है, उन्होंने उसकी बातें मानने से इनकार किया। पंजाब जेल कमेटी ने एक उपसमिति बना

दी कि इनके अनशन को तुड़ावे। वह बराबर अभियुक्तों स ।मलती रही, दो सितम्बर को संध्या समय श्री यतीन्द्रनाथ दास के अतिरिक्त सभी लाहौर कैदियों ने इस समय उपसमिति के समझाने पर अनशन तोड़ दिया। दास के लिये इस उपसमिति ने यह सिफारिश की कि वे छोड़ दिये जायें, क्योंकि उनकी हालत बड़ी खराब हो गई थी।

यतीन्द्रदास की अन्तिम घड़ियाँ

सितम्बर के प्रारम्भ से ही डाक्टर लोग कह रहे थे कि यतीन्द्रदास के जीने की कोई आशा नहीं, रक्त का दौरा केवल हृदय के ही आसपास था, सारा शरीर सन्न पड़ता जा रहा था। दास इस बात को जानते थे कि वे धीरे धीरे मृत्यु की ओर अग्रसर हो रहे हैं। फिर इस पर दारुण यंत्रणा भी थी। दास के रिश्तेदारों से कहा गया कि वे जमानत दें, किन्तु दास को इस विषय में पूछा गया तो उन्होंने इनकार कर दिया। इस पर सरकार के इशारे पर व्यक्तियों ने चुपके से ज़मानत दाखिल कर दी, सरकार को तो अपनी झूठी इज्जत बचानी थी। इतने पर भी दास ने सरकार का काम बनने न दिया। जमानत के कागज पर यतीन्द्रदास की दस्तखत होनी जरूरी थी, यतीन्द्र दास ने इस कागज पर दस्तखत करने से इनकार किया। सरकार ने इस पर यह उड़ा दिया कि दास तो बिना शर्त रिहा होने के लिये अनशन कर रहे हैं, किन्तु जनता सब जानती थी। जालिम होने के अलावा सरकार अब जनता की आँखों में झूठी भी हो गई।

यतीन्द्रदास अब अकेला अनशन कर रहे थे, उनके साथियों ने उनका साथ छोड़ दिया था !!!

दास की मृत्यु अब निश्चित थी। साम्राज्यवाद काफी झुक चुका था; वह अब इससे अधिक झुकने के लिये तैयार नहीं था। उसका काफी अपमान हो चुका था, वह अब इससे अधिक बर्दाश्त नहीं कर सकता था। यतीन दास के विषय में जनता भी जान गई थी। वे

कुछ ही देर के मेहमान हैं, उनके लिये इस वक्त यह शेर कितना मौजूँ था।

कोई दम का मेहमाँ हूँ ऐ अहले महफिल,
चिरागे सहर हूँ बुझा चाहता हूँ!......

सरकार ने सोचा कि कहीं यतीन्द्र दास के मरने पर लाहौर में दङ्गा न हो जाय, इसलिये उसने बाहर से अधिक पुलिस मँगा ली। उधर शहीद की मिट्टी के लिये तैयारियाँ होने लगी। श्री सुभाषचन्द्र बोस ने उनकी लाश को कलकत्ता भेजे जाने के लिये ६०० रु० भेज दिये। बङ्गाल चाहता था कि अपने इस लाल को मरने के बाद अपनी ही गोद में स्थान दे। इधर बम्बई वालों ने कहा—खर्चा हम देंगे। इस पर पञ्जाब वालों ने कहा कि पाँच नदियों वाला यह प्रान्त इतना गरीब हो गया है—नहीं, खर्च हम देंगे।

यतीन्द्रनाथ दास की शहादत

यतीन्द्रनाथ की तपस्या अब पूरी हो चुकी थी, १३ सितम्बर को एक बजकर पाँच मिनट पर यतीन्द्र, देश का प्यारा यतीन्द्र बोरस्टल जेल में साम्राज्यवाद के विरुद्ध लड़ते हुए शहीद हो गये। शहीदों का मरना विशेषकर यतीन्द्रदास के मरने को मैं ऐसे देखता हूँ जैसे सब धुआँ खतम हो गया, और रह गई केवल एक दीप्ति जो हमारे सामूहिक जीवन को उज्वल बनाती है।

यतीन्द्रदास की इस मृत्यु बल्कि साम्राज्यवाद द्वारा हत्या के वर्णन के बाद मेरी लेखनी कुछ देर के लिये आँसू बहाने के लिये चुप बैठना चाहती है, किन्तु एक युद्ध के विषय में लिखने वाले को ऐसा करने की अनुमति नहीं मिल सकती। उसको तो अपने दिल को पत्थर बनाकर आगे बढ़ना पड़ता है। साम्राज्यवाद द्वारा यतीन्द्रदास की इस नृशंस हत्या के बाद यह लड़ाई फिर भी जारी होती है, वह कब और किसके द्वारा यह बाद को लिखा जाता है।

लाहौर वाले फिर अनशन में

पञ्जाब जेल कमेटी की खिचड़ी पकती रही, सन् १६३० की फरवरी में लाहौर वालों ने सरकार की बातों से निराश होकर अनशन कर दिया। बात यह है लाहौर वालों ने देखा कि उनकी सजा सुनाने के दिन करीब आ रहे हैं, कहीं ऐसा न हो कि वे भी काकोरी वालों की तरह सरकार द्वारा उल्लू बनाये जायँ। इसके अतिरिक्त उन्होंने यह भी सोचा कि कहीं यतीन्द्रदास का त्याग उनके बाद वालों की वजह से व्यर्थ न जाय, इसलिये उन्होंने अनशन कर दिया।

काकोरी वाले भी आ गये

इसकी खबर बरैली जेल में बन्द सर्वश्री राजकुमार सिंह, मुकुन्दी लाल, शचीन बक्शी तथा मन्मथ गुप्त को लगी, ये जैसे तैयार बैठे ही थे, इन्होंने ८ फरवरी से इन्हीं माँगों पर अनशन कर दिया। देश में एक तुमुल आन्दोलन उठ खड़ा हुआ, अखबार आग उगलने लगे। सारे देश को अनशन से सहानुभूति थी, जो लोग असहयोग वग़ैरह में जाकर जेलों में अकथनीय कष्टों का सामना कर चुके थे वे सभी चाहते थे जेलों में साम्राज्यवादी वर्बरता का नाश हो। देश के एक तरफ से लेकर दूसरे तरफ तक इसके लिये सभायें प्रदर्शन आदि हुये।

भारत सरकार की विज्ञप्ति

आखिर परेशान होकर भारत सरकार ने १६ फरवरी को एक विज्ञप्ति निकाली। इस विज्ञप्ति में भूमिका के तौर पर जो कुछ लिखा गया था उससे यह ध्वनि निकलती थी कि करुणा सागर भारत सरकार तथा उसके कर्मचारी बहुत दिनों से कैदियों के दुखड़ों पर दुश्चिन्ता के कारण रात को सोते नहीं थे, दिन रात इसी चिन्ता में पड़े हुये थे कि किस प्रकार कैदियों की भलाई हो। भारत सरकार इसी उद्देश्य से प्रान्तीय सरकारों से मशविरा ले रही थी। फिर प्रांतीय सरकारें वहाँ के

प्रतिष्ठित लोगों की राय ले रही थी। कुछ असेम्बली के सदस्यों से भी सरकार ने इस सम्बन्ध में बातचीत की। करुणानिधान सरकार भला कोई काम किसी से बिना पूछे कैसे कर सकती थी, फिर इस मामले में यह दुर्भाग्य रहा कि लोगों ने बिलकुल जुदी जुदी रायें दीं। फिर भी करुणामय सरकार अपनी करुणा से विवश थी, कुछ तो उसे करना ही था इसलिये सरकार ने यह नियम बनाये हैं। ऐसी चिकनी चुपड़ी बातों से सरकार न मालूम किसे बरगलाना चाहती थी। सरकार का उद्देश्य तो साफ था कि लोग इन नियमों के लिए सरकार को धन्यवाद दे, न कि यतीन्द्र दास या इस सम्बन्ध में दूसरे अनशनकारियों को।

ए० बी० सी० श्रेणियाँ

सरकार ने इस विज्ञप्ति के अनुसार कैदियों को तीन हिस्सों में विभाजित किया (१) ए (२) बी और (३) सी

ए श्रेणी में वे कैदी आ सकेंगे जो (क) सचरित्र एकबाड़ा (nonhabitual) कैदी हों। (ख) सामाजिक हैसियत, शिक्षा तथा जीवनचर्या की दृष्टि से ऊँची रहन सहन के आदी हों। (ग) उनको निष्ठुरता, लोभ, नैतिक पतन, राजद्रोहात्मक या पहिले से सोची हुई हाथापाइ, सम्पत्ति के विरुद्ध अपराध, बम, तमंचा, बन्दूक के संबन्ध के किसी अपराध में सजा न हुई हो।

बी श्रेणी उनको मिलेगी जो सामाजिक हैसियत, शिक्षा तथा जीवनचर्या से ऊँची रहन सहन के आदी हों। दुबाड़े कैदी भी इस श्रेणी में आ सकते हैं।

सी श्रेणी में वे सब कैदी समझे जायेंगे जो ए या बी में नहीं आते।

अब तक जेल में गोरे और हिन्दुस्तानियों में जो जाति के कारण विभेद था, किन्तु इस विज्ञप्ति में यह घोषित किया गया कि अब यह भेद न किया जायगा। किन्तु यह झूठ था, अब भी जेलों में यह अभेद मौजूद है।

छाछ को फूँक फूँक कर पीनेवाले हो गये थे, वे टस से मस नहीं हुए। उन्होंने कहा कि पहिली बात तो यह है कि इस प्रकार का वर्गीकरण गलत है, किन्तु यदि मान भी लिया जाय कि यह सन्तोषजनक है तो इसका क्या ठिकाना कि हम उच्चवर्ग में मान लिये जायेंगे। बात बहुत ठीक थी। तजरबा ने बतलाया कि लाहौर वालों ने अनशन विज्ञप्ति पर तोड़कर गलती की, बाद को लाहौर वालों को, सबको, वर्षों तक सी. श्रेणी में रक्खा गया और संयुक्त प्रान्त की कांग्रेसी सरकार की पेंच की वजह से ही पंजाब सरकार ने उन्हें ७ वर्ष बाद विशेष व्यवहार दिया। राजकुमार आदि डटे रहे, बराबर उनका स्वास्थ्य बिगड़ता गया, किन्तु उन्होंने इसकी कुछ भी परवाह नहीं की। सर्दार भगतसिंह, पं० जवाहरलाल नेहरू, बाबू सम्पूर्णानंद आदि व्यक्तियों के निकट से तार आते रहे—अनशन तोड़ दो, किन्तु इन लोगों ने कुछ न सुना। चन्द्रशेखर आजाद उन दिनों जीवित थे, उन्होंने यह खबर भेजी—तुम लोग निश्चिंत हो कर अनशन तोड़ दो, मेरा विश्वास है कि तुम लोगों को सरकार विशेष व्यवहार देगी। इसके साथ ही उन्होंने अपना आजादाना ढंग से इतना और जोड़ दिया "यदि इन्होंने तुम्हें विशेष व्यवहार नहीं दिया तो हम प्रतिज्ञा करते हैं कि दो चार जेल के बड़े बड़े अफसरों को समाप्त कर देंगे।" पं० गोविन्दवल्लभ पंत ने यह संदेशा भेजा कि हमें विश्वस्त सूत्र से मालूम हुआ है कि आप लोगों के विशेष व्यवहार के लिये आज्ञा जारी कर दी गई है, किंतु इनमें से किसी भी व्यक्ति की बात पर यह अनशन नहीं तोड़ा गया।

श्री गणेशशंकर विद्यार्थी

इसके बाद श्री गणेशशंकर विद्यार्थी भी आये और घंटों तक इन कैदियों से बातचीत करते रहे, किंतु उसका कोई नतीजा नहीं हुआ और अनशन जारी रहा। इसके बाद बहुत दिनों तक अनशन चला। अन्त में ५३ वें दिन सरकार की ओर से एक पत्र आया जिसमें यह लिखा था कि सब काकोरी कैदी इस आज्ञा के

द्वारा बी० श्रेणी-मुक्त कर दिये जाते हैं। किन्तु राजकुमार, सिंह, शचीन्द्र बख्शी तथा मन्मथनाथ गुप्त तभी बी० श्रेणी मुक्त किये जायेंगे जब वे अनशन तोड़ चुकेंगे। इस प्रकार सरकार ने अपनी शान तो बचाली, किन्तु उसे झुकना पड़ा। अनशन टूट गया। जिस युद्ध को काकोरी कैदियों ने ही उत्तर भारत में उठाया था वह उन्हीं के हाथ से प्रत्यक्ष रूप से सफलता को प्राप्त हुआ। किन्तु जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि श्री यतीन्द्रनाथ दास के ही त्याग की वजह से राजनैतिक कैदियों की दुर्दशा की ओर जनता की दृष्टि गई और सरकार मजबूर हुई। जो कुछ भी थोड़ी बहुत जीत इस सम्बन्ध में हुई वह श्री यतीन्द्रनाथ दास के महान त्याग के कारण ही हुई। फिर भी स्मरण रहे कि जिन माँगों के लिए यतीन्द्रनाथ दास ने यह महान् त्याग किया था वह अभी तक पूर्ण रूप से सफल नहीं हुआ। कुछ कांग्रेसी प्रान्तों ने अवश्य ही इस सम्बन्ध में कुछ कानून इस प्रकार के बनाये हैं कि जो भी राजनैतिक मामलों में जेल में जाय उसे बी० श्रेणी में माना जाय, किन्तु कार्य रूप में देखता हूँ कि इसका प्रयोग कांग्रेसी सरकार के मातहत भी पूर्ण रूप से नहीं हो रहा है। आज हमारे राष्ट्रीय आन्दोलन में सब से जबरदस्त चीज मजदूर तथा किसानों की तहरीक है, किन्तु उस सम्बन्ध में जेल गए हुए लोगों को कांग्रेस सरकार भी बी० श्रेणी में नहीं रख रही है। पता नहीं वह उन्हें राजनैतिक कैदी समझती भी है या नहीं।

मणीन्द्र बनर्जी की मृत्यु

इसके बाद भी जेलों में साम्राज्यवाद के विरुद्ध युद्ध जारी रहा। १६३५ में फतहगढ़ सेन्ट्रल जेल में श्रीमणीन्द्रनाथ बनर्जी ने अपने साथियों सहित एक अनशन किया था जिसमें उन्होंने कई मांगे रखी थीं। उन मांगों में से एक यह थी कि सी० श्रेणी के राजनैतिक कैदियों को दिन-रात कोठरियों में न रखा जाय। दूसरी यह थी कि सरकार ने जो वादा किया था कि अब जेलों में भारतीय और गोरों में प्रभेद-बुद्धि

न रखी जाय, उसे पूरा किया जाय। इसी प्रकार और कई मांगें थीं जिनका यहां पर विस्तार के साथ उल्लेख करने की जरूरत नहीं है। इस अनशन में यशपाल, मन्मथनाथ गुप्त, रमेशचन्द्र गुप्त, रणधीर सिंह आदि शामिल थे। इसी अनशन के फलस्वरूप २० जून ९३४ को फणीन्द्रनाथ बनर्जी बड़ी ही करुण अवस्था में शहीद हो गए।

योगेश चटर्जी तथा बख्शी जी का अनशन

इस मृत्यु का समाचार जब आगरा जेल में बन्द श्री योगेश चन्द्र चटर्जी तथा श्री शचीन्द्रनाथ बख्शी को मिला तो उन लोगों ने चार मांगे रखकर अनशन शुरू कर दिया।

(क) मणीन्द्र बनर्जी की मृत्यु पर तहकीकात की जाय।

(ख) ऐसी मृत्यु न हो सके इसलिए सब राजनैतिक कैदी एक जेल में एक साथ रखे जायँ।

(ग) उन्हें दैनिक समाचार पत्र दिये जायँ।

(घ) सब अंडमन के कैदी भारत वापस बुला लिये जायँ।

योगेश बाबू ने इस अनशन को बड़ी बहादुरी के साथ १४२ दिन तक जारी रखा। इस अनशन को उन्होंने आई० जो० के आश्वासन पर तोड़ा था, किन्तु यह आश्वासन झूठा साबित हुआ और जब उन्होंने देखा कि उनकी शर्तें पूरी नहीं हो रही हैं तो उन्होंने पुनः अनशन प्रारम्भ कर दिया जो १११ दिन तक चला। इसके फलस्वरूप संयुक्त-प्रांत के सब राजनैतिक बन्दी एक साथ नैनी सेन्ट्रल जेल के एक खास वार्ड में रख दिये गये, और उन्हें एक दैनिक पत्र दिया गया। उनकी अन्य दो मांगें पूरी नहीं हुईं।

शचीन्द्र बख्शी का अनशन

जेलों के अन्दर की इस लड़ाई ने एक दूसरा ही रूप धारण किया जब काकोरी कैदी शचीन्द्र बख्शी ने छूटने की मांग रख कर अनशन कर दिया। राजनैतिक कैदियों को, विशेषकर काकोरी कैदियों को, जेल में बारह साल के करीब हो गये थे इसलिये जब यह माँग रक्खी गई तो

भारत में सशस्त्र क्रांति-चेष्टा का रोमांचकारी इतिहास

फतेहगढ़ जेल में अनशन के कारण शहीद
श्री यतीन्द्रनाथ बनर्जी

भारत में सशस्त्र क्रांति चेष्टा का रोमांचकारी इतिहास

जनता ने उसका पूरा साथ दिया। उधर अन्डमन में भी, राजनैतिक कैदियों ने इस आन्दोलन को उठा लिया, और उन्होंने एक के बाद एक दो दफे अनशन करके सब राजनैतिक कैदियों को देश में लाने के लिये सरकार को मजबूर कर दिया। किन्तु अब भी जेलों में राजनैतिक कैदी मौजूद हैं और उनकी लड़ाइयाँ भी जारी हैं। सच बात तो यह है कि जब तक राजनैतिक कैदी जेलों में रहेंगे तब तक उनकी लड़ाई भी जारी रहेगी।

प्रथम लाहौर षड़यन्त्र के बाद

प्रथम लाहौर षड्यन्त्र की गिरफ्तारियों के बाद दल काफी विध्वस्त हो चुका था, किन्तु सेनापति आजाद अपनी प्रचन्ड कर्म शक्ति, विपुल उद्यम, तथा कभी न टूटने वाले साहस के साथ मौजूद थे। श्री भगवतीचरण, जो कि एक बहुत ही सुलझे हुए क्रांतिकारी थे, वह भी मौजूद थे। अतएव दल का काम फिर से चलने लगा। इस जमाने के मुख्य कार्यकर्त्ताओं में कई स्त्रियाँ भी थीं। इनमें सबसे प्रमुख श्रीमती सुशीला देवी उर्फ दीदी, और श्रीमती दुर्गा देवी उर्फ भाभी थीं। इसके अतिरिक्त यशपाल एक बहुत ही साहसी तथा सुलझे हुए क्रान्तिकारी थे। मुखबिरों के बयान के अनुसार हंसराज, सुखदेवराज, तथा कुमारी प्रकाशवती इन लोगों में सम्मिलित थी। प्रथम लाहौर षड्यंत्र के सिलसिले में श्री भगवतीचरण तथा यशपाल दिल्ली चले आये, और अब से एक प्रकार से दल का केन्द्र दिल्ली हो गया। इन्द्रपाल बाद को जो मुखबिर हो गया, उसके अनुसार २७ अक्टूबर १६२९ को वायसराय की गाड़ी उड़ा देने की योजना को कार्य्यरूप में परिणत करना चाहा था, किन्तु कई कारणा से यह बात रोक दी गई। दूसरी एकाध

तारीखें और टल गई। अन्त में २३ दिसम्बर १६२६ तक ही यह योजना कार्यरूप में परिणत हो सकी।

वायसराय की गाड़ी पर बम

वायसराय की गाड़ी उड़ाने के लिए बहुत दिन से तैयारी करनी पड़ी थी। इन्द्रपाल एक साधु के वेश में दिल्ली से नौ मील दूर निजामयुद्दीन नामक स्थान पर जाकर डटा रहा, उसका मतलब निरीक्षण करना था। कहा जाता है, इस कार्य को सफल बनाने में सबसे बड़ा हाथ यशपाल का ही था। निश्चित तारीख पर वायसराय कोल्हापुर से दिल्ली आ रहे थे। कई दिन पहले ही लाइन के नीचे बम गाड़ दिये गये थे। उन बमों का सम्बन्ध एक बिजली के तार से के जरिये कई सौ गज दूरी पर स्थित एक बैटरी से था। इस बात की तारीफ करनी पड़ेगी कि कई दिन पहले से यह बम गड़े रहे, और उन पर से होकर बहुत सी सी गाड़ियाँ निकल गई किन्तु वे न फटे। जब वायसराय की गाड़ी बमों के ऊपर आई तो नीचे से खींच दिया गया, और बड़े जोर का धड़ाका हुआ। थोड़ी सी देर हो गई याने कई एक सेकण्ड की देर हो गई, इसलिए वायसराय जिस डिब्बे में थे वह न उड़कर उससे तीसरा डब्बा उड़ गया। सरकार में इस बात से बड़ा कोहराम मचा, और बड़े जोर के तहकीकात होने लगी। कांग्रेस के नेताओं ने इसकी बड़ी निन्दा की। लाहौर कांग्रेस में जहाँ पूर्ण स्वाधीनता का प्रस्ताव ढङ्ग से पास हुआ, वहाँ उसके साथ ही एक प्रस्ताव इस आशय का पास हुआ "यह कांग्रेस वायसराय की ट्रेन पर बम चलाने के कृत्य की निन्दा करती है, और अपना निश्चय फिर से प्रकट करती है कि इस प्रकार का कार्य न केवल कांग्रेस के उद्देश्य के प्रतिकूल है वर्ना उससे राष्ट्रीय हित की हानि होती है। यह कांग्रेस वायसराय, श्रीमती इरविन तथा गरीब नौकरों सहित उनके साथियों का इस बात के लिए अभिनन्दन करती है कि वे सौभाग्य से बाल बाल बच गये।"

इसके अतिरिक्त इन लोगों ने भगतसिंह वगैरह को जेल से भगाने

को योजना बनाई, किन्तु बहुत दिनों तक इसमें लगाने के बाद भी यह योजना सफल न हो सकी।

भगवतीचरण की मृत्यु

भगतवीचरण की त्मृयु क्रान्तिकारी इतिहास की एक दर्दनाक घटना है। इसके सम्बन्ध में कई तरह की बातें सुनी जाती है। जो कुछ मालूम हो सका उसमें केवल इतना निर्विवाद है कि २८ मई १९३० के साढ़े चार बजे शाम को भगवतीचरण एक बम को लेकर प्रयोग करने के लिए रावी के किनारे सूनसान जगह में गये। वहाँ वह बम यकायक फट गया और भगवतीचरण बहुत सख्त घायल हो गये। कहते हैं चोट से उनकी सारी अंतड़ियाँ पेट से बाहर निकल आई थीं, किन्तु फिर भी अंतिम समय तक उनको दल की ही धुन थी। तीन चार घंटे तक वे जीवित रहे किन्तु कुछ परिस्थितियाँ ऐसी आई या पैदा की गई। जिससे उनकी डाक्टरी सहायता नहीं पहुँचाई जा सकी। जिस समय भगवतीचरण मरे हैं कहा जाता है कि उनके पास उस समय कोई नहीं था। भगवतीचरण की मृत्यु का पूरा हाल शायद ही कभी इतिहास को मालूम हो। किन्तु इसमें संदेह नहीं कि उनका त्याग भारतीय क्रांतिकारी इतिहास में एक आदर्श वस्तु है। वे धनी थे, पुरुष थे, युवक थे, किन्तु उन्होंने इन सब बातों पर लात मार कर आजाद का साथ दिया, और उस मार्ग का अवलम्बन किया जिसके नतीजे में उनकी इस प्रकार अत्यन्त करुणा-जनक अवस्था में एक अनाथ की तरह अकाल मृत्यु हुई। भगवतीचरण की लाश को उनके साथियों ने रावी ही में डुबो दिया, यह एक क्रान्तिकारी की मौत थी।

इसके बाद कई जगह बम फटे, डाके की योजनायें बनाई गईं, तथा एकाध हत्या की भी योजना बनी, किंतु कोई विशेष सफलता इन लोगों को नहीं मिली। अगस्त १९३० में जहाँगीर लाल रूपचन्द, कुन्दन लाल तथा इन्द्रपाल गिरफ्तार हुये। धीरे धीरे इस षड़यंत्र में छब्बीस अभियुक्त पकड़े गये। चन्द्रशेखर आजाद, यशपाल, भाभी,

दीदी, प्रैकाशवती, हंसराज इस मुकद्दमे में फरार करार दिये गये। इन लोगों का मुकदमा पाँच दिसम्बर १६३० को चल निकला।

जगदीश

पुलिस जिन व्यक्तियो की तलाश में थी, उनमें सुखदेव राज भी एक थे। ३ मई १६३१ को पुलिस को यह खबर मिली कि सुखदेव राज एक अन्य युवक के साथ लाहौर के शामीमार बाग में मौजूद हैं। पुलिस ने जल्दी उस बाग को घेर लिया। गोली का जवाब गोली से देते हुए जगदीश मारे गये। जगदीश के नाम से कोई मुकदमा नहीं था। वह इन दिनों कालेज में पढ़ता था, कई साल पहले वह १४४ तोड़ने के सिलसिले में गिरफ्तार हो चुका था। उसकी उम्र, जिस समय वह मारा गया, २२ या २३ वर्ष की थी।

सुखदेवराज का मुकदमा स्पेसल ट्रिब्युनल के सामने चला। पहले जिस द्वितीय लाहौर षड्यन्त्र का जिक्र किया गया है वह तीन साल तक चलकर १३ दिसम्बर १६३३ को खतम हुआ। इसमें अमरीक सिंह, गुलाब सिंह तथा जहाँगीरलाल को फाँसी की सजा हुई, किन्तु इन लोगों को बाद को फाँसी नहीं हुई। इनकी सजा बदल कर कालेपानी की कर दी गई, अमरीक सिंह छोड़ दिया गया। दूसरे लोगों को विभिन्न सजायें हुई।

दिल्ली षड्यन्त्र

दिल्ली में जो षड्यन्त्र चलाया गया था वह अन्त तक सरकार ने ने नहीं चलाया, इसलिये उसके सम्बन्ध में उतनी ही बातें कही जा सकती हैं जितनी मुखबिरों ने कही। कहा जाता है इस केन्द्र का काम पुराना था तथा इसमें विमलप्रसाद, अध्यापक नन्दकिशोर, काशीराम, भवानीसहाय और भवानीसिंह भी थे। इनके अतिरिक्त यशपाल, आजाद, सदाशिव, गजानन्द, सदाशिव पोतदार, वात्स्यायन, प्रकाशवती, दीदी, भाभी भी थीं।

मुखबिर कैलाशपति का बयान

दिल्ली षड्यन्त्र में कैलाशपति नामक एक व्यक्ति मुखबिर बना था। लोग कहते हैं कि सरकार को इतना मेधावी मुखबिर नहीं मिला था। जहाँ भी उसने पानी तक पिया उसका नाम पुलिस को बता दिया। उसकी स्मृतिशक्ति भी अद्भुत थी। बयान में उसने लाहौर से लेकर कलकत्ते तक बीसियों मनुष्यों का नाम लिया। कहा जाता है जिस सरगर्मी से वह क्रान्तिकारी बना था उसी सरगर्मी से वह मुखबिर बना, न उसको तब कोई फिक्र थी न अब। सुना जाता है वह बौद्धिक रूप से काफी आगे बढ़ा हुआ था। उसने अपने बयान में पं० जवाहरलाल तक को सान दिया था, फिर कौन बचता? काकोरी कैदी सुप्रसिद्ध क्रान्तिकारी शचीन्द्रनाथ सान्याल को जेल से निकालने के लिए एक योजना बनाई गई थी। इस सम्बन्ध में कैलाश उन्नाव गया था, वहाँ एक व्यक्ति मनोहरलाल की भेंट हुई थी, उसको भी इसने अपने बयान में याद किया। अस्तु उसकी आत्मकथा यों है। १९२८ के जनवरी में या फरवरी के पहिले हिस्से में यह इलाहाबाद से नौकरी करने गोरखपुर गया। वहाँ वह डाक विभाग में नौकर हो गया। वहीं उससे एम० बी० अवस्थी तथा शिवराम राजगुरू से भेंट हुई, और वहाँ क्रांतिकारी आंदोलन के संस्पर्श में आया। उसकी बदली बरहलगंज डाकखाने में हुई। यहाँ वह एक दिन २३००) रु० लेकर लापता हो गया, तथा कानपुर में उसने ये रुपये दल को दे दिये। वहीं सुखदेव, डाक्टर गयाप्रसाद तथा आजाद से उसकी भेंट हुई। २३००) रु० मारकर इस प्रकार दल को देने से लोग उसका एतबार करने लगे, और वह दल के अंतरङ्गों में शामिल हो गया। धीरे धीरे सर्दार भगतसिंह, सुखदेव, यशपाल, काशीराम, अध्यापक नंदकिशोर, भवानीसहाय आदि से उसकी भेंट हुई। काकोरी षड्यंत्र के मिस्टर हार्टन तथा खैरातनबी की हत्या की एक योजना बनी, किंतु अर्थाभाव के कारण यह कार्य न हो सका।

भुसावल बम

भगवान दास तथा सदाशिव एक काम के लिए बम्बई गये किंतु रास्ते में, शक में, गिरफ्तार हो गये और इन पर भुसावल बमकांड चला। जब इनका मुकद्दमा चल रहा था, उस समय गवाही में फणींद्र घोष नामक मुखबिर आया तो इस पर इन दोनों ने पिस्तौल चला दी। मुखबिर मरा तो नहीं, किंतु इनको कालेपानी की सजा हुई। कहा जाता है भगवतीचरण ने कौशल से यह पिस्तौल अदालत में पहुँचायी थी।

गाडोदिया स्टोर डकैती

कैलाशपति के कथनानुसार दल ने कई जगह बम के कारखाने खोले थे। ६ जून १६३० को एक मोटर डकैती दिल्ली में की गई। यह डकैती गाडोदिया स्टोर डकैती के नाम से मशहूर है। कहा जाता है श्री चन्द्रशेखर आजाद ने इस डकैती का नेतृत्व किया, और इसमें काशीराम धन्वन्तरी तथा विद्याभूषण भी मौजूद थे। इसमें १३०००) रुपये दल को मिले। सुना गया कि जब इस स्टोर के मालिक को पता लगा कि यह क्रांतिकारियों का काम है तो उन्होंने तहकीकात को आगे न बढ़ाया।

खानबहादुर अब्दुल अजीज पर हमला

१६३० में खान बहादुर अब्दुल अजीज पर दो असफल प्रयत्न हुए। इनमें, कहा जाता है, धन्वन्तरी का हाथ था।

गिरफ्तारियाँ

२८ अक्टोबर १६३० को कैलासपति गिरफ्तार हो गया, ३० तक उसने अपना भयानक बयान देना शुरू किया।

१ नवम्बर १६३० को दिल्ली की फतहपुरी में धन्वन्तरि की गिरफ्तारी हुई। वे सुखदेवराज के साथ जा रहे थे कि पुलिस का एक हेड कान्स्टिबिल उन्हें पकड़ना चाहा तो उन्होंने पिस्तौल उठाकर उस पर

गोली चलाई। उस कान्स्टिबिल ने चोर चोर चिल्लाया तो धन्वंतरी इस पर गिरफ्तार कर लिये गये। इस गड़बड़ी में सुखदेवराज भाग गये उनका भाग्य इस सम्बन्ध में हमेशा कुछ अधिक अच्छा रहा। इस बीच में बनारस हिंदू विश्वविद्यालय से विद्याभूषण पकड़े गये। १५ नवम्बर को दायमगंज में वात्स्यायन गिरफ्तार हुए, और उसी दिन दिल्ली में विमलप्रसाद जैन गिरफ्तार हुए।

शालिग्राम शुक्ल शहीद हुए

गजानन पोतदार की गिरफ्तारी के लिये कानपुर पुलिस परेशान थी कि उसे शालिग्राम शुक्ल मिल गये। पुलिस ने इन्हीं को गिरफ्तार करना चाहा, किंतु शालिग्राम ने गोली चला दी जिस से एक कानस्टेबिल मर गया और मिस्टर हन्ट घायल हुए। शालिग्राम यहीं पर लड़ते हुए २ दिसम्बर १९३० को वीरगति को प्राप्त हुए। इनके साथ जो थे वे भाग गये।

६ दिसम्बर को अध्यापक नन्दकिशोर कानपुर के एक पुस्तकालय में अस्त्रों समेत पकड़ गये। इस प्रकार और भी बहुत सी गिरफ्तारियाँ हुईं। १५ अप्रैल १९३१ को यह मुकदमा शुरू हुआ। काशीराम अगस्त १९३१ में गिरफ्तार हुये,कानपुर के परेड नामक स्थान में गोलियाँ चली थीं। काशीराम जी पर यह मुकदमा चला और उन्हें सात साल की सजा हुई। बाद को श्री राजेन्द्रदत्त निगम भी इसी गोली कांड के मामले में गिरफ्तार हुए किन्तु उन्हें ९ साल की सजा हुई।

कई साल तक मुकदमा चलाने के बाद सरकार ने देखा कि ३½ लाख रुपया खर्च हो चुका और फिर भी सजा कराने में शायद ४ साल और लगे तो सरकार ने ९ फरवरी १९३३ को इस मुकदमे को वापस ले लिया। लोगों पर व्यक्तिगत मुकद्दमे चलाये गये। धन्वंतरी को हत्या के प्रयत्न तथा शस्त्र-कानून में ७ साल की सजा हुई। वैशम्पायन पर मुकदमा न चल सका तो वे नजरबन्द कर लिये गये। वात्स्यायन, विमलप्रसाद तथा बाबूराम गुप्त पर विस्फोटक का मुकदमा चला।

अन्त तक केवल विमलप्रसाद को ही तीन साल की सजा रही। वैशम्पायन और भवानीसहाय अब भी नजरबन्द हैं।

आजाद की अन्तिम नींद

अब हम उस व्यक्ति के शहीद होने का वर्णन करने जा रहे हैं जो गत १० वर्षों से साम्राज्यवाद के विरुद्ध अथक युद्ध अजीब-अजीब परिस्थितियों में, कहना चाहिये, बिलकुल प्रतिकूल परिस्थितियों में करता आ रहा था। गत आठ सालों से उसने क्रान्ति का मार्ग अपना रक्खा था, और खूब अपना रक्खा था। किसी विपत्ति के सामने भी यह रणबांकुरा पीछे नहीं हटा था, यह तो उसके स्वभाव के विरुद्ध था, न उसने कभी जी चुराया था। विपत्ति उन के लिये ऐसी थी जैसे हंस के लिये पानी। गत साढ़े ६ सालों से याने २६ सितम्बर १९२५ से वे फरार थे, गत १७ सितम्बर १९२८ याने सैंडर्स हत्याकांड के दिन से फांसी का फन्दा उनके लिये तैयार था, फिर तो न मालूम कितनी फांसियों और कालेपानियों के हकदार वे हो गये•••••••।

सन् १९३१ की २७ फरवरी की बात है। दिन के दस बजे थे। चन्द्रशेखर आज़ाद इलाहाबाद के चौक से कटरा जाने वाली सड़क पर सुखदेव राज के साथ घूम रहे थे कि रास्ते में वे एकाएक चौंक पड़े। बात यह है कि उन्होंने वीरभद्र तिवारी को देखा था। यह वीरभद्र तिवारी काकोरी षड्यन्त्र में गिरफ्तार हुआ था, किन्तु कुछ रहस्यजनक कारणों से छूट गया था। तभी से कुछ लोग उस पर सन्देह करते थे किन्तु वीरभद्र ऐसा तजर्बेकार तथा बात करने में चालाक था कि लोग उस की बातों में आ गये। यही नहीं वह दल का एक प्रमुख व्यक्ति हो गया। कहा जाता है बराबर दल में उसका यही रवैया रहा कि पुलिस से भी मिला रहता था और दल से भी। आजाद बहुत ही सीधे आदमी थे और वे उसके चकमें में बहुत ही जल्दी में आ जाते थे, किन्तु कई बार धोखा खा कर आजाद ने आखिरी फैसला उसको साथ न रखने का किया था। वीरभद्र भी जानता था कि वह इस प्रकार दल से

निकाल दिया गया है। इसीलिए इलाहाबाद में जब आजाद ने वीरभद्र को देखा तो वे चौकन्ने हो गए। फिर भी उनको ऐसा मालूम दिया कि वीरभद्र ने उनको नहीं देखा, किन्तु यह बात थी। वीरभद्र ने उन्हें देखा था और बहुत अच्छी तरह देखा था, तभी तो·········

आजाद और सुखदेव राज जाकर अल्फ्रेड पार्क में एक जगह बैठ गए। इतने में विशेसरसिंह और डालचन्द वहाँ आये। इनमें से डालचन्द आजाद को पहचानता था डालचन्द्र ने दूर से आजाद को देखा और लौट कर खुफिया पुलिस के सुपरिन्टेन्डेट नाट बावर को उसकी खबर दी। नाट बावर इस की खबर पाते ही तुरन्त मोटर द्वारा अल्फ्रेड पार्क पहुँचा; और आजाद जहाँ बैठे थे वहाँ से १० गज से फासले पर मोटर रोक दी और आजाद की ओर बढ़ा। दोनों तरफ से एक साथ गोली चली। नाट बावर की गोली आजाद की जाँघ में लगी, और आजाद की गोली नाट बावर की कलाई पर लगी जिस से उसकी पिस्तौल छूट कर गिर पड़ी। उधर और भी पुलिस वाले विशेष कर ठाकुर विशेसर सिंह आजाद पर गोली चला रहे थे। नाट बावर के हाथ से पिस्तौल छूट जाते ही वह एक पेड़ की ओट में छिप गया। आजाद भी रेंगकर एक पेड़ की आड़ में हो गए। आजाद के पास हमेशा काफी गोली रहती थी और इस अवसर पर उन्होंने उसका उपयोग खूब किया। आजाद के साथी पहले ही भाग निकले थे। आजाद आखिर कब तक लड़ते, किन्तु फिर भी उन्होंने विशेसर सिंह के जबड़े पर एक ऐसी गोली मारी जिससे वह जन्म भर के लिए बेकार हो गया और उसे समय के पहले ही पेन्शन लेनी पड़ी। नाट बावर जिस पेड़ की आड़ में थे आजाद मानों उसे पेड़ को छेद कर नाट बावर को मार डालना चाहते थे।

ऐसे ही लड़ते लड़ते यह महान् योद्धा एक समय गिर पड़ा और फिर हमेशा के लिए सो गया। जब आजाद मर चुके तब भी पुलिस को उनके पास जाने की हिम्मत न हुई, वे डरते थे कहीं वह मर कर भी न जिन्दा हो जाय और फिर गोली चला दे। जब आजाद का शरीर

बड़ी देर से निस्पन्द हो चुका तो वे उनकी ओर आगे बड़े, किन्तु फिर भी एक गोली पैर में मारकर निश्चय कर लिया कि वे सचमुच मर गये हैं। यह आजाद की आजादाना मृत्यु थी।

आजाद की लाश जनता को नहीं दी गई और जब लोगों ने भारतीय मनोवृत्ति के अनुसार उस पेड़ पर फूल-पत्ती चढ़ाना प्रारम्भ कर दिया, जिस पर आजाद ने मृत्यु के दिन निशाने बाजी की थी, तो ब्रिटिश साम्राज्यवाद ने उस पेड़ को कटवा कर उस स्थान को ही निश्चिन्ह कर दिया। मरने के बाद भी ब्रिटिश साम्राज्यवाद ने इस प्रकार अपनी प्रतिहिंसा की ज्वाला को शांत किया।

चटगांव शस्त्रागार-कांड तथा उसके बाद की घटनायें

भारतवर्ष के क्रांतिकारी इतिहास में चटगांव शस्त्रागार कांड एक विशेष महत्व रखता है। जब से क्रांतिकारी आंदोलन का उद्भव हुआ, तब से लेकर उसके मुरझा जाने तक अर्थात् अधिकतर फलोत्पादक (more fruitful) रास्ता अख्तियार करने तक इससे बड़े पैमाने पर कोई कार्य क्रांतिकारियों ने नहीं किया, न इतने क्रांतिकारी एक साथ कहीं शहीद हुए। यह कांड दिखलाता है भारतीय युवक किस हद तक जा सकते थे; सुन्दर योजना, साहस, त्याग जिस दृष्टि से भी देखें यह एक अत्यन्त क्रांतिकारी काम रहा। रहा यह कि असफल रहा, सो मैं समझता हूँ यह असफलता ही सफलता है।

१६३० के १२ मार्च को गांधी जी ने अपनी ऐतिहासिक डांडी-यात्रा शुरू की, और सत्याग्रह का तूफान देश में आया। वृटिश साम्राज्यवाद काँप उठा, जनता की इस शक्ति के सामने महात्मा जीके

बहुत दिन तक सरकार ने गिरफ्तार नहीं किया, किंतु गांधी जी ने मज-बूर कर दिया और अन्त में परेशान होकर उन्हें भी सरकार ने गिरफ्तार किया। उनके जानशीन अब्बास तैयब जी भी १२ अप्रैल को गिरफ्तार हो गये। सारे देश में पूरे जोर से सत्याग्रह आन्दोलन चल रहा था, ऐसे समय में १८ अप्रैल को यह काँड हुआ। इस दिन चटगाँव के करीब ७० नौजवानों ने मिलकर एक साथ पुलिस लाइन, टेलीफोन एक्सचेञ्ज, एफ० आई० हेडक्वाटर्स पर एक साथ आक्रमण कर दिया। ये चार टुकड़ियों में बँटे थे। यह कब्जा करने का काम ६ बज कर ४५ मिनट से १०½ बजे के अन्दर हुआ। सब से पहिले तो टेलीफोन और तार जो चटगांव से ढाका तथा कलकत्ता का सम्बन्ध जोड़ते थे काट लिये गये, और उनमें आग लगा दी गई। एक टुकड़ी जब यह काम कर रही थी तो दूसरी टुकड़ी ने रेल की कुछ लाइनें काट दीं। जो दल एफ० आई० हेडक्वाटर्स में गया था, उसने सर्जन मेजर, एक सन्तरी तथा एक सिपाही को वहीं का वहीं मार डाला। वहाँ पर जितनी भी राइफलें, पिस्तौलें आदि मिली उनको उन्होंने अपने कब्जे में कर लिया, और एक लेविसगन भी ले लिया। पुलिस लाइन वाली जो टुकड़ी थी वह सबसे बड़ी थी। उसने पुलिस लाइन के संतरी को मार डाला, मैगजीन लूट ली, और वहाँ आग लगा दी।

इन बातों की खबर पाकर जिला मैजिस्ट्रेट रात के बारह बजे आये, किन्तु क्रांतिकारियों ने उनका बुरा हाल किया, उनके संत्री तथा मोटर ड्राइवर को खतम कर दिया। इतने में साम्राज्यवाद हुशियार हो चुका था, उसकी सारी पाशविक शक्ति चटगाँव में केन्द्रीभूत हो रही थी, और गोरखे बुला लिये गये थे। चारों तरफ क्रांतिकारियों से इनकी भयङ्कर लड़ाई हो रही थी। सरकार ने केवल बन्दूक ही नहीं अब तोप से काम लेना आरम्भ किया। तब क्रांतिकारी शहर से भगकर पहाड़ की ओर गये।

जलालाबाद का युद्ध

जलालाबाद पहाड़ी पर अनन्तसिंह अपने दल के साथ डटे हुए थे कि सरकारी सेना उसको घेर कर उनको गिरफ्तार करने के लिये पहाड़ पर चढ़ने लगी। दोनों तरफ से गोलियाँ चलीं। क्रांतिकारियों के पास गोली बारूद काफी थे। घंटों डटकर मोर्चा लिया गया, इसमें ५० सिपाही मारे गये और सेना को पीछे हटने की आज्ञा दी गई। दूसरे दिन और अधिक सेना क्रांतिकारियों की इस टुकड़ी के विरुद्ध भेजी गई। स्मरण रहे ये क्रांतिकारी भूखों रह कर लड़ रहे थे। यह युद्ध बड़ा भयङ्कर हुआ। कहां ब्रिटिश साम्राज्य की सारी शक्तियाँ और कहाँ ये मुट्ठीभर नौजवान। इस युद्ध में १९ क्रांतिकारी गोलियों से मारे गये। इस युद्ध में जो मारे गये थे वे अधिकतर २० साल से कम उम्र-वाले युवक थे। सच्ची बात तो यह है कि बिशेन भट्टाचार्य के अतिरिक्त जितने थे। वे सब २० साल से कम उम्रवाले थे। १७ वर्ष वाले तो कई थे, जैसे मधुसूदन दत्त, नरेशराय। अर्द्धेन्दु दस्तीदार तथा प्रभास-नाथ बाल की उम्र तो सोलह की थी। इस लड़ाई के बाद क्रांतिकारी इधर उधर जिधर बना भाग निकले।

इन भागे हुए लोगों के साथ कई गोलीकांड हुए। २२ अप्रैल को चार क्रांतिकारी रेल से जा रहे थे। पुलिस ने इनको गिरफ्तार करना चाहा, इस पर गोली चली और सब इंस्पेक्टर तथा दो कानेस्टेबल मारे गये। २४ अप्रैल को एक नवयुवक विकास दस्तीदार को पुलिस ने गिरफ्तार करना चाहा। उसने देखा कि घेर लिया गया है बजाय इससे कि पुलिस के हाथ पड़े आत्महत्या कर लेना ही उचित समझा। पुलिस को पता चला कि फ्रेंच चन्दननगर में कुछ चटगाँव के भागे हुए क्रांतिकारी हैं। बस कलकत्ता की पुलिस वहाँ पहुँची और उस मकान को घेर लिया जहाँ ये छिपे थे। दोनों तरफ से गोलियाँ चलीं। ३ क्रांतिकारी पकड़े गये और एक शहीद हुआ। इन

गिरफ्तार व्यक्तियों में गणेश घोष भी थे। चटगाँव कांड में प्रमुख्यता में अनन्त सिंह तथा लोकनाथ बल के बाद इन्हीं का नम्बर था। गणेश घोष के साथ लोकनाथ बल तथा आनन्द गुप्त गिरफ्तार हो गये, जो शहीद हुए। वे बड़े अजीब तरीके से हुए, वे घायल होकर तालाब में गिरे और डूब गये। मकान मालिक तथा जितनी भी स्त्रियाँ थीं वे गिरफ्तार कर ली गईं।

चटगाँव शस्त्रागार-कांड-मुकद्दमा

३ महीने लगातार गिरफ़्तारियों के बाद पुलिस ने बत्तीस आदमी गिरफ़्तार किये। अनन्त सिंह को पुलिस न पकड़ पाई थी किन्तु कुछ गलतफ़हमी पैदा हो रही थी इसलिए उन्होंने स्वयं पुलिस को आत्म-समर्पण कर दिया। वे, गणेश घोष, हेमेन्द्र दस्तीदार, सरोजकान्ति गुह, अम्बिकाचरण चक्रवर्ती इस षड्यन्त्र के नेता माने गये। मुकदमा २४ जुलाई को स्पेशल ट्रिब्युनल के सामने पेश हुआ। मुकद्दमे का फैसला १ मार्च १६३२ को हुआ, इसमें निम्नलिखित व्यक्तियों को कालेपानी की सजा हुई।

(१) अनन्त सिंह	(२) गणेश घोष
(३) लोकनाथ बल	(४) सुखेन्दु दस्तीदार
(५) लाल मोहन सेन	(६) आनन्द गुप्त
(७) फणीन्द्र नन्दी	(८) सुबोध चौधुरी
(६) सहायराम दास	(१०) फकीर सेन
(११) सुबोध राय	(१२) रणधीर दास गुप्त

नन्दासिंह को दो साल की सजा तथा अनिल दास गुप्ता को ३ साल बोर्स्टल की सजा हुई। बाकी सोलह व्यक्ति छोड़ दिये गये, किन्तु सरकार ने तुरन्त उन्हें बङ्गाल आर्डिनेन्स में गिरफ़्तार कर लिया।

झाँसी बमकांड

८ अगत १६३० को झाँसी के कमिश्नर को बम से उड़ाने की चेष्टा के लिए एक युवक श्री लक्ष्मीकान्त शुक्ल उनके बँगले के अन्दर गिर॰

फ्तार कर लिए गये। कहा जाता है कि कमिश्नर मि० फ्लावर्स ने कुछ सत्याग्रही महिलाओं के साथ अभद्रता का व्यवहार किया था जिससे उत्तेजित होकर शुक्ला जी ने ऐसा किया था। किन्तु मालूम होता है उन्हीं के दल के किसी आदमी ने विश्वासघात किया, जिससे वे इस प्रकार रंगे हाथों बँगले के अन्दर बम और तमंचे सहित गिरफ्तार हो गये। श्रीयुत शुक्ला से सेनापति आजाद का परिचय था, किन्तु यह प्रयत्न शायद उनके आदेश पर नहीं किया गया था, बल्कि श्री शुक्ला का अपना मौलिक ख्याल था। श्री लक्ष्मीकांत को आजन्म कालेपानी की सजा हुई, और उनकी स्त्री श्रीमती वसुमती शुक्ला स्वेच्छा से पति के साथ अन्डमन चली गई।

बिहार के कार्य तथा योगेन्द्र शुक्ल

योगेन्द्र शुक्ला नामक एक युवक काशी गाँधी आश्रम में शुरू से ही थे, असहयोग आन्दोलन में वे जेल गए थे। उसके बाद उनसे आजाद और मन्मथनाथ गुप्त के साथ परिचय हुआ तथा वे क्रांतिकारी दल में आ गये। काकोरी वालों की गिरफ्तारी के पश्चात् ये सूक्ष्म रूप से बिहार में काम करते रहे, जब लाहौर षड्यन्त्र के फरारों के लिये धन की आवश्यकता हुई, तो ७ जून १६२६ को जिला चम्पारन के मौलनिया गांव में एक डकैती डाली गई। यहाँ एक आदमी जान से मारा गया। इस सम्बन्ध में गिरफ्तारियां हुई जिसमें फणीन्द्र मुखबिर हो गया। यह फणीन्द्र घोष वही था जिससे मणीन्द्र नाथ बैनरजी बेतिया में मिला करते थे। योगेन्द्र शुक्ल पहले फरार रहे, फिर अंत में ११ जून १६३० को गिरफ्तार कर लिये गये। गिरफ्तारी के समय आपके साथ तीन पिस्तौलें मिली थीं। इन्हें २२ साल की सजा हुई। इसी प्रकार इस साल बिहार में कई बम कांड हुए तथा छोटी मोटी डकैतियां डाली गई

पंजाब की सरगर्मियां

लाहौर षड्यन्त्रों के बाद भी पंजाब में कुछ न कुछ क्रांतिकारी

कार्य होते रहे। यत्र तत्र तलाशी में बम आदि बरामद हुए, और उसके सम्बन्ध में इधर उधर कुछ लोग गिरफ्तार भी होते रहे। सितम्बर १९३० में अमृतसर में एक षड्यन्त्र चला जिसमें पाँच अभियुक्त थे, तीन को नेक चलनी लेकर छोड़ दिया गया, और दो को सजा हुई। ४ नवम्बर को लाहौर शहर और छावनी के बीच में दो क्रान्तिकारियों और पुलिस के बीच गोलियाँ चलीं जिसमें बिशेषरनाथ मारे गये। इस सम्बन्ध में टहलसिंह को ७ वर्ष की सजा हुई। इसी तरह एक मुकदमा दशहरे पर बम डालने का चला, जिसके संबन्ध में कुछ मुसलमान गिरफ्तार हुए, किन्तु यह मामला साम्प्रदायिक नहीं था। असल में बात यह थी कि कुछ मुसलमान लड़कों को क्रान्तिारियों के कार्य तथा बातों को सुनकर जोश आ गया, और उन लोगों ने दो चार बम लिये। यही बम फट गए। बाद को जब पुलिस ने बड़ी सरगर्मी से गिरफ्तारियाँ कीं तो ये नवयुवक गिरफ्तार हो गये। इनके सम्बन्धियों ने समझा बुझा कर सारा मामला सुलझा लिया।

पञ्जाब के लाट पर हमला

इस प्रकार एक जीराबम मामला चला। ऐसे ही छोटे-मोटे मामले हुए जिसका वर्णन करना न सम्भव है न वाञ्छनीय ही। २३ दिसम्बर १९३० को फिर एक बार सारे भारत की दृष्टि पंजाब की ओर गई, क्योंकि उस दिन जिस समय लाहौर यूनिवर्सिटी हाल में पंजाब के गवर्नर दीक्षान्त भाषण कर के लौट रहे थे उन पर हरिकिशन नामक युवक ने गोली चला दी और उन्हें जख्मी बना दिया। हरकिशन मर्दान का रहने वाला था और चमनलाल नामक युवक के जरिये उसका सम्बंध पंजाब क्रांतिकारी पार्टी से हो गया था। इस गोली कांड में इंस्पेक्टर बुद्धि सिंह के हाथ में भी एक गोली लगी थी। एक गोली इन्स्पेक्टर चनन सिंह के मुँह पर लगी जो जाकर जबड़े में रुक गई इसके अतिरिक्त कई और व्यक्तियों को छोटी-मोटी चोटे लगीं। चनन सिंह शाम तक मर गया।

इस मामले के सम्बंध में पुलिस ने एक पूरा षडयंत्र ही चला दिया किंतु हरकिशन का मुकदमा अलग चला। हरकिशन ने गवर्नर के मारने की बात को बहादुरी से स्वीकार करते हुए एक बयान दिया। अदालत ने उसे फाँसी की सजा दी, और ६ जून १६३१ को उसे फाँसी दे दी गई।

इस सम्बंध में जो षड़यंत्र चला उसके सम्बंध में सेशन जज ने तीन व्यक्तियों को फाँसी की सजा दी जो बाद को हाईकोर्ट द्वारा छोड़ दिये गये।

लैन्गिटन रोड कांड

६ अक्टूबर १६३१ की रात को कुछ क्रांतिकारियों ने बम्बई शहर के लैन्गिटन रोड थाने में मोटर से उतरते हुये सार्जन टेलर और उनकी बीबी को घायल कर दिया। उन्होंने इसके बाद भी कई पुलिस अफसरों पर रास्ते में गोली चलाई। कहा जाता है कि इस गोली कांड में श्रीमती दुर्गादेवी उर्फ भाभी ने अपने हाथ से सार्जन टेलर पर गोली चलाई थी, किंतु अंत तक कोई मुकदमा न चला, सका इसलिये कुछ ठीक-ठीक कहना मुश्किल है।

असनुल्ला हत्याकांड

चटगाँव शस्त्रागार कांड के बाद से चटगाँव में भीषण दमन हो रहा था। भद्रश्रेणी के युवकों को यह हुक्म था कि सूर्य के अस्त होने के साथ ही साथ वे अपने घरों में दाखिल हो जांय, और तब तक बाहर न निकले जब तक कि सूर्य न निकले। सरकार ने विशेष सशस्त्र पुलिस भी वहाँ पर रखी। यह सब बातें केवल शहर में ही नहीं बल्कि गाँव में भी होता रहा। ३० अगस्त १६३० को पुलिस इन्स्पेक्टर खान बहादुर असनुल्लाह फुटबाल मैच देखने गये थे; खेल समाप्त होने पर जब खुशी-खुशी लौट रहे थे उस समय एक सोलह वर्षीय युवक ने उन पर कई गोलियां चलाईं, जिसमें से एक उनके सीने में जा बैठी जिससे

उनकी मृत्यु हुई। खान बहादुर पर यह अभियोग था कि उन्होंने ही चटगाँव शस्त्रागार कांड को इतना बढ़ाया है। जिस युवक ने उन पर गोली चलाई थी उसका नाम हरिपद भट्टाचार्य था। हरिपद भट्टाचार्य पर जेल में बहुत अत्याचार किये गये। इन्हें आजन्म काले पानी की सजा हुई थी।

मछुवा बाज़ार बम केस

१४ जून १९३० को मछुवा बाजार बम केस चला जिसमें १७ अभियुक्तों को सजा हुई। डाक्टर नरायन बैनरजी इस षड्यन्त्र के नेता माने गये और उनको १० साल कालेपानी की सजा हुई।

मिस्टर टेगर्ट पर फिर हमला

गोपी मोहन साहा के बाद २५ अगस्त १९३० के दोपहर के समय मि० टेगर्ट के दफ्तर जाते समय उनकी गाड़ी पर दो बम गिराये गये। इस को करने वाले अनुज सिंह गुप्ता और दिनेश मजूमदार दो युवक थे। इनमें से अनुज उसी स्थान पर गोली से मार डाला गया। दिनेश मजूमदार को आजन्म कालेपानी की सजा हुई; बाद को वह जेल से गायब हो गया, और फिर हत्या करने की कोशिश की जिसमें उनको फाँसी की सजा हुई।

ढाका में इन्स्पेक्टर जनरल मि० लोमैन की हत्या

मिस्टर लोमैन ने क्रान्तिकारियों के दमन में या यों कहना चाहिये उन पर गैरकानूनी जुल्म तथा जल्लादी करने में अपनी सारी उम्र बिताई थी, १९१६ में जोगेश चटर्जी आदि कितने ही क्रान्तिकारियों को इन्होंने सताया था। १९३० में ये बङ्गाल पुलिस के इंस्पेक्टर जेनरल थे। तारीख २९ अगस्त को ढाका के मिटफोर्ड अस्पताल का निरीक्षण करने के बाद वे मिस्टर हडसन पुलिस सुपरिन्टेंडेंट के साथ निकल रहे थे कि विनय कृष्ण बोस नामक युवक ने एकाएक उन पर गोली चला दी। मिस्टर लोमैन को तीन गोलियाँ लगीं, और मिस्टर

हडसन*को दो। मिस्टर लोमैन दो दिन बाद मर गये, किंतु मिस्टर हडसन नहीं मरे। युवक के पास, मालूम होता है, दो तमंचा थे, क्योंकि जब उसका पीछा किया गया तो उसके हाथ तमंचा गिर पड़ा, फिर भी वह गोली चलाता हुआ निकल गया। क्रांतिकारियों के द्वारा किये हुए आतङ्कवादी कामों में यह काम अत्यन्त साहसपूर्ण था, जिस जमाने में यह काम हुआ था, उस समय एकबार ब्रिटिश साम्राज्यवाद के पिट्ठुओं की रूह फना हो गई थी, क्योंकि यदि एक प्रांत के पुलिस के सबसे बड़े अफसर का प्राण सुरक्षित नहीं है तो किसका है। जनता में भी यह खबर फैल गई थी। और उसकी चेतना पर इसका काफी बड़ा असर हुआ था। जो सरकार स्वयं आतङ्कवाद पर अवस्थित है। वह आतङ्कवाद का एकाधिकार चाहेगी इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं थी। किंतु क्रांतिकारी ऐसे छिटपुट हमला करके ही नहीं रुके।

धड़ाका तथा हत्या की चेष्टायें

मैमनसिंह में ३० अगस्त को ही इंस्पेक्टर पवित्र बोस के घर पर बम का धड़ाका हुआ। पवित्र बोस उस दिन घर पर नहीं थे, किन्तु उनके दो भाइयों को चोट आ गई। उसी दिन एक पुलिस इंस्पेक्टर तेजेशचन्द्र गुप्त के घर पर भी बम फेंका गया, किंतु उससे कुछ हानि नहीं हुई। इस सम्बन्ध में शोभारानी दत्त नामक लड़की गिरफ्तार की गई। इस बीच में क्रांतिकारी दल को धन दिलाने के निमित्त कई डाके भी यत्रतत्र डाले गये, जिनको वर्णन करने की आवश्यकता नहीं है। यह नहीं कि हर मौके पर क्रांतिकारी सफल रहे, बल्कि कई जगह पुलिस ने बम बरामद किये, और गिरफ्तारियाँ की गईं। १ दिसम्बर को तारिणी मुकुर्जी नामक एक पुलिस इंस्पेक्टर रेल से जा रहा था, उसी गाड़ी से नये इंस्पेक्टर जेनरल मिस्टर टी० जी० ए० क्रेग जा रहे थे। दो युवक एकाएक निकले, और तारिणी मुकर्जी को गोली से मार दिया, और भाग निकले। इस सम्बन्ध में रामकृष्ण विश्वास तथा काली पदो चक्रवर्ती नामक दो युवक चाँदपुर में गिरफ्तार हुए। बाद को इन पर

मुकदमा चला, और एक को फाँसी तथा दूसरे को कालेपानी का सजा हुई। ४ अगस्त १६३१ को रामकृष्ण विश्वास को फाँसी दी गई।

जेल के इन्स्पेक्टर जनरल की हत्या

बङ्गाल के क्रांतिकारियों ने मानो इस समय आतंक फैलाना बड़े जोर से ठान लिया था। २६ अगस्त को पुलिस के इंस्पेक्टर जनरल की हत्या की गई थी, ८ दिसम्बर '१६३० को कलकत्ते की राइटर्स विल्डिङ्ग में कई एक युवक घुस गए। उस समय पुलिस के इंस्पेक्टर जनरल अपने दफ्तर में बैठकर काम कर रहे थे, इतने में वे चपरासी को ढकेल कर दफ्तर में घुस गए। यह तीनों बंगाली युवक गोरों की पोशाक में थे। ज्योंही वे घुसे त्योंही मिस्टर सिमशन एकाएक इन युवकों को देखकर पीछे हटे किन्तु तीनों ने उस पर एक साथ गोली चलाई। सब समेत ६ गोलियाँ उनको लगी, और वे वहीं के वहीं ढेर हो गये। रास्ते में जो भी गोरा अफसर मिलता गया, उन्होंने उसी पर गोली चलाई। जिस मकान में उन्होंने ये वार-दातें की थीं, वह मकान ब्रिटिश साम्राज्य का सबसे सुरक्षित मकान समझा जाता था, और पुलिस तथा फौज से टेलीफोन के जरिये से इसके बीसियों सम्बन्ध थे। उन्होंने जुडीशियल सेक्रेटरी मिस्टर नेलसन पर गोलियाँ चलाई किन्तु किसी भी हालत में उन्होंने किसी चपरासी पर गोली नहीं चलाई।

जब उन्होंने इतने काम कर लिए तो इसी बीच में पुलिस ने सारे मकान को घेर लिया था, और अब उनमें से भाग निकलना असंभव था, इसलिए उन्होंने आत्महत्या करने की कोशिश की। इस कोशिश में यह तीनों युवक पकड़ लिए गये। सुधीरकुमार गुप्त आत्महत्या करने में सफल रहा, और वह वहीं मर गया, दो अन्य युवक अस्पताल ले जाये गये, इनमें से बिनयकृष्ण बोस १३ दिसम्बर को अस्पताल में में मर गया। उसने मरने के पहिले पुलिस से यह कह दिया कि उसी ने अगस्त के महीने में पुलिस के इन्स्पेक्टर जनरल मिस्टर लोमैन की हत्या

की थी, इसलिए उसे कोई भी अफसोस नहीं है कि वह मर रहा है। जिस दिन वे मरे उस दिन यह खबर कलकत्ते में बिजली की तरह फैल गई, और हजारों आदमी उसके अंतिम दर्शन करने के लिए नीमतल्ला घाट पर आये। इस प्रकार इस कृत्य को करने वाले दो युवकों से साम्राज्यवाद कोई बदला न ले सका। किन्तु दिनेश गुप्त नामक तीसरे अभियुक्त को सरकार के डाक्टरों ने फाँसी देने के लिए अच्छा किया। जब वह अच्छा हो गया तो उस पर मुकद्दमा चलाया गया और ८ जुलाई १६३१ को फाँसी दी गई। इस सम्बन्ध में बङ्गाल में कितनी ही गिरफ्तारियाँ हुईं, और जिन पर भी शक हुआ उनको नजरबन्द कर लिया गया।

बङ्गाल सरकार की निजी रिपोर्ट के अनुसार १६३० में १० सफल हत्यायें हुईं। किन्तु उसी रिपोर्ट में यह लिखा है कि सरकार ने ५१ क्रान्तिकारियों को फाँसी दी। यदि हम मान भी लें कि एक क्रान्तिकारी की जान सरकार के एक भाड़े के आदमी की जान के बराबर है तो भी सरकार की इस दमन-नीति की भयानकता तथा खूँख्वारपन मालूम हो जायगा।

इस युग में मुख्यतः बङ्गाल में ही क्रान्तिकारी कार्य हुए, किन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि संयुक्तप्रान्त में कुछ भी नहीं हुआ। २ जनवरी १६३१ को ४½ बजे सायंकाल कानपुर के अशोककुमार नामक एक नवयुवक ने टीकाराम इन्स्पेक्टर पर गोली चलाई, किन्तु वह मरे नहीं। बाद को अशोककुमार को ७ साल की सजा हुई। इसी तरह और भी कई छोटे मोटे षड्यन्त्र संयुक्त प्रांत में हुए किन्तु इसमें कोई खास बात नहीं थी।

१६३१ में पंजाब

१६३१ में हम देखते हैं कि पंजाब प्रांत में भी काम करीब करीब ठण्डा पड़ गया। यों तो तृतीय लाहौर षड्यन्त्र के नाम से मुकद्दमा चला और उसमें कई एक व्यक्ति को सजायें भी हुईं। सच्ची बात तो

है कि इस समय क्रान्तिकारी आन्दोलन अपने अन्दर से कोई नेता
नहीं पैदा कर सका, तथा जिन कारणों से यह आन्दोलन उठ खड़ा
हुआ था वे भी शिथिल हो गये थे।

१९३१ में बिहार

१९३१ में बिहार में पटना षड्यन्त्र नाम से एक षड्यन्त्र चलाया
गया, इसमें यह भेद खुला कि बिहार के काम का सम्बंध चन्द्रशेखर आजाद
से था। इस लोगों ने बम्ब भी बनाये, तथा अंग्रेजों को गिर्जाघरों में मार
डालने की एक योजना बनाई, किंतु वह कार्यरूप में परिणत न की
गई। बात यह है कि जिस दिन ये लोग गिर्जाघर पर हमला करने गये,
उन्होंने देखा कि पुलिस पहिले ही से तैनात है, इस लिये लौट आये।
इनका संदेह रामलखित नामक एक व्यक्ति पर गया, इसको इन लोगों
ने खतम कर दिया। पुलिस ने इस पर तहकीकात करते करते एक
मकान को घेरा, उसमें सूरजनाथ चौबे और हजारीलाल थे। यह मकान
बम का कारखाना था। पुलिस वालों पर बम चला, एक सब इन्सपेक्टर
मारा गया, किंतु दोनों गिरफ्तार कर लिये गये। हजारीलाल को काले
पानी तथा चौबे को १० साल की सजा हुई। हजारीलाल पहिले तो
बड़े अकड़े किंतु सजा के बाद मुखबिर बन गये। फलस्वरूप बहुत से
लोग गिरफ्तार किये गये, और ११ व्यक्ति पर मुकद्दमा चला। सूरज
नाथ चौबे इस मुकद्दमे में फिर घसीटे गये, और उन्हें आजन्म काले
पानी की सजा हुई। कन्हईलाल मिश्र तथा श्यामकृष्ण को भी यही
सजा मिली। फणीन्द्र घोष भी इसमें मुखबिर था।

मोतीहारी षड्यन्त्र इत्यादि

फणीन्द्र घोष ने एक और षड्यन्त्र चलवाया जिसका नाम मोती-
हारी षड्यन्त्र था। इसमें भी कुछ लोग सजा पा गये। एक और
षड्यन्त्र भी चला। हाजीपुर ट्रेन डकैती नाम से एक मुकद्दमा
चला जिसमें यह अभियोग था कि हाजीपुर का स्टेशन-मास्टर १८ जून

१९३१ को डाक के थैले स्टेशन पर खड़ी हुई गाड़ी में रखने के लिये जा रहा था कि कुछ हथियारबन्द लोगों ने उस पर हमला कर दिया, और गोली चलाकर भाग गये।

इसके अतिरिक्त कई जगह बम फटे। १ अगस्त १९३१ को पटने में एक बम अचानक फटा, जिससे रामबाबू नामक एक व्यक्ति सख्त घायल हुआ। बाद को उनका बायां हाथ काटना पड़ा।

बम्बई में गवर्नर पर गोली

बम्बई में इस साल दो मुख्य घटनायें हुईं। यों तो कई बम विस्फोट वगैरह हुए। २२ जुलाई को बम्बई के स्थानापन्न गवर्नर सर अर्नेस्ट हाटसन् पूना के प्रसिद्ध फर्गुसन कालेज की लाइब्रेरी में जा रहे थे कि वासुदेव बलवन्त गोगारे नामक एक मराठी छात्र ने उन पर गोली चलाई। उसने दो गोलियां ही चला पाई थीं कि वह बेकाबू कर दिया। गवर्नर बाल बाल बचे, एक गोली उनके सीने पर लगी किन्तु नोटबुक के धातु के बटन में लग कर वह व्यर्थ हो गई। गोगारे को आठ वर्ष जेल की सजा दी गई।

हेक्स्ट हत्या कांड

२३ जुलाई को दो फौजी अफसर जी० आर० हेक्स्ट तथा इ० एम० शोहिर्न रेल से सफर कर रहे थे। दो व्यक्ति डब्बे में घुस गये और उनपर एकदम आक्रमण कर दिया। उन लोगों ने अफसरों के कुत्ते को जानसे मार डाला और दोनों अफसरों पर भयंकर आक्रमण कर दिया। ये दोनों हमला करने वाले कूद कर लापता हो गये, किन्तु हेक्स्ट कुछ घंटों बाद मर गया। इस सम्बन्ध में बाद को यशवंत सिंह और दलपतराय दो नौजवान गिरफ्तार हुये, दोनों को काले पानी की सजा हुई।

———

बङ्गाल में आतङ्कवाद का उग्र रूप

बङ्गाल में चटगाँव के बाद से आतङ्कवाद जोरों पर हो गया था। जिस समय काकोरी वालों का तथा भगतसिंह, यतीनदास आदि का नाम हो रहा था, और सारा भारतवर्ष उनके नाम से गूँज रहा था, उस समय बङ्गाल करीब-करीब शान्त था। लोग कहते थे कि बङ्गाली क्रांतिकारियों का विश्वास अब इन सब बातों पर से उठ गया है, किन्तु नहीं, अभी यह बात गलत थी। असल में यह आँधी आने के पहिले की चुप्पी थी। उत्तर भारत में काकोरी वाले तो एक भी राजनैतिक हत्या नहीं कर पाये, भगतसिंह का दल भी एक सैंडर्स को ही मार कर खतम हो गया। उसके बाद वायसराय तथा पञ्जाब के गवर्नर पर हमले हुए, किन्तु वे सफल न हो सके। किन्तु बङ्गाल ने जब से आतङ्कवाद का बीड़ा उठाया, तब से तो एक अजस्र धारा में ये काम एक के बाद एक होते गये। यह मानना ही पड़ेगा कि राइटर्स बिल्डिङ्ग में घुस कर जो कर्नल सिमसन की हत्या की गई, वह सैंडर्स हत्या से कहीं अधिक असमसाहसिक थी, तथा उसके करने वालों की बहादुरी का द्योतक है। चटगाँव शस्त्रागार कांड एक ऐसा कांड था जिसके जोड़ की चीज आयर्लैन्ड के इतिहास में से है, किन्तु भारत के इतिहास में नहीं है। इतने क्रांतिकारियों को एक साथ लगा सकना यह चटगाँव के क्रांतिकारी दल की सामर्थ्य सूचित करता है। यदि मैं यह कहूँ कि सेनापति आजाद इतने आदमियों को एक साथ एक जिले से अस्त्रशस्त्रों सहित लैस जमा नहीं कर सकते थे तो मैं सत्य से कुछ अधिक दूर नहीं हूँगा। बङ्गाल में क्रांतिकारी आन्दोलन शहरों तक ही सीमावद्ध न रह कर गांवों की मध्यम श्रेणी के नौजवानों में फैल गया था। तभी सरकार के सर्वग्राही आर्डिनेन्सों, अत्याचारों तथा नियन्त्रणों के होते हुए भी बङ्गाल में क्रांतिकारी आन्दोलन दबाया नहीं जा सका, क्रांतिकारियों का

[illegible] में सरकार ने जो अत्याचार किये हैं उनको सुनकर रोंगटे खड़े हो जाते हैं। क्रांतिकारी लड़कों के सामने माँ को नंगी करके उसको बलात्कार की धमकी दी गई, क्रांतिकारियों के घर भर, यहां तक कि मुहल्लों वालों को बुरी तरह पीटा गया, कई अभियुक्तों को जेल में मारते-मारते मार डाला गया, सूर्यास्त और सूर्योदय के बीच कोई भी नौजवान घर से बाहर नहीं निकल सकता था, दिन में भी नौजवानों के साथ सनाख्ति के कार्ड होना जरूरी था। यह सब अत्याचार सारे हिन्दुस्तान के सामने हुआ, किन्तु गान्धी जी के चलाये हुए हिंसा अहिंसा के भयंकर भूत के कारण कांग्रेस ने इसको उतने जोर से नहीं उठाया जितने जोर से यह उठाये जाने योग्य था। बङ्गाल को यानी क्रांतिकारी बङ्गाल को इन सब विपत्तियों को अपने आप ही झेलना पड़ा, इस हालत में यदि बङ्गाली प्रान्तीयतावादी हो गये, तो कोई आश्चर्य की बात नहीं। इस विषय की ओर मैं पहिले भी दृष्टि आकर्षित कर चुका हूँ।

घटनाओं पर जाने के पहिले मैं इस बात की ओर पाठकों की दृष्टि आकर्षित करना चाहता हूँ कि इस प्रकार गांधीवाद ने क्रांतिकारी आन्दोलन को दबाने में साम्राज्यवाद का साथ दिया, यानी ऐसा वातावरण पैदा कर दिया जिसमें सरकार अधिकतर आसानी से इनका दमन कर सके, और अखिल भारतीय जनमत इस दमन के प्रति उदासीन रहे। गाँधीजी की भारतीय राजनीति में आने के बाद से जब-जब राजनैतिक कैदियों को छोड़ने का प्रश्न आया, तब-तब मूर्खतापूर्ण तरीके से हिंसात्मक कैदी और अहिंसात्मक कैदी में पार्थक्य का सवाल आया। ब्रिटिश साम्राज्यवाद ने, जो कि स्वयं निरी हिंसा और आतंकवाद पर प्रतिष्ठित है, इस वातावरण से फायदा उठाया, इस बात को देखकर हँसी आती है। भविष्य का इतिहासकार महात्मा गांधी तथा उनके अनुयायियों को राजनैतिक कैदियों तक में इस प्रभेद को ले जाने के लिये कभी कभी क्षमा न करेगा, इस कृत्य की जितनी

[illegible] विरोध [illegible]। [illegible] कांग्रेस सरकारों ने क्रांति-कारी कैदियों को छोड़ा, [illegible] के लिये, [illegible] प्रांतों में मन्त्रिमंडल ने इस्तीफा भी दे दिया, किंतु यह स्मरण रहे, ऐसा उन्होंने खुशी से [illegible] किया। एक तो वे कानून के [illegible] हुए [illegible] के अनुसार [illegible] थे, दूसरे [illegible] के कैदियों ने बारम्बार भीषण अनशन करके जनमत को इस सम्बन्ध में इतना सचेत कर दिया था कि कांग्रेस सरकारों के लिये इसके अतिरिक्त कुछ करना असम्भव था। फिर जो एकाएक मंत्रिमंडल ने इस्तीफे दिये थे, उसमें केवल राजनैतिक कैदियों को छुड़ाना ही उद्देश्य नहीं था, बल्कि उनका प्रधान उद्देश्य तो हरिपुरा में वामपंथियों को एक अजीब परिस्थिति में डालना (Tight corner) था। अस्तु।

अब मैं घटनाओं पर आता हूँ। १६ मार्च १९३१ को चटगाँव में पुलिस इंस्पेक्टर शशांक भट्टाचार्य को बरामा नामक गाँव में पेट में गोली मार दी गई। इसी तरह कई एक जगह पर डकैतियाँ डाली गई।

मिदनापुर में पहिले मजिस्ट्रेट स्वाहा

७ अप्रैल १९३१ को मिदनापुर के ज़िला मैजिस्ट्रेट जेम्सपेडी शिकार से वापस आकर नुमायश में गये तो नुमायशगाह में उन पर किसी ने गोलियाँ चला दीं, तीन गोलियाँ उनके शरीर पर लगी। वहाँ से वे उठाकर अस्पताल भेजे गये, किन्तु आपरेशन करने पर भी ८ अप्रैल को वे मर गये। इस सम्बन्ध में पुलिस ने सन्देहवश एक दर्जन से ऊपर व्यक्तियों को गिरफ्तार किया, किन्तु कोई भी मुखबिर न बना इसलिये सारा मुकद्दमा छूट गया। इनके अतिरिक्त मिदनापुर के दो और मैजिस्ट्रेट मारे गये, जिसका वर्णन बाद को आयेगा।

गार्लिक हत्याकांड

मिस्टर गार्लिक चौबीस परगना के डिस्ट्रिक्ट और सेशन जज थे, वे अपनी अदालत में बैठे हुये थे कि २७ जुलाई को दोपहर दो बजे विमलदास

गुप्त नामक एक युवक द्वारा वे गोली से मार दिये गये। विमल भाग नहीं पाया, उसको वहीं गोली से मार दिया गया, यह विमल वही व्यक्ति था जिसने मिस्टर पेडी की हत्या की थी। इस हत्याकांड से कलकत्ते के अंग्रेज बहुत ही नाराज हुए। असली बात तो यह है वे भयभीत हुए और उन्होंने सरकार को भयङ्कर रूप से दमन करने के लिये कहा।

मिस्टर कैसल्स पर गोली

ढाका में पुलिस के इंस्पेक्टर जेनरल मिस्टर लोमैन की हत्या की गई, इसका तो वर्णन पहिले ही हो चुका है। अगस्त १९३१ में मिस्टर अलेक्जन्डर कैसल्स ढाका के कमिश्नर थे, ये ढाका के कोआपरेटिव बैंक का निरीक्षण करने जा रहे थे कि उनपर एक नौजवान ने गोली चलाई। गोली उनके जाँघ में लगी। आक्रमणकारी भाग गये।

हिजली में नज़रबन्दों पर गोली

हिजली में कोई आठ सौ नजरबन्द बन्द थे जो बिना अदालत के सामने गये वहाँ बन्द रक्खे गये थे। एक दिन सारे हिन्दुस्तान ने अवाक होकर सुना कि हिजली के निहत्थे नजरबन्दों पर एकाएक सरकार ने गोलियाँ चलाईं, और इसमें सन्तोष कुमार मित्र और तारकेश्वर सेन मर गये, और अठारह बुरी तरह घायल हुए। सरकार ने एक विज्ञप्ति निकालकर कहा कि नजरबन्दों के एक दल ने संगठित रूप में सन्तरियों पर हमला किया, जिससे सिपाहियों ने आत्मरक्षा में गोली चलाई। जनता खूब समझती थी यह बहाना है, असल में यह सरकारी आतङ्कवाद है। इसलिए जे० एम० सेन गुप्त तथा सुभाष बोस फौरन इसकी जाँच को रवाना हुए, किन्तु उन्हें नजरबन्दों से मिलने नहीं दिया गया। वे बाहर के अस्पताल में जो घायल थे उनसे मिले, और समझ गये कि यह विज्ञप्ति झूठी है। तदनुसार उन्होंने अखबारों को बयान देते हुए कहा कि जो खबर इस सम्बन्ध में छपाई गई है, वह सर्वथा ग़लत है। सरकार ने इस सम्बन्ध में पहिले तो कोई जाँच कराने से

इनकार किया, और कहा कि कलक्टर की जाँच ही काफी है, इस पर १७५ नजरबन्दों ने अनशन कर दिया। इस पर जनमत और भी जोर पकड़ गया। जाँच कमेटी बनाने के अश्वासन पर बाद में अनशन टूटा।

६ अक्टोबर १६३१ को हिजली के मामिले की जाँच शुरू हुई। इस जाँच कमेटी ने यह रिपोर्ट दी कि संतरी नं० ३ ने किसी बात पर खतरा समझकर खतरे की घंटी बजा दी। इस पर हवलदार रहमान बख्श के हुक्म से गारद भीतर घुस गई, और जो नजरबन्द वहाँ घूम रहे थे उनको मार कर हटा दिया। इस पर संतरियों में और नजरबन्दों में कहासुनी हो गई, और संतरियों ने गोली चला दी। यह कितना बड़ा अन्याय था। इसमें सन्देह नहीं, सरकार ने यह सारा काम बदला चुकाने के लिए किया था। यदि मान लिया जाय कि हवलदार रहमान बख्श की गलती या नालायकी से यह गोलीकांड हुआ, तो रहमान बख्श पर बाद में मुकदमा चला कर फाँसी क्यों नहीं दी गई। रहमान बख्श को फाँसी न देना जाहिर करता है कि यह भी जलियाना वाले बाग की तरह साम्राज्यवाद की ओर से किया गया आतंकवादी कार्य था।

मैजिस्ट्रेट डूर्नो पर गोली

२८ अक्टोबर १६३१ को ढाका के मैजिस्ट्रेट मिस्टर एल० जी० डूर्नो अपने दफ्तर से लौट रहे थे कि दो युवकों ने उन पर गोली चला दी, जिनमें से एक उनकी कनपटी पर तथा दूसरी चेहरे पर लगी। आक्रमणकारी भाग निकले। आप हवाई जहाज द्वारा कलकत्ता पहुँच गये, आपकी एक आँख निकाल डालनी पड़ी, और दूसरी गोली जबड़ा काट कर निकाली गई।

यूरोपियन असोसिएशन के प्रधान पर गोली

बहुत दिनों से यूरोपियन असोसिएशन वाले हरेक सभा में क्रान्तिकारियों के विरुद्ध विष उगल रहे थे, जितना दमन हो रहा था उससे ये खुश नहीं थे, वे चाहते थे कि बंगाल के नौजवान एकदम से दबा

दिये जाय। हो भी ऐसा ही रहा था, किन्तु [illegible], एक ओर तो यह बात कर रहा था, यानी न्याय का। दिखावा कायम रक्खा जा रहा था। वह न्याय का दिखावा कैसा था [illegible] क्रांतिकारियों के मुकदमे मामूली अदालतों में नहीं आ सकते थे, बल्कि उनकी ट्रिब्युनल यानी तीन छंटे हुये सरकारी जजों के सामने मुकदमा होता था। हथियार रखने में आजन्म कालापानी तथा गोली चलाने में चाहे लगे या न लगे फांसी हो सकती थी।

मिस्टर विलियर्स पर गोली

२६ अक्टूबर को सबेरे के समय यूरोपियन एसोसिएशन के सभापति मिस्टर विलियर्स अपने दफ्तर में कुछ सज्जनों के साथ बातें कर रहे थे कि एक नौजवान ने आकर उन पर तीन गोलियां चलाईं। विलियर्स को मामूली चोट आई, और वह नौजवान गिरफ्तार कर लिया गया, इस नौजवान का नाम विमल दास गुप्त था। इसी युवक ने मिदनापुर के कलक्टर मिस्टर पेडी को मारा था ऐसा समझा जाता है। विमल दास गुप्त को इस मुकदमे में १० साल की सजा हुई।

सुभाष बोस गिरफ्तार

सुभाष बाबू इसके पहिले क्रान्तिकारी आन्दोलन के सम्बन्ध में गिरफ्तार हो चुके थे, और बहुत सालों तक नजरबन्द भी रहे। उन्होंने इन दिनों ढाका में होने वाले पुलिस के अत्याचार के विषय में जो सुना तो उस पर तहकीकात करने के लिये ढाका जा रहे थे कि परगना अफसर ने उन्हें लौट जाने के लिये कहा। वे एक गैर सरकारी कमेटी में भाग लेने के लिये जा रहे थे, उन्होंने इस हुक्म को मानने से इनकार किया, और ११ नवम्बर को वे गिरफतार करके सेन्ट्रल जेल में भेज दिये गये। जाते समय उन्होंने जनता को चटगांव और ढाका के पुलिस अत्याचारों की ओर आकर्षित करते हुए यह सन्देश दिया कि चटगांव और ढाका को याद रक्खो। बाद को उनके विरुद्ध यह मुकदमा वापस ले लिया गया।

लड़कियों ने गोली चलाई

अब तक आतंकवादी कामों में मुख्यतः लड़कों ने ही भाग लिया था, कम से कम किसी भी लड़की ने अब तक हत्या नहीं की थी, किंतु २४ दिसम्बर १९३१ को फैजुन्निसा बालिका विद्यालय की दो छात्रायें कुमारी शान्ति घोष तथा कुमारी सुनीति चौधरी ने जो बात कर दिखाई उससे एक ऐतिहासिक बात हो गई। इन दोनों लड़कियों ने जाकर मैजिस्ट्रेट मिस्टर बी० जी० स्टीवेन्स से मिलना चाहा, जब पूछा गया कि वे किस लिये मिलना चाहती हैं तो उन्होंने बतलाया कि वे लड़कियों की तैराकी के दङ्गल के सम्बन्ध में मिलना चाहती हैं। इस पर उन्हें मिस्टर स्टीवेन्स के कमरे में ले जाया गया, वहाँ दाखिल होते ही उन्होंने मैजिस्ट्रेट के ऊपर गोली चला दी। मिस्टर स्टीवेन्स तुरन्त मर गये, दोनों लड़कियाँ फौरन गिरफ्तार कर ली गईं।

सरदार पटेल की टीका

सारे हिन्दुस्तान में इस बात से बड़ा तहलका मचा, सरदार पटेल ने इस पर बयान दिया कि ये दोनों लड़कियाँ भारतीय नारियों के लिये कलंक स्वरूप हैं। इतिहास ही इस बात को बतायेगा कि ये लड़कियाँ भारत के इतिहास की कलंक हैं या नहीं।

ऊपर की घटना टिपरा की है। इन लड़कियों को २७ फरवरी १९३२ को आजन्म काले पानी का दंड हुआ।

बङ्गाल के गवर्नर पर गोली

६ फरवरी १९३२ को मानो ऊपर की घटना एक नये रूप में आई। उस दिन सर स्टैनले जैकसन दीक्षान्त भाषण दे रहे थे कि वीणादास नामक एक नई स्नातिका ने, जो उपाधि लेने आई, उन पर पाँच गोलियाँ चलाई, जो सब की सब चूक गईं। बङ्गला साहित्य के प्रसिद्ध इतिहास-लेखक डाक्टर दिनेशचन्द्र सेन को कुछ मामूली चोट आई। वीणादास गिरफ्तार कर ली गई। वीणादास

ने अदालत में एक bold statment दिया, अर्थात् वीरतापूर्वक सब बातें स्वीकार की तथा यह कहा कि किन उद्देश्यों से उसने ऐसा किया है, किन्तु अखबारों पर रोक लगा दिये जाने के कारण उस बयान का प्रचार न हो सका। वीणादास का यह आक्रमण सूचित करता है कि बङ्गाली जनता में किस हद तक क्रान्तिकारी आन्दोलन घर कर गया था।

मिदनापुर के दूसरे मैजिस्ट्रेट स्वाहा

३० अप्रैल १९३२ को मिस्टर आर० डगलस डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के दफ्तर में कुछ कागजात पर दस्तखत कर रहे थे कि दो नौजवान एकाएक उनके दफ्तर में घुस गये, और लगे उन पर गोलियाँ चलाने। दो गोलियाँ उनको लगी। दो आक्रमणकारियों में से एक तो, उसी समय पकड़ लिया गया, दूसरा भाग गया। जो व्यक्ति पकड़ा गया उसकी जेब में एक कागज निकला जिसमें लिखा था।

"यह हिजली का बदला है"

"इन हमलों से ब्रिटिश साम्राज्यवाद को हुशियार हो जाना चाहिये, हमारा बलिदान यों ही न जायगा, भारतवर्ष इससे जगेगा, वन्देमातरम्।" मिस्टर डगलस मर गये और प्रद्योतकुमार भट्टाचार्य को फाँसी हो गई।

जिला मैजिस्ट्रेट के डब्बे पर बम

१२ जून को फरीदपुर जिला मजिस्ट्रेट राय बहादुर सुरेशचन्द्र बोस के साथ वहाँ के पुलिस कप्तान रेल पर जा रहे थे कि किसी ने उनके डब्बे पर बम फेंक दिया इससे किसी को चोट न आई न कोई पकड़ा ही गया।

कैप्टेन कैमरून की हत्या

इसके दूसरे दिन पुलिस को खबर मिली कि चटगाँव के जल घाट नामक गाँव में चटगाँव शस्त्रागार कांड के कुछ फरार छिपे हैं।

पुलिस ने जाकर इस मकान को घेर लिया। कैप्टेन कैमरून पुलिस की इस टुकड़ी का नेतृत्व कर रहे थे। पुलिस के अतिरिक्त गुरखे सैनिक भी थे। रात नौ बजे पुलिस ने मकान पर छापा मारा, छापा मारना था कि भीतर से धमधम आवाज आई। कैप्टेन कैमरून बाहर की सीढ़ी से मकान की ऊपरी मंजिल पर चढ़ने लगे, उसके साथ एक हवलदार था। वे चढ़ ही रहे थे कि एकाएक भीतर से एक आदमी ने आँधी की तरह निकल कर हवलदार को एक जोर धक्का दिया, और साथ कैप्टेन कैमरून पर गोली चलाई। हवलदार लुढ़कता हुआ नीचे आ गया और कैप्टेन कैमरून वहीं पर मरकर ढेर हो गये। ऊपर से एक आदमी झपटकर उतरा और उसने एक सिपाही की बन्दूक छीनने की चेष्टा की किन्तु छीन न सका। वह झाड़ियों की ओर भाग निकला। सिपाही ने उस पर गोली चलाई। बाद को एक आदमी झाड़ियों में गोली से मरा हुआ पाया गया। इसी समय एक आदमी ने जंगले से उतर कर भागने की चेष्टा। उसको गोली मार दी गई। वह भीतर चला गया। बाद को उसकी लाश कमरे में पुलिस को मिली। फिर भी दो व्यक्ति भाग निकले, एक सूर्य सेन और दूसरा सीताराम विश्वास। दो व्यक्ति जो मारे पाये गये, उनका नाम था निर्मल चन्द्र सेन और अपूर्वसेन।

कामाख्यासेन की हत्या

ढाका के सबडिप्टी मैजिस्ट्रेट जो ७ जुलाई १९३२ ई० को श्री एस० एन० चटर्जी के यहाँ मेहमान थे, रात को एक बजे बिस्तरे पर सोने की हालत में गोली मार दी गई और मारने वाले भाग निकले। इस सम्बन्ध में बाद को कालीपदो मुकर्जी को फाँसी हुई।

मिस्टर एलीसन की हत्या

२९ जुलाई को मिस्टर एलीसन, जो टिपरा के ऐडिशनल पुलिस सुपरिंटेंडेंट थे, साइकिल पर जा रहे थे। उनके साथ एक आदमी था।

एकाएक एक नवयुवक ने पीछे से उन पर गोली चलाई। मिस्टर एलीसन घायल तो हो गये किंतु साइकिल से उतर कर उन्होंने गोली चलाई। युवक ने भागते समय एक पैकेट फेंका जिसमें लाल पर्चे थे। इनमें यह लिखा था कि इक्के दुक्के हमले न कर गोरों पर सामूहिक रूप से हमला किया जायगा। यह पर्चा भारतीय प्रजातन्त्र सेना की ओर से सूर्यसेन द्वारा लिखा गया था। मिस्टर एलीसन की गोली पीठ से पेट में पहुँची और वे मर गये।

स्टेट्समैन के सम्पादक पर गोली

स्टेटसमैन बङ्गाल के गोरों का अखबार है। भारत में रहते हुए भी इसके संपादक हमेशा भारत की बुराई चाहते हैं, और वही लिखते हैं जिससे भारत का नुकसान हो। भारत के राष्ट्रीय जीवन से इसे कोई सरोकार नहीं, इसे तो बस भारत में ब्रिटिश साम्राज्यवाद किसी प्रकार कायम रहे, इसी से मतलब है। क्रांतिकारियों का तो यह जानी दुश्मन था। सर अलफ्रेड वाटसन इसके सम्पादक थे। ७ अगस्त को वह अपने घर से दफ्तर आ रहे थे, जिस समय उनकी मोटर रुकी और वे उतरने को हुए उस समय एक नौजवान मोटर के फुट बोर्ड पर चढ़ गया और उन पर गोली चलाई। गोली चूक गई, आक्रमणकारी पकड़ा गया किंतु उसने तुरन्त जहर खा लिया जिससे वह वहीं मर गया। साम्राज्यवाद का बदला अतृप्त रह गया।

मिस्टर ग्रासबी पर आक्रमण

२२ अगस्त को ढाका के ऐडिशनल पुलिस सुपरिंटेंडेंट मिस्टर ग्रासबी दफ्तर से घर जा रहे थे। जिस समय वह एक चौरास्ते पर पहुँचे उनपर बिनय भूषण दे नामक एक युवक ने गोली चलाई। विनय पकड़ लिया गया और उसे आजन्म कालेपानी की सजा हुई।

यूरोपियन क्लब पर सामूहिक आक्रमण

चटगांव के गोरों का एक क्लब है। वह खूब जमी मजलिस थी

था। सूर्यसेन अपने साथियों सहित गिरफ्तार हुए, श्रीमती कल्यानदत्त के साथ उन पर मुकदमा चला, और बाद को फाँसी दी गई। तारकेश्वर दस्तीदार को भी इसी मुकदमे में फाँसी हुई, कल्यानदत्त को आजन्म काले पानी की सजा हुई।

मिदनापुर के तीसरे मैजिस्ट्रेट भी स्वाहा

२ सितम्बर १९३३ को मिदनापुर के मैजिस्ट्रेट मिस्टर बर्ज मुसलमानी टीम के साथ मैच खेलने पुलिस लाइन गये। उनके साथ कई पुलिस के बड़े अफसर थे। तीन बङ्गाली युवकों ने एक साथ उन पर गोलियों की झड़ी लगा दी। उन पर छै गोलियां लगी। मिस्टर बर्ज के अंगरक्षकों ने गोली चलाई, और दो वहीं खेत रहे। तीसरे गिरफ्तार कर लिये गये। जब मुकदमा चला तो निर्मल जीवन, रामकृष्ण राय तथा ब्रजकिशोर को फाँसी हुई। मिस्टर बर्ज खेल खेलने गये थे, किंतु वहीं खेल गये। यह मिदनापुर के तीसरे मैजिस्ट्रेट की हत्या थी।

मिदनापुर में इन दिनों पुलिस ने जो अत्याचार किया है वह अवर्णनीय है; साम्राज्यवाद ने गदर के दिनों के अत्याचार का फिर से अभिनय किया।

यूरोपियनों पर बम

७ जनवरी १९३४ को जब गोरे मैच देख रहे थे तो उन पर चार युवकों ने बम चलाया, किंतु यह सफल न रहा।

बङ्गाल के गवर्नर पर फिर हमला

बङ्गाल के गवर्नर सर जान एंडरसन ८ मई १९३४ को लेबांग की घुड़दौड़ में शामिल थे। वे अपने बाक्स में बैठे हुए थे कि दो नौजवानों ने आकर उन पर तमंचों से गोलियां चलाईं। गोलियाँ खाली गईं और वे युवक हिरासत में ले लिये गये। इस सम्बन्ध में कुमारी उज्वला नाम से एक लड़की गिरफ्तार हुई। इसने, मनोरंजन बनर्जी ने तथा रवि बनर्जी ने बयान दे दिया, और उसमें दो चार ऐसी बात कहीं

जिससे क्रांतिकारियों की छीछालेदर हो गई। इस मुकदमें में, भवानी भट्टाचार्य को फांसी की सजा दी गई। इन्हें १९३५ की जनवरी की रात बारह बजे फांसी दी गई। बाकी सब को आजन्म कालेपानी की सजा हुई। स्मरण रहे यह दल मुख्य दल से अलग था।

ऊपर जिन घटनाओं का वर्णन किया गया है, इनके अलावा भी बहुत सी घटनायें, हमले तथा डाके क्रांतिकारियों की ओर से बंगाल में हुए किंतु उनके वर्णन की आवश्यकता नहीं है। इन कई वर्षों में क्रान्तिकारियों के कार्यक्रम का वह हिस्सा जिसको हम आतंकवादी कह सकते हैं खूब जोरों पर रहा। कैसे इसी आतंकवाद से प्रतिक्रिया आई, और भारत को क्रांतिकारी आन्दोलन ने एक दूसरा ही किंतु उग्रतर रास्ता पकड़ा, यह आगे के एक लेख में दिखलाया जायगा।

अन्य प्रान्तों में क्या हो रहा था

चन्द्रशेखर आजाद के शहीद होने के बाद इन प्रान्तों का काम ढीला पड़ गया था, यह ढिलाई केवल इस कारण नहीं पड़ी कि उपयुक्त नेताओं का अभाव रहा बल्कि सच्ची बात तो यह है कि जिन सामाजिक तथा आर्थिक परिस्थितियों से इस कर्मधारा की उत्पत्ति हुई थी वही बदल रही थी। महात्मा गाँधी ने विवेक तथा आत्मा की पुकार पर सत्याग्रह आन्दोलन बन्द कर दिया था। जो सत्य और अहिंसा तो नहीं उनका नारा कुछ हद तक आन्दोलन को कभी आगे ले जाने में सफल रहा था, वही अब कांग्रेस को पीछे घसीट रहा था। सुधारवाद हो विधानवाद धीरे धीरे अपना मनहूस सिर उठा रहा था। उसके बाद क्या हुआ यह तो सभी जानते हैं, हम केवल संक्षेप में इस बीच की प्रमुख घटनाओं का वर्णन करेंगे। बंगाल के अध्याय को लिखते समय

जिस प्रकार हमने वहाँ की ६० फी सदी घटनाओं को छाँट कर केवल मुख्य मुख्य घटनाओं का वर्णन किया है तथा जितनी बड़ी बड़ी घटनाओं पर कैंची चला दी है, वैसा यदि इन प्रान्तों के सम्बन्ध में हम करें तो इस बीच की होने वाली एक भी घटना के वर्णन करने की नौबत न आवे। पाठक इस अध्याय को पढ़ते समय इस बात को स्मरण रक्खें।

रमेशचन्द्र गुप्त

पहिले ही लिखा जा चुका है कि आजाद के पकड़े जाने के लिए वीरभद्र पर सन्देह किया जाता था, तदनुसार कानपुर दल ने वीरभद्र को गोली से उड़ा देने का विचार किया। इसके लिए, सुना जाता है, बड़े बड़े क्रान्तिकारी पिस्तौल लेकर घूमते रहे, किन्तु हाथ न आता था। कानपुर के नारियल बाजार में वीरभद्र पर, कहा जाता है, तीन नौजवानों ने एकदम हमला कर दिया। वीरभद्र धाँय धाँय सुनते ही एकदम लेट गया, हमला करनेवालों ने समझा यह मर गया, इसलिए वे चले गये। जब वे लोग चलते बने, तो वीरभद्र भाग गया। उसे जरा भी चोट नहीं आई थी!

किन्तु दल ने उसे फिर भी नहीं छोड़ा। दल का एक उत्साही नौजवान रमेशचन्द्र गुप्त इस काम के लिए तैयार हुआ, किन्तु कानपुर को बहुत गरम पाकर वीरभद्र ने अपना निवास स्थान उरई को बना लिया। रमेशचन्द्र स्कूल में पढ़ते थे, उन्होंने घर वालों से कहा कि मेरा मन कानपुर में पढ़ने में नहीं लगता, उरई जाऊँ तो मन लगे। घर वाले भला भीतरी रहस्य क्या जानते थे, वे मान गये। रमेश उरई में जाकर एक स्कूल में भर्ती हो गये। पढ़ते तो वह क्या थे वह वीरभद्र की टोह में लगे रहते थे। एक दिन जब वीरभद्र कोई पार्ट अदा करके एक स्टेज से उतर रहे थे तो रमेशचन्द्र ने अपना पार्ट अदा किया और उस पर पिस्तौल तान दी। चार बार घोड़ा दबाया तो एक ही गोली निकली और सो भी गलत। खैर, रमेश की बहादुरी में कसर

नहीं थी। वे गिरफ्तार कर लिये गये, और बाद को उन्हें दस साल की सजा मिली।

यशपाल और सावित्री देवी

यशपाल बहुत दिनों से सरकार की आँखों में खटकते थे, वे घोषित फरार थे। वायसराय पर बम, पञ्जाब के गर्वनर पर गोलीं आदि कई मामलों में पुलिस उन पर शक करती थी। २२ जनवरी १६३२ को जब वे कानपुर से इलाहाबाद आरहे थे तो पुलिस के किसी आदमी ने उन्हें पहिचान लिया। वहीं से उनके पीछे पुलिस लग गई। जब वे आकर मिसेज जाफरअली उर्फ सावित्री देवी नामक आर्यदिश महिला के घर में हिवेट रोड पर ठहरे तो रात रहते ही मिस्टर पिल्डिच पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्ट ने दलबलसहित मकान को घेर लिया। दोनों ओर से गोली चली किन्तु किसी को चोट नहीं आई। यशपाल गिरफ्तार कर लिये गये और उन्हें १४ साल की सजा हुई। श्री मती सावित्री देवी को एक फरार को आश्रय देने के कारण पाँच साल की सजा दी गई। यशपाल की १४ साल की सजा यथेष्ट समझी गई। इस लिये उन पर कोई और मुकद्दमा नहीं चलाया गया।

भाभी, दीदी, प्रकाशवती

भाभी उर्फ श्रीमती दुर्गा देवी, दीदी उर्फ श्रीमती सुशीला देवी तथा श्रीमती प्रकाशवती उर्फ प्रकाशो फरार थीं किन्तु पहिले भाभी ने आत्म समपर्ण कर दिया। किन्तु उनपर कोई मुकद्दमा न चला। दीदी पकड़ी गई, उन पर भी कोई मुकद्दमा नहीं चला। श्रीमती प्रकाशवती भी बाद को इसी प्रकार गिरफ्तार हुई किन्तु छोड़ दी गई। इन सब में भाभी का क्रन्तिकारी आन्दोलन में बहुत ही सक्रिया भाग था।

बर्मा में थारावाडी विद्रोह

बर्मा के थारावाडी विद्रोह को भारतीय क्रांतिकारी आन्दोलन के इतिहास के अन्तर्युक्त करना कहाँ तक उचित होगा, इसमें सन्देह हैं,

फिर भी हम इसका एक संक्षिप्त विवरण यहाँ देंगे। इस को विद्रोह कहने से क्रांति चेष्टा, सो भी जन क्रांति चेष्टा, कहना अधिक उपयुक्त होगा। आरंभ में इरावती नदी के कुछ जिले में ही यह विद्रोह हुआ, किंतु बाद को फैल गया। साया सान नामक एक बर्मी इस षड्तंत्र के नेता थे। इस क्रांति के लिये तैयारी गुप्त रूप से बहुत दिनों से हो रही थी। १९३१ के अप्रैल तक इस संगठन की शाखायें थारावाड़ी, हेंजडा आदि दो तीन जिलों में फैली। क्रांति का आरंभ इस प्रकार हुआ कि मुखियों की सभा पर आक्रमण किया गया, और एक मुखिया मार डाला गया। इसके बाद यत्रतत्र आक्रमण हुए, आक्रमण कुछ-कुछ गोरिल्ला ढंग पर हुए। कई जगह पुलिस वालों पर भी आक्रमण किया गया, दस बीस जगह पुलिस अफसर भी मारे गये। जून में साया सान ने शान रियासत में क्रांति फैला दी, यह विद्रोह दबा दिया गया और २ अगस्त को सायासान गिरफ्तार कर फाँसी पर चढ़ा दिया गया। मई और जून को ही यह क्रान्ति जोरों पर थी, क्रान्तिकारी अधिकतर गांववाले थे और बौद्ध भिक्षु भी उनके साथ थे। यह क्रान्ति कितनी विराट थी यह इसी से जाना जा सकता है कि लड़ाइयों के दौरान में २००० क्रान्तिकारी मारे गये। ब्रिटिश साम्राज्यवाद ने बड़ी कठोरता से इस विद्रोह को दबाया।

मेरठ षड्यन्त्र

मेरठ का षड्यन्त्र भी इसी प्रकार हमारे विषय से सीधा संबंध न रखते हुए भी हम क्या यहां वर्णन करेंगे, क्यों कि यह भी क्रान्ति की चेष्टा के उद्देश्य से किया गया था। जिस समय सर्दार भगत सिंह वाला लाहौर षड्यंत्र देश के सामने ख्यातिप्राप्त कर रहा था उसी समय मेरठ षड्यंत्र चल रहा था, किन्तु मेरठ षड्यंत्रय लाहौर षड्यंत्र के मुकाबले में जनता का प्रिय न हो सका न मेरठ षड्यंत्र का कोई भी व्यक्ति भगत सिंह का एक आना ख्याति ही प्राप्त कर सका। मेरठ षड्यंत्र के मुख्य अभियुक्त डांगे, घाटे, जोगलेकर, निम्बेकर, पी०

सी० जोशी, अधिकारी आदि थे; इस षड्यंत्र में तीन अंग्रेज भी थे अर्थात् स्प्रैट, ब्रैडले और हचिनसन। इन लोगों पर यह अभियोग था कि रूस की तृतीय इन्टर-नेशनल के साथ षड्यंत्र करके इन लोगों ने वर्तमान सरकार को उलट कर सोवियट शासन कायम करने की चेष्टा की। २० मार्च १९२८ में गिरफ्तारियाँ हुईं, और १६ जनवरी १९३३ को इसका निर्णय सुनाया गया। इस मामले में जो फैसला दिया गया वह एक बहुत ही पठनीय चीज है। सेशन जज ने डांगे; स्प्रैट, जोगलेकर, निम्बकर, घाटे को बारह-बारह वर्ष कालेपानी तथा अन्य लोगों को दूसरी सजायें दीं। बाद को ये सजायें बहुत घटा दी गईं।

गया षड्यन्त्र

३० जनवरी १९३३ को गया के पास एक डाकगाड़ी लूटी गई, इस सम्बन्ध में १७ व्यक्ति गिरफ्तार हुए जिसमें श्यामचरण बर्थवार, केशवप्रसाद, विश्वनाथ प्रसाद, शत्रुघ्न सिंह, भगवतदास, केदारनाथ मालवीय, जगदेव मालवीय आदि थे। इनका सम्बन्ध श्री चन्द्रशेखर आजाद से था। ७ साल तक के लिये जेल की सजा हुई।

बैकुंठ शुक्ल

फणीन्द्रनाथ घोष भुसावल में तो गोली से बचकर आया था; किंतु बैकुंठ शुक्ल ने छुरों से ही बेतिया में उसका काम तमाम कर दिया। ये बिहार के प्रसिद्ध क्रांतिकारी योगेन्द्र शुक्ल के भतीजे थे। बाद को ये सोनपुर में पकड़े गये, और इन्हें फाँसी हुई। पुलिस ने इस सम्बन्ध में चन्द्रमा सिंह पर भी मुकद्दमा चलाना चाहा, और वे फतेहगढ़ जेल से इसीलिये लाये भी गये थे, किन्तु उन पर सबूत न मिला। इसी षड्यन्त्र के सिलसिले में महन्त रामरमण दास तथा रामभवनसिंह को सजा हुई।

मद्रास में षड्यन्त्र

पहिले ही लिखा जा चुका है कि मद्रास में एक ऐश-हत्या के

अतिरिक्त कभी कोई काम न हुआ। २६ अप्रैल १६३३ को उटकमंड का एक बैंक लूट लिया गया। जब ये बैंक लूटकर भागे तो पुलिस से एक जगह उनका सामना हुआ, किन्तु पुलिस ने आक्रमणकारियों को पकड़ लिया। मुकद्दमा चला तो बच्चूलाल, शम्भूनाथ आजाद तथा प्रेमप्रकाश को आजन्म कालेपानी, खुशीराम मेहता और हजारासिंह को दस-दस साल की सजा हुई। बाद को मद्रास मे एक और षड्-यन्त्र चला।

अन्तर्प्रान्तीय षड़यन्त्र

अगस्त १६३३ को ३८ युवकों पर सरकार ने एक षड़यन्त्र चलाया। इसमें बङ्गाल, युक्तप्रांत, पंजाब और वर्मा के लोग थे। इस षड़यंत्र के नेता सीतानाथ दे माने गये, अभियुक्तों को लम्बी-लम्बी सजायें हुई।

बलिया षड़यन्त्र

११ जनवरी सन् १६३५ ई० को बलिया से प्रेषित एक तार के आधार पर काशी की पुलिस ने बनारस इलाहाबाद साइकिल से जाते हुए एक युवक को बनारस छावनी से दो तीन मील दूर, एक थाने के निकट आम सड़क पर, घेर कर पकड़ा था उसके पास कुछ कागजात, ४५ कारतूस तथा गुप्त लिपि में लिखी हुई एक नोटबुक मिली थी। दूसरे दिन १२ जनवरी को बलिया, बनारस, इलाहाबाद, गाजीपुर, जौनपुर आदि कई स्थानों में तलाशियाँ ली गई तथा बलिया में श्री गोकुलदास, श्री तारकेश्वर पाण्डेय, श्री नर्वदेश्वर चतुर्वेदी, श्री राम लक्ष्मण तिवारी, श्री शिवपूजन सिंह एवं अन्य कई और व्यक्ति गिरफ्तार किए गए। काशी, आजमगढ़, जौनपुर, इलाहाबाद जिले के भी कुछ व्यक्ति पकड़े गए। बाद में बहुत से लोग छोड़ भी दिए गए। जो शेष रह गए उनकी जमानतों की दरख्वातें नामंजूर करते हुए पुलिस की तरफ से कहा गया था कि इस दल के लोग विहार, युक्तप्रान्त, पंजाब, मध्यप्रान्त

आदि प्रान्तों में फैले हुए हैं और एक अन्तर-प्रान्तीय षड्यन्त्र चलाने के लिए काफी मसाला प्राप्त हो चुका है।

२३ फरवरी सन् १९३५ ई० को उपर्युक्त धारणा के अनुसार उक्त प्रान्तों में लगभग २५० तलाशियां ली गईं, पर कहीं भी कोई आपत्ति-जनक सामग्री पुलिस को प्राप्त न हो सकी। पुलिस की ओर से दूसरी बार जमानतों की दरख्वास्तों का विरोध करते हुए कहा गया था कि इस षड्यंत्र का आधार वही गुप्त भाषा में लिखी हुई नोट बुक तथा छपे हुए विधान और प्रतिज्ञा-पत्र आदि हैं। इनके पढ़ने से स्पष्ट हो जाता है कि इस गुट्ट का उद्देश्य सशस्त्र-क्रांति द्वारा वर्तमान सरकार को पलट देना है। इनकी एक मीटिंग की कार्रवाई का पूर्ण विवरण पुलिस के पास है और उसमें शामिल होने वाले सदस्यों के फोटो भी। इतना ही नहीं, पुलिस का इस गुट्ट पर यह भी दोषारोपण था कि १९२५ ई० के बाद पूर्वी जिलों में जो कुछ भी उपद्रव होता रहा है, इसी गुट्ट का काम है। उनका यह भी कहना था कि १९३२ ई० में जो तार काटने की हलचल हुई थी वह भी इसी दल का काम था। काशी में तथा अन्य जगहों में जो डाके पड़े हैं वे भी इसी दल के लोगों ने डाले हैं। इस दल का नेता गोकुलदास है जो बराबर कई बार कई षड्यन्त्र केसों में पकड़ा जा चुका है। इसलिए पूरी तैयारी के लिए पुलिस को अवकाश मिलना चाहिए।

उन्हें पूरे छः मास का अवकाश भी मिला। इस बीच कुछ सर-कारी गवाह तैयार करने की पूरी चेष्टा की गई पर इसमें उसे कामयाबी प्राप्त नहीं हुई। अतः षड्यन्त्र चलाने का इरादा पुलिस ने छोड़ दिया और हथियार कानून की धारा १९, २० के अनुसार मुकदमा चलाने का निश्चय किया। इनके इस निश्चय पर एक प्रथम श्रेणी के मजि-स्ट्रेट ने कहा था कि 'पहाड़ खोद कर चूहा पकड़ने की कोशिश की गई है।'

हथियार कानून के अनुसार बलिया में श्री गोकुलदास और श्री

रामलक्ष्मण तिवारी तथा काशी में श्री हरिहर शर्मा आदि पर मुकदमे चलाए गए। मुकदमे के बीच गवाहियाँ देते हुए पुलिस अधिकारियों ने अधिकतर पुराना ही रोना रोया था।

गोकुलदास के विरुद्ध हथियार कानून के मामले को साबित करने के लिए बिहार से जो पुलिस अधिकारी गवाही देने के लिए आए थे उनका सिर्फ यही कहना था कि सन् १६३० में गोकुलदास बिहार में पकड़े गए थे। ये योगेन्द्र शुक्ल के साथी मलखाचक वालों से मिलने गए थे। हमें सन्देह था कि इनके पास हथियार थे और इन्होंने सोनपुर स्टेशन पर अपने एक साथी को दे दिये थे, जिसका पीछा पुलिस ने किया पर पकड़ न सकी थी। बाद में १७ (१) क्रिमिनल ला अमेन्डमेन्ट ऐक्ट के अनुसार सजा हुई थी। इनका सम्बन्ध ऐसे लोगों से है जो बिहार प्रान्त में सन्देहजनक दृष्टि से देखे जाते हैं। पुलिस को इस बात का भी सन्देह था कि इन्होंने योगेन्द्र शुक्ल को जेल से भगा देने का प्रयत्न किया था। युक्तप्रांत के अधिकारियों का कहना था कि ये लाहौर के षड्यन्त्र केस में तथा महोबा में हथियार कानून के अन्तर्गत भी पकड़े गए थे। परन्तु प्रामाणाभाव के कारण छोड़ दिये गए थे। बाँदा में तार काटने के मामले में सजा पा चुके हैं। ये (Starred Political Suspect) राजनैतिक संदिग्ध व्यक्ति है, इसलिए यह हथियार भी इन्हीं का है। प्रायः इसी प्रकार के प्रमाणों के आधार पर अन्ततः काशी और बलिया में ६ व्यक्तियों को ४ साल से लेकर एक साल तक की सजाएँ हुई। इनमें एक उल्लेखनीय व्यक्ति आजमगढ़ जिले का १२० वर्षीय बुड्ढा लुहार था जिस पर हथियार बनाने का अभियोग था और उसे भी ४ साल की सजा हो गई थी। ये अपनी पूरी सजाएँ काटकर छूट चुके हैं।

बंगाल की कुछ क्रान्तिकारिणियां

पहिले के अध्यायों से पता लग गया होगा कि बंगाल की स्त्रियों ने भी बंगाल के पुरुषों की तरह क्रान्तिकारी आन्दोलन में भाग लिया। नीचे कुछ नजरबन्द राजनैतिक कैदिनों का परिचय दिया जाता है।

श्रीमती लीलावती नाग एम० ए०

पेंशनयाफ्ता डेपुटी मैजिस्ट्रेट रायबहादुर गिरीशचन्द्र नाग की यह लड़की हैं। अंग्रेजी साहित्य में एम० ए० है, छात्र जीवन में हरेक परीक्षा को इन्होंने नामवरी से पास किया था।

लीलावती ने ही ढाका की कमरुन्निसा बालिका विद्यालय की स्थापना की थी। पहिले दो साल तक वे इसकी अवैतनिक प्रधानाध्यापिका रही, उस समय इसका नाम दीपाली विद्यालय था। इसी युग में इन्होंने दीपाली-संघ नाम से एक नारी-संस्था की स्थापना की, जिसका उद्देश्य नारियों की सर्व प्रकार की उन्नति करना था। बहुत सी बाधायें उनके रास्ते में आई किन्तु उन्होंने सब बाधाऔ पर विजय प्राप्त की। गाँव गाँव घूमकर इन्होंने लड़कियों के विद्यालय भी स्थापित किये।

दीपाली विद्यालय से सम्बन्ध टूट जाने पर इन्होंने नारीशिक्षा-मन्दिर नाम से लड़कियों का एक हाईस्कूल स्थापित किया उसी के साथ एक बोडिङ्ग की भी स्थापना की। इसमें गरीब लड़कियों के लिये पढ़ने, तथा काम सीखने की व्यवस्था थी। इसी युग में इन्होंने "जय श्री" नाम से एक विख्यात मासिक पत्रिका निकाली। १९३१ के २० दिसम्बर को क्रिमिनल ला अमेंडमेन्ट ऐक्ट के अनुसार गिरफ्तारी हुई, १९३८ में यह छोड़ी गई।

श्रीमती रेणु सेन एम० ए०

रेणु सेन अर्थशास्त्र में एम० ए० है। लीलावती ने जब पहिले

पहल बालिका-विद्यालय की स्थपना की, तब ये वहीं छात्री थीं। बी० ए० पास करने के बाद वह पढ़ने के लिये कलकत्ता गई और वहीं एम० ए० पास किया। १६३० के १७ सितम्बर को यह पहिले पहल डलहौसी स्क्वायर बम कांड के संबंध में पकड़ी गई। एक महीने तक लालबाजार lock up में तथा प्रेसिडेन्सी जेल में रहने के बाद ये छूट गईं। इस कारण वेथून कालेज से निकाली गई। '६३१ साल के २० दिसम्बर को ये लीला नाग के साथ पकड़ी गईं, और १६३० को छोड़ी गईं।

श्रीमती लीला कमाल बी० ए०

आशुतोष कालेज में बी० ए० पढ़ते समय यह ग्रिंडले बक को घोखा देने के शक में गिरफ्तार हुई किन्तु छूट गई। यह महाराष्ट्र की रहने वाली हैं।

श्रीमती इन्दुमती सिंह

इन्दुमती चटगाँव की गोलापलाल सिंह की लड़की हैं। १६२६ के १४ दिसम्बर को गिरफ्तार हुई। छै साल जेल में रहने के बाद छूटीं।

श्रीमती अमिता सेन

१६३४ के अगस्त में यह बङ्गाल आर्डीनेन्स में पकड़ी गई। १६३६ में जेल से निकाल कर श्रीमती नेलीसेन गुप्ता के मकान पर नजरबन्द कर दीं गईं। फिर ये हिजली भेजी गई। १६३८ में छूटीं।

श्रीमती कल्याणी देवी एम० ए०

१६३१ के सत्याग्रह आन्दोलन के सम्बन्ध में ८ महीने तक जेल में रहीं। फिर पकड़ी गईं और छोड़ी गईं। १६३३ में उनके बालीगंज वाले मकान से एक तमंचा मिला। जिससे वे अपने होस्टल में गिरफ्तार कर ली गईं किन्तु सबूत न मिलने पर छूट गईं। तुरन्त बंगाल आर्डी-नेन्स में धरी गईं। प्रेसिडेन्सी, हिजली तथा अन्य जेलों में वर्षों रहने के बाद हाल में छूटीं हैं।

श्रीमती कमला चटर्जी बी० ए०

कालेज की छात्र अवस्था में १६३१ में बंगाल आर्डिनेन्स में गिरफ्तार हुई, १९३७ के अन्त में छूटीं। आप की लिखने की शक्ति अच्छी है।

बाईस अन्य क्रान्तिकारिणियाँ

इनके अतिरिक्त ये महिलायें भी आर्डिनेन्स में थीं।

(१) सुशीला दास गुप्ता—५ साल जेल में थीं।

(२) लावण्यप्रभा दासगुप्ता—५ ,, ,,

(३) कमला दासगुप्ता बी० ए०—बीणादास के साथ पकड़ी गई किन्तु छोड़ दी गई और फिर आर्डिनेन्स में ले ली गई।

(४) सुरमा दासगुप्त बी० ए०—डेढ़ साल जेल में रही।

(५) उषा मुकर्जी—तीन साल जेल में रही।

(६) सुनीति देवी—दो साल जेल में रही।

(७) प्रतिभा भद्र बी० ए०—पांच साल जेल में रही।

(८) सरयू चौधरी—टिटागढ़ मामले में पकड़ी गई। फिर आर्डिनेन्स में चार साल जेल रही।

(६) इन्द्रसुधा घोष—चार साल जेल रही।

(१०) श्रीमती प्रफुल्लनलिनी ब्रह्म—टिहरा के मैजिस्ट्रेट मि० स्टीवेन्स की हत्या के अपराध में गिरफ्तार हुई, किन्तु मुकद्दमा न चला, फिर आर्डिनेन्स में ले ली गई। १६३० में जेल ही में मर गई।

(११) श्रीमती हेलेना बाल बी० ए०—यह अपने मामा श्री प्रफुल्लकुमार दत्त तथा सुपति रायचौधुरी के साथ गिरफ्तार हुई फिर कई साल जेल में रही।

(१२) श्री मती आशा दास गुप्त—५ साल जेल में रही।

(१३) श्रीमती अरुणा सान्याल—५ ,, ,,

(१४) श्रीमती सुषमा दास गुप्ता—कई साल तक घर में नजरबंद रहीं।

(१५) प्रमीला गुप्ता बी० ए०—वीणादास के साथ पकड़ी गई थी। कई साल नजरबन्द रहीं।

(१६) सुप्रभा भद्र—प्रतिभा भद्र की छोटी बहन नजरबन्द रहीं।

(१७) शांतिकणा सेन—दो साल तक जेल में रहीं।

(१८) शांतिसुधा घोष एम० ए०—१६३३ के ग्रिन्डोले बैंक के सिलसिले में गिरफ्तार रहीं। फिर ४ साल तक नजरबन्द रही। गिरफ्तारी के समय वे विक्टोरिया कालेज की अध्यापिका थीं।

(१६) विमलाप्रतिभा देवी—१६३० में २० जून को देश बन्धु दिवस पर जुलूस का नेतृत्व करती हुई गिरफ्तार हुईं। फिर आर्डिनेन्स में ले ली गई। १६३७ में ये छुटीं।

(२०) ममता मुकर्जी—कुमिल्ला में नजरबन्द रही।

(२१ हास्यवाला देवी—वरिसाल में अपने घर पर नजरबन्द रहीं।

(२२) सरोज नाग—टीटागढ़ अस्त्र वाले मामले में पकड़ी गई। फिर छूट गई तो नजरबन्द कर दी गईं। सरदार पटेल के अनुसार ये शायद सभी भारत की कलंक है! देखना है इतिहास क्या कहता है!

आतंकवाद का अवसान

आतङ्कवाद का अवसान हो चुका है। केवल अन्दमन-कैदियों ने ही नहीं, बल्कि एक-एक करके सब छूटे हुए क्रांतिकारियों ने इस बात की घोषणा कर दी है कि आतंकवाद के युग का अवसान हो गया। इन उद्‌गारों तथा घोषणाओं को पढ़कर आम लोग, जो जानकार लोगों में नहीं हैं, हक्का बक्का रह गये हैं। कुछ लोग तो समझ रहे हैं कि यह

एक महज ढोंग है, तथा जेल के साथियों को छुड़ाने के लिए एक स्वांग मात्र है। वे समझते हैं कि ज्योंही सब क्रांतिकारी कैदी छूट जायँगे, त्योंही द्विगुणित वेग से आतंकवाद शुरू किया जायगा, और फिर सरकार मुँह ताकती रह जायगी। दूसरे कुछ लोग समझते हैं कि वर्षों के बाद अब जाकर गांधीवाद ने इन क्रांतिकारियों के वज्र हृदयों पर विजय पाई है, और इनका 'हृदय-परिवर्तन' हो गया है, जिसका ही फल यह है कि वे आतकवाद को त्याज्य समझते हैं। बहुत सम्भव है कि कुछ गांधीवाद के नादान दोस्त तथा उसके यत्रतत्र-सर्वत्र समर्थक ही नहीं, बल्कि स्वयं गांधी जी भी इस शेखचिल्ली की कहानी में विश्वास करते हों। इन दो श्रेणियों के अतिरिक्त एक तीसरी श्रेणी के लोग भी हैं, जो समझते हैं कि सरकार के दमन-चक्र अर्थात् कोल्हू, चक्की, बेंत, फाँसी, अन्दमन की बदौलत ही ये सङ्गदिल काबू में आये हैं, और इन लोगों ने 'गुमराही' छोड़ दी है।

मैं अभी दिखलाऊँगा कि ये तीनों अटकल-पच्चू गलत हैं। मैं स्वयं इन क्रांतिकारियों में से एक हूँ, इसलिए मेरे लिए यह सम्भव है कि मैं जानकारी के साथ इनके विचारों के विकास का विश्लेषण तथा सिंहावलोकन करूँ। मैं वर्षों तक जेल के अन्दर बड़े-बड़े क्रांतिकारियों साथ रहा तथा उनके विचारों में जो दिनानुदैनिक विकास होता रहा, उसको बहुत निकट से देखता रहा, इसलिए मैं इस विकासधारा पर सहानुभूति के साथ विचार कर सकता हूँ। कहना न होगा कि सहानुभूति के अतिरिक्त इन सहृदयों के हृदयों को न तो कोई समझ ही सकता है न विश्लेषण कर सकता है।

इस विश्लेषण को सफलतापूर्वक करने के लिए यह अवश्यक है कि हम क्रांतिकारी आंदोलन पर विहङ्गम दृष्टि डालें, तथा इसकी प्रमुख चारित्रिक विषताओं को समझें। वैज्ञानिक अर्थों में हम क्रांतिकारी आंदोलन को एक आन्दोलन कह सकते हैं, क्योंकि यह कुछ अलमस्तों का ही आन्दोलन नहीं था, बल्कि यह एक वर्ग का आन्दोलन था। इसके पीछे मध्यवित्त वर्ग था।

बङ्गाल में मध्यवित्त वर्ग की दशा सब से खराब हो गई थी, इसलिए बहुत कुछ हद तक यह बङ्गाल का ही और बङ्गालियों का ही आंदोलन रहा। बङ्गाल के बाहर यह आंदोलन बहुत कुछ हद तक बङ्गालियों में ही सीमित तथा ऊपर से लादा हुआ रहा। इसके साथ ही यहाँ पर यह बात स्पष्ट कर देनी चाहिये कि यह आंदोलन साम्राज्य-वाद के विरुद्ध चलाया जा रहा था, इसलिए हिन्दुस्तान के सभी वर्गों को इससे सहानुभूति तथा कुछ कम हद तक सहयोग भी था। इस अर्थ में देखा जाय तो यह आन्दोलन एक बहु-वर्ग (multi-class) आंदोलन था। वर्षों तक यह आंदोलन सरकार के थपेड़ों को व्यर्थ करता हुआ जीवित रह सका। यह भी इस बात का द्योतक है कि यह सचमुच एक आन्दोलन था।

यद्यपि आमतौर से लोग इस आन्दोलन को आतङ्कवादी आन्दोलन कहते हैं, किन्तु यह कहना गलत होगा कि इस आन्दोलन के कार्यक्रम में केवल आतङ्कवाद ही था। इसमें सन्देह नहीं कि आतङ्कवादी कार्यों मे ही मुख्य रूप से इस आंदोलन की ओर जनता की दृष्टि आकर्षित होती थी, किन्तु इसके कार्यक्रम में फौजें भड़काना, क्रांतिकारी साहित्य-प्रचार, अस्त्र-शस्त्र इकट्ठे करना, ब्रिटेन के शत्रुराष्ट्रों से सन्धि करना तथा सहायता लेना आदि बातें भी थी। महायुद्ध के समय के क्रांतिकारी आन्दोलन का जिन्होंने विशद अध्ययन किया है वे जानते हैं कि इस ओर कितना काम किया गया था। सिंगापुर में पं० परमानन्द ने सारी फौज से गदर करवा दिया था, एमडेन अस्त्र-शस्त्र से लैस होकर हिन्दुस्तान आ रहा था, ये बातें तो सभी जानते हैं। स्वदेशी, राष्ट्रीय स्वाधीनता मिले, गोरों और हिन्दुस्तानियों की समता हो आदि जो नारे इस आन्दोलन द्वारा दिये गये थे वे कोई हवाई नहीं थे, बल्कि देश के सब वर्गों की शिकयतों को प्रतिफलित करते थे। खुलने वाली नई हिन्दुस्तानी मिलों की रक्षा तथा उन्नति के लिए स्वदेशी का नारा बहुत ही सुन्दर तथा मौजूं था।

आज फिर क्या बात है कि क्रान्तिकारीगण जेलों से तथा बाहर से आतङ्कवाद को त्याज्य बता रहे हैं ? इसका कारण यह है कि आज मार्क्सवाद के अध्ययन की वजह से उनका आदर्श ही बदल गया है तथा अब वे परिस्थितियाँ ही न रहीं। वे आज देश में समाजवादी क्रान्ति को दृष्टि में रख कर कार्य करना चाहते हैं। इसलिए वे आतङ्कवादी तरीकों में विश्वास नहीं करते, वे आज वर्ग की नींव पर मजदूरों-किसानों को संगठित करना चाहते हैं। वे समझते हैं कि ऐसे समय में जैसा जन-आन्दोलन में आतङ्कवाद का कोई स्थान नहीं हो सकता, आतङ्कवाद जनता की initiative को बढ़ाने के बजाय उसको घटाती है क्योंकि इससे जनता हमेशा संकट के समय यह आशा करने लगती है कि एक भेजा हुआ वीर आकर उसे उबारेगा। जिस समय जनता में कोई दम नहीं था, उस समय आतङ्कवाद किसी हद तक उनकी शिथिलता दूर कर सकता हो, किन्तु अब जनता आत्मसम्भृत तथा प्रबुद्ध हो गई है—अब आतङ्कवाद उसकी शक्ति का अपव्यय करना ही नहीं उसके लिए अपमानजनक तथा हानिकर भी है।

इस प्रकार देखा गया कि क्रान्तिकारियों ने जो इस प्रकार एक दम मोर्चा ही बदल दिया, उसका कारण परिस्थितियों का परिवर्तन तथा मार्क्सवाद है न कि गाँधीवाद जैसा कि कुछ लोग समझ रहे हैं। क्रांतिकारियों के बौद्धिक नेतागण आज शायद गांधीवाद से पहले से कहीं अधिक दूर हैं, वे गाँधी-दर्शन को फूटी आँखों भी नहीं देख सकते हैं। वे समझते हैं कि गांधीवाद की कलई बहुत शीघ्र खुल जायगी तथा यह भी पता लग जायगा कि गांधीवाद उच्च वर्ग (Bourgeois) के हक में अच्छी विचार-धारा है और, यहीं इसकी लोक प्रियता का रहस्य है क्योंकि लोग से अभी हिन्दुस्तान में उन वर्गों का बोध होता है जो मजदूर-किसान नहीं हैं। यहाँ पर मुझे गाँधीवाद पर कुछ विस्तृत नहीं लिखना है, किन्तु यह खूब समझ लेना चाहिये कि मार्क्स की ही बदौलत आज आतङ्कवाद का अवसान हो रहा है न कि गांधी की

वजह से। सब बुद्धिमान क्रांतिकारियों ने, चाहे वे जेल में हों चाहे बाहर, इस बात को भलीभाँति हृदयंगम कर लिया है कि मार्क्स के बताये हुए वैज्ञानिक उपायों द्वारा ही भारतवर्ष का क्रान्तिकारी जन आंदोलन चलाया जाना चाहिये, और उसी में भारत तथा विश्व का कल्याण है।

जो लोग यह समझते हैं कि जेल, कोड़ा, अन्दमन आदि के कारण विचारधारा मुड़ गई है, वे बिलकुल गलत समझ रहे हैं। विचार धारायें कभी कोड़ों की मार से नहीं मुड़ती, न मुड़ सकती हैं, बल्कि सच बात तो यह है इन कोड़ों तथा फाँसियो ने ही हमारे इतिहास के आतंकवादी-क्रांतिकारी पन्ने को बढ़ाया है। अभी एक आध आतंकवादी क्रान्तिकारी के दिल में जो आतंक वाद मर कर भी बिलकुल नहीं मरा है, या यों कह लीजिये कि मर गया लेकिन उसका जनाजा नहीं निकला, उसकी वजह यही जेल, कोड़े, फाँसी हैं। आज बहुत से आतंकवादी क्रान्तिकारी जो जेल में हैं, या अभी छूटे हैं, वे बार-बार अपने को यह बात पूछते नजर आ रहे हैं "कहीं यह बात तो नहीं है कि हम सरकार के दमनचक्र के वशवर्ती हो कर अपने विचारों को बदल रहे हैं, कहीं हम मार्क्स के नाम पर अपने को धोखा तो नहीं दे रहे हैं।" किन्तु इस मनोवृत्ति का विश्लेषण किया जाय तो यह एक प्रकार का हीनता-बोध (Inferiority Complex) है, जिस को वे जल्दी जीत लेंगे। आतंकवाद का यदि आज कोई दोस्त है तो ये ही जेलों, फाँसियों तथा कोड़ों की स्मृतियाँ है। क्रान्तिकारीगण इस हीनता-बोध को बहुत ही आसानी से जीत लेंगे। विशेष कर जब वे इस बात को स्मरण करेंगे कि भविष्य में क्रान्तिकारी जन-आन्दोलन में उनका भाग उनके पहले के क्रान्तिकारी role से कहीं बढ़ कर उज्वल होगा। रहा यह कि कभी आगे आतंकवाद पनपेगा कि नहीं इसका उत्तर यह है कि यदि साम्राज्यवाद बहुत अत्याचारी ढंग अख्तियार करे तो संभव है फिर आतंकवाद सिर उठावे।